वैज्ञानिक भौतिकवाद

राहुल सांकृत्यायन

सोशलिस्ट लिटरेचर पब्लिशिंग कंपनी
गोकुलपुरा, आगरा

प्रथम संस्करण—१९४२

देवकुमार मिश्र द्वारा हिन्दुस्तानी प्रेस, बाँकीपुर, पटना में मुद्रित।

मानवताकी एकमात्र आशा समाजके
लाखों कमूनिस्त शहीदोंकी
स्मृतिमें ।

प्राक्कथन

आज हम साइंसके युगमें हैं, किन्तु तब भी शिक्षित लोगोंमें भी बहुतसे साइंस-युगके पहिलेके मृत विचार ही चल रहे हैं। इसमें एक कारण यह भी है, कि जिज्ञासुओंके पास उसके जानने के लिये हिन्दीमें पुस्तकें मौजूद नहीं हैं। इस कमीको पूरा करनेका इरादा, दो वर्ष पहिले जब मैं हजारीबाग जेलमें नजरबंद होकर आया, तभी हुआ, और काम भी शुरू कर दिया। सामग्री जमा करते वक्त पता लगा, कि ऐसी पुस्तक लिखना हिन्दीमें बेकार है, जब तक कि साइंस, समाजशास्त्र और दर्शनकी सामग्री भी पाठकोंके लिये जुटा न दी जाय। जब मैंने हजारीबागमें लिखे सौ पृष्ठोंको बेकार समझ देवली (२१ ७ ४१) में वैज्ञानिक भौतिकवाद पर साइंसस लिखाइ शुरू की, उस समय तक यही ख्याल था, कि एक ही पुस्तकमें सब चीजें आजायेंगी, किन्तु पता लगा, कि अलग अलग विषयों-पर डेढ पौने दो हजार पृष्ठका एक पोथा लिखनेकी जगह सबको अलग-अलग पुस्तक मान लेना ही अच्छा है। इस प्रकार एक पुस्तककी जगह चार पुस्तकें लिखनी पड़ीं —

(१) विश्वकी रूपरेखा (साइंस)
(२) मानव-समाज (समाज शास्त्र)
(३) दर्शन दिग्दर्शन (दर्शन)
(४) वैज्ञानिक भौतिकवाद

इसमें वैज्ञानिक भौतिकवाद सबसे छोटी पुस्तक है, जिसका कारण एक यह भी है, कि इसमें आनेवाले कितने ही विषय दूसरे ग्रंथोंमें आचुके हैं; वस्तुत बाकी तीनों "वैज्ञानिक भौतिकवाद" के ही परिवार ग्रंथ हैं।

पुस्तकके गहन विषयको सरल और स्पष्ट करनेकी मैंने भरसक कोशिश की है, किन्तु उसमें कितनी सफलता हुई है, इसके प्रमाण पाठक ही हो सकते हैं।

अपने विषयके प्रतिपादनमें मुझे दूसरे विरोधी मतोंकी आलोचना करनी पड़ी है, जिसके लिये मैं मजबूर था, सम्भव है किसीको इसमें दुःख हुआ, जिसके लिये मुझे खेद होगा मैंने तो "वादे-वादे जायते तत्त्वबोधः" की उक्तिको सामने रखकर वैसा किया है।

जिन ग्रन्थोंसे मैंने सहायता ली, उनकी सूची मैं अलग दे रहा हूँ लेकिन इतना ही कर देनेसे मैं अपना कर्तव्य पूरा नहीं समझता। मैं समझता हूँ, इस पुस्तकके लिखनेका सारा श्रेय इन्हीं ग्रन्थकारोंको मिलना चाहिये, मैंने तो मधुमक्खीकी भाँति मधु-संग्रह मात्र किया है, असली धन तो उन्हींका है।

मुझे एक बार विश्वास होने लगा था, कि तीसरा ग्रन्थ (दर्शन दिग्दर्शन) ही यदि समाप्त हो जाय तो गनीमत समझना चाहिये; किन्तु उसके समाप्त करते ही (११-२ ४२) मैंने तै कर लिया, कि वर्तमान ग्रन्थ को लिखना शुरू कर देना होगा, और अपनेको "गृहीत इव केशेषु मृत्युना" समझते इसे आज समाप्त कर सका हूँ।

सेंट्रल जेल, हजारीबाग
२४-२ ४२

राहुल सांकृत्यायन

वैज्ञानिक भौतिकवाद

विषय-सूची

वैज्ञानिक भौतिकवाद

प्रथम अध्याय

भूत और द्वंद्ववाद

वैज्ञानिक भौतिकवाद (द्वंद्वात्मक भौतिकवाद) के बारेमें कहनेसे पहले यह जानना जरूरी है कि भौतिकवाद क्या है। और भौतिकवादको समझनेके लिये भूत (भौतिक तत्त्व) को बतलाना आवश्यक है।

क. भूत या भौतिक तत्त्व

१ भूतकी व्याख्या

जो कुछ हम अपनी इन्द्रियोंसे देखते-समझते (इन्द्रिय-गोचर) हैं, जो कुछ इन्द्रिय-गोचर वस्तुओंका मूल-स्वरूप है, जो देश (लम्बाई, चौड़ाई, मुटाई) में फैला हुआ है, जो कम या बेशी मात्रामें दबावकी रोक थाम करता है, जिसमें इन्द्रियोंसे जाननेलायक गति पाई जाती है, वह भूत है।

इन्द्रियसे यहाँ मनुष्यकी जन्मजात इन्द्रियोंकी ही शक्ति को नहीं लेना चाहिये, बल्कि उस शक्तिको भी, जोकि सहायक यन्त्रों अणुवीक्षण, १ दूरवीक्षण २ शब्दप्रसारक द्वारा कई गुना बढ़ी प्राप्त होती है।

दार्शनिक लॉक (१६३२-१७०४ ई०) के मतमें परिमाण (लम्बाई, चौड़ाई, मुटाई तथा भार) के रूपमें भूतका जो स्वरूप हमें इन्द्रिय-गोचर होता है, वही वास्तविक है, और गुण (गंध, रस आदि) के रूपमें दिखलाई देनेवाला स्वरूप अ-वास्तविक, काल्पनिक या भ्रान्त है।

1 Microscope 2 Telescope

वैशेषिक रूप, रस आदि गुणों द्वारा ही भूतोंकी वास्तविकता (द्रव्यता) मानता है।—पृथिवी वह है, जो गंधवाली होने गुणवाली है। यहाँ यह कहनेकी आवश्यकता नहीं है कि गुणोंकी वास्तविकता माननेके कारण ही वैशेषिक विकसित होकर पदार्थ-विज्ञान या साइंसके रूपमें परिणत नहीं हो सका, और विस्तार और भारको भूतका वास्तविक स्वरूप माननेवाली यूरोपीय विचार-परंपरा नित्य नव विकासवाले आधुनिक साइंसके रूपमें परिणत हो गयी।

यद्यपि साइंस विस्तार और भारके रूपमें भूतको देखता है, किन्तु उनमें भी वह, जहाँ तक उसकी इन्द्रिय-गोचरताका संबंध है, भारको प्रधानता देता है—

"बाहरी जगत् (भौतिक तत्त्वों) का ज्ञान उन कम्पनों (अतएव दबावों) से होता है, जिनको लेते वक्त दस लाखसे ऊपर ज्ञान-तंतुओंके झटके हमारे मस्तिष्क और रीढ़के भीतरके तंतु-गुच्छकोंमें पहुँचते हैं उन गुणात्मक 'झटकों' पर (यह ज्ञान निर्भर) नहीं है। परिमाण का गुणमें और गुणका परिमाणमें परिवर्तन (जिसके द्वारा कि हम किसी पदार्थको इन्द्रिय-गोचर करते हैं) मस्तिष्कमें होता है, जगत्का जो ज्ञान हमें होता है, यही परिवर्तन उसमें मुख्य साधन है।"[१]

गुण (गंध, रूप आदि) कैसे परिमाण (भार आदि) में परिवर्तित होते हैं?—प्रकृतिका स्वभाव ही ऐसा है, उसमें गुणात्मक परिवर्तन—स्वरूपमें मौलिक परिवर्तन—होना बराबर देखा जाता है, जिसे कि हम आगे कहनेवाले हैं। वैज्ञानिक भौतिकवाद गुण और परिमाण दोनोंको वास्तविक जगत्का स्वभाव (आसानीके लिये गुण कह लीजिये) मानता है।

---

1 The Marxist Philosophy and Sciences (by J B S Haldane 1938) p 32 33

भूतकी व्याख्या करते हुए लेनिन्‌ने कहा है—

"भूतका एकमात्र गुण (स्वरूप) यह है, जो कि वह हमारे प्रत्यक्षीकरणसे बाहर अपनी सत्ताको (रखता है, और) इन्द्रिय-गोचर वास्तविकताके रूपमें रखता है।" १

"भूत दार्शनिक परिभाषामें उस 'साकार' वास्तविकताको कहते हैं, जिसका ज्ञान मनुष्यको उसकी इन्द्रिया-द्वारा मिलता है। वह ऐसी वास्तविकता है, जिसकी नकल की जा सकती है, जिसका फोटो खींचा जा जा सकता है, जो हमारी वेदनाओं (विषय-इन्द्रिय-मस्तिष्क-सम्पर्क) द्वारा (मस्तिष्क) म प्रतिबिम्बित की जा सकती है—किन्तु, उसकी सत्ता इन (वेदनाओं) पर निर्भर नहीं है।" २

"भूत वह है, जो कि हमारी इन्द्रियोंपर क्रिया करते हुए वेदना (मस्तिष्क-गति) को उत्पन्न करता है। भूत वह 'साकार' वास्तविकता है, जिसका पता हमें वेदनाओंमें मिलता है।"

यहाँ 'साकार' उस 'निराकार' से उलटे अर्थमें है, जिसका अस्तित्व बाहरी जगत्‌में कहीं नहीं मिलता, और जो सिर्फ मस्तिष्ककी कल्पना मात्र है।

२ विरोधियोंके आक्षेपोंका उत्तर

भौतिकवादके विरोधी आज नये नहीं पैदा हुए हैं, वह दर्शनके इतिहासके आरम्भसे चले आते हैं, और एक तरह दर्शन पैदा ही हुआ, भौतिकवादके वास्तविक जगत्‌को विचारों द्वारा खतम करनेके लिये। उपनिषद्‌के दार्शनिकोंने 'नेह नाना' (यहाँ अनेक नहीं) कहा, अफलातूँने 'झूठे,' भौतिक जगत्‌की जगह 'सच्चे' अभौतिक (विज्ञानमय) जगत्‌की 'सृष्टि' की। नागार्जुनने जगत् और उसकी वस्तुओंकी

1 The Materialism and Empirio Criticism p 220

२ वहीं p 102, ‡ वहीं p 116

सत्ता, चूँकि सापेक्ष—अन्योन्याश्रित—है, इसलिये उसी सत्तासे इन्कार करके सब कुछ शून्य (अभाव) का प्रतिपादन किया। असंगने अफलातूँके विज्ञानमय जगत्‌को बौद्ध दर्शनके क्षणिकवादकी पुट दे भौतिक जगत्‌के 'ठोसपन' को ध्वस्त किया। शंकर और रोईदने पहलेहीके भौतिकवाद विरोधियोंका चर्वित चर्वण किया। लेकिन, क्या इन बड़े-बड़े दिमागोंके छत्तीस सौ वर्षोंके प्रयत्नसे 'ठोस' जगत् खतम हो गया?—नहीं, बिल्कुल नहीं। यही नहीं, याज्ञवल्क्य, अफलातूँ, नागार्जुन, असंग, शंकर और रोईदने अपने मतको स्वयं अपने आचरण द्वारा झूठा साबित किया।—वास्तविक जगत्‌की सत्ता यदि वस्तुतः नहीं है, तो भूख भी कोई चीज नहीं, और भूख मिटानेके लिये यदि अफलातूँ या शंकरने थालीकी ओर अपने पाँच सेरके हाथको बढ़ाया, तो खुद अपने आचरणसे अपने मतका खंडन किया।

खैर, इन पुराने भौतिकवाद विरोधी दार्शनिकों तथा उनके आधुनिक वंशजोंको छोड़िये, आज ऐसे कोरे तर्कवादोंका कोई महत्त्व नहीं है। लेकिन हाँ, भौतिकवादके विरोधी एक दूसरी तरहके नये लोग पैदा हुए हैं। ये लोग स्वयं वैज्ञानिक हैं, और उसी विज्ञानके अनुसंधानमें निरत हैं—जो कि निर्भर करता है भूतके अस्तित्व पर। एक बार यदि भूतके अस्तित्वसे इन्कार कर देते हैं, तो किसकी नाप-तोल, किसपर अणुवीक्षण दूरवीक्षण, रश्मिकणवीक्षणका प्रयोग? किन्तु, यह भी कोई नई बात नहीं। दर्शनके इतिहासमें हम अक्सर नागार्जुन, गजाली, श्रीहर्ष जैसे विद्वानोंको देखते हैं, जो दर्शनकी सहायतासे दर्शनका संहार करना चाहते हैं, जैसे कि हमारे ये आधुनिक कितने ही देह या दिमागके बूढ़े वैज्ञानिक। उनके ऐसा करनेमें भी भारी रहस्य है और उसका साईंससे कोई संबंध नहीं है, किन्तु अभी उसे रहने दीजिये। आइये, देखें भूत (भौतिक) के अस्तित्वको इन्कार करनेके लिये वह युक्ति क्या देते हैं।—

"भूत नहीं है, यह साबित हो गया।"

"कैसे ?"

"साइंस—उच्च भौतिक विज्ञान—ने साबित कर दिया, कि भूत कुछ नहीं है, वह वस्तुत शक्ति है !"

"शक्ति ! भौतिक या अभौतिक—आत्मिक या दिव्य शक्ति ?"

"भौतिक नहीं।"

"तो अभौतिक, दिव्य ! और फिर उस अभौतिक दिव्य शक्तिको सिद्ध कौन कर रहा है ?—साइंस ! और फिर भी वह साइंस है !!!"

"हाँ, क्योंकि साइंसवेत्ता जो उसे प्रमाणित करते हैं।"

"मुँहसे कहना, यदि साइंससे प्रमाणित करना है, तो साइंसवेत्ताओंकी सारी चेष्टाएँ साइंस हैं। सर ऑलिवर लाजकी भूत प्रेत विद्या—अतएव ओभा विद्या—तथा उसके आधुनिक अवतार थ्योसाफी भी साइंस है। सर चन्द्रशेखरन् वेंकट रमनका वेद-मत और वर्त्तमान सामाजिक असमानताकी रक्षाके पक्षमें भाषण भी साइंस है ! सर जेम्स जीन्सका ईश्वर समर्थन भी साइंस है। वस्तुत, आप उनके उतने ही कथनको साइंसकी कोटिमें मान सकते हैं, जिसके ऊपर वेधशाला, प्रयोगशाला और उनके सैकड़ों छोटे बड़े यंत्र अपनी मुहर लगा चुके हैं। तो क्या इन वेधशालाओंने गवाही दी है कि भूत नहीं है ? और फिर भूत नहीं का मतलब ! जब वृक्षका न होना निश्चयपूर्वक घोषित कर दिया गया, तब 'आम है' का सवाल ही कैसे उठ सकता है ? फिर साइंस किसकी नाप तोल कर रहा है ?

"भौतिक शास्त्रम, आधुनिक खोजमें भूतका कोई पता नहीं लगता, वहाँ तो सिर्फ शक्ति ही मिलती है।"

"वही शक्ति भूत है।"

"लेकिन वह ठोस नहीं, वह साकार नहीं है।"

"तो इससे यही साबित हुआ कि कणाद (१५० ई०) या उससे छ सौ साल पहले (५४० ८८७ ई० पू०) ने भूतका जो सूक्ष्मतम

रूप—परमाणु—माना था, वह गलत साबित हो गया। तालिमीका भूकेंद्रक विश्व गलत होनेसे 'विश्व है ही नहीं', 'सूर्य चाँद हैं ही नहीं' यह नहीं साबित होता है। परमेनिद और उसके दूसरे अभिजातिक साथी विश्वकी गति, परिवर्तनशीलतासे परेशान थे, वह अथाह समुद्रमें डूबते हुएकी तरह स्थिर भूमि ढूँढनेके लिये परेशान थे, इसलिये उन्होंने विश्वके मूलमें ठोस—परमाणु—'ढूँढ' निकाले। परमाणु स्थिर, अपरिवर्तनशील, लासानी (अद्वितीय), ठोस, अविभाज्य, अखण्ड सूक्ष्म गोलियाँ हैं। परमेनिदके भारतीय शिष्योंने षट्कोण तथा कुछ और भेदके साथ परमाणुकी उन स्थायी ईंटोंको अपने दर्शनमें ले लिया। भौतिक विज्ञानने इन गोल या षट्कोण ठोस कणोंकी सत्ताको गलत साबित कर दिया, यह ठीक है। उसने विश्वके निम्नतम तलमें विद्युत्-चुम्बकीय कण तरंग-कण भी, तरंग[1] भी—को मूल तत्त्व पाया। इससे सिर्फ यही सिद्ध होता है कि भूत की जो व्याख्या पहले की जाती थी, वह बहुत स्थूल थी। किन्तु, साइंससे भूतका सिद्ध न होना सिद्ध हुआ, यह कहना तो साइंसका अपमान, अपनी बुद्धिका भी अपमान और दुनियाको भी बराबर बेवकूफ बनाना है।"

"लेकिन, साइंसने यह तो सिद्ध किया है कि विश्व बिल्कुल खाली—आकाश—शून्य-सा है।"

"और उसमें शक्ति या विद्युत् चुम्बकीय कण-तरंग भी नहीं है?"

"है, किन्तु वह नगण्य-सा है।"

"इसलिये नहीं है! यह तो वही बात हुई, किसीने पूछा यह जाल क्या है? दूसरेने कहा—कुछ नहीं, धागेसे नत्थी किया हुआ भारी शून्य आकाश। धागेकी उपेक्षा और आकाशकी महिमा गाना यह है इन नामधारी वैज्ञानिकोंका बैठे ठाले वक्तका साइंस। मानव-बुद्धि इस भूल भुलैयोंको नहीं मान सकती। साइंस जैसे-जैसे आगे बढ़ता है, भौतिक वस्तुओंके

1 देखिये "विश्वकी रूप रेखा"

आन्तरिक ढाँचेके बारेमें वह अधिक और अधिक जानकारी प्राप्त करता है। परमाणु—परमेनिद्का नहीं, उन्नीसवीं सदीके रसायन शास्त्रियोंका भी—टूटा[१]। हमसाने उसके भीतर पहुँचकर एलेक्ट्रन, नाभिकण, प्रोटनका पता लगाया। बीसवीं सदीमें साधारण नाभिकण तथा हाइड्रोजनके नाभिकण, प्रोटनको भी तोड़ा गया, और हम न्यूटन और मेसोट्रन तक पहुँचे।—भूतका यही भीतरी ढाँचा कण और तरंग दोनों—विरोधि समागम—के रूपमें मिलता है। यह सब सिर्फ इतना ही साबित करता है, कि पहली व्याख्या स्थूल थी, ज्ञानकी गंभीरताके साथ हम उसे सूक्ष्म करनी पड़ रही है। इस व्याख्या-परिवर्तनसे भूतका अभाव सिद्ध करना या तो भोलापन प्रकट करना है, या इसके पीछे कोई कुटिल रहस्य है।—रहस्य जाननेके लिये अभी ठहरिये।"

भूत है, और उसका होना ठोस सत्य है। आधुनिक साइंस भूतकी आन्तरिक अद्भुत शक्ति और स्वरूपपर प्रकाश डालकर उसके महत्त्वको घटा नहीं रहा है।

ख. भौतिकवाद

१ व्याख्या

भूतकी व्याख्या जान लेने तथा उसकी सत्ताको मान लेनेपर अब आइये भौतिकवाद पर। भौतिकवाद क्या है?—यह वह दार्शनिक वाद है, जो कि कल्पना, विचार, ज्ञानको मानव चेतना (मस्तिष्क) पर एक ऐसे वास्तविक भौतिक जगत्का *मानस प्रतिबिंब*—चमक—मानता है, जिसकी सत्ता हमारी चेतना या इच्छासे बिलकुल स्वतंत्र है।

एन्गेल्सके शब्दोंमें[२]—"जो (चेतना या चेतनको नहीं बल्कि) प्रकृतिको (सारे जड़ चेतन जगत्‌का) मूल मानता है, (ऐसे वादको) भौतिकवाद कहते हैं।"

---

१ देखिये "विश्वकी रूप-रेखा" 2 Feurbach P 31

अथवा—

'वास्तविक जगत्—प्रकृति और (उसके) इतिहास—को उसी तरह ग्रहण करना, जैसी कि वह पहले हर आदमीको मालूम होती है, जो कि विज्ञानवादी (दार्शनिक) कल्पनाओंकी पूर्वधारणाओंसे मुक्त है।"१

२ प्रतिपक्षियोंके आक्षेपका उत्तर

लेकिन जरा ठहरिये, भौतिकवादकी व्याख्या उसके शत्रुओंके मुँहसे सुनिये। भारतके धर्माचार्य कहते हैं—

"जब तक जिये सुखसे जिये, ऋण करके घी (शराब!) पिये।
देहके भस्मीभूत हो जाने पर फिर आना कहाँ से!" २

—अर्थात् भौतिकवादी परम पामर स्वार्थी, लोलुप, मनुष्यरूपमें शूकर हैं! और यूरोपके धर्माचार्य उसे भौतिकवादी कहते हैं, जो कि—शराबी, इन्द्रियलम्पट, समाजशत्रु अहंकारी जीव है। साथ ही उनकी रायमें विज्ञानवादी (दार्शनिक) होते हैं—संयमी, जितेन्द्रिय, समाज सुहृद्, निरहंकारी, स्वार्थत्यागी, महात्मा।

भारतमें भौतिकवादियोंके लिये यह गाली क्यों मिली, इसका पता इतिहासमें सुरक्षित नहीं—आखिर हमारे इतिहासको राजा-रानीके स्वयंवरोंसे फुर्सत हो तब न! हाँ, यूरोपीय भौतिकवादियोंको जो गालियाँ पिछली सदीमें दी गईं, उनके लिखनेके लिये एक प्रत्यक्षदर्शी, तथा दर्शनके इतिहास-लेखकोंमें प्रसिद्ध व्यक्ति—जार्ज हेनरी लेविस् (१८१७-७४ ई०) मौजूद था। देखिये वह क्या लिखता है—और इतिहास अक्सर अपने सामान्य रूपको दुहराया करता है, यदि इस बातपर ध्यान रखें तो इससे अपने यहाँकी गालीका भी रहस्य खुल सकता है। जिस समयके बारेमें

1 Feurbach p 53

२ "यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः"—सर्वदर्शन-संग्रह (चार्वाकदर्शन)

लेखक लिख रहा है, यह वह समय था, जब कि फ्रेंच क्रान्ति (अपने उत्पीड़कों—शासकोंके विरुद्ध कमकर जनताके सशस्त्र विरोध) का देख सुनकर फ्रांस और इंगलैंडके सम्पत्तिशाली शासकोंके होश उड़े हुए थे और चारों ओर उन्हें अपना पीछा करते कबंध दिखलाई पड़ रहे थे१—

"भौतिकवाद एक भद्दा शब्द है, जो कि कुछ खास सम्मतियों को प्रकट करता है। यह सम्मतियाँ जिन भौतिकवादी-लेखकोंके सिर थोपी जाती हैं, वे ऐसी सम्मति रखते भी रहे, इसमें सन्देह है। वैसे भी यह सम्मतियाँ बेवकूफी और बदमाशीसे भरी हैं, और उन्हें गैर जिम्मेदार उजड्ड विरोधियोंने जान बूझकर उन (भौतिकवादी) लेखकोंके मत्थे थोपा है। भौतिकवादियोंको कमसे कम यह खास सुभीता (अपने सिद्धान्तमें) है, कि वह सभी अतिभौतिक (या अलौकिक) पदार्थोंसे पिंड छुड़ानेकी कोशिश करते हैं, और प्राकृतिक जगत्की व्याख्या प्राकृतिक जगत्के नियमोंसे करना चाहते हैं। यदि भौतिकवादी विचार गलत भी, तो (भी) वह जितना गलत है उतनी ही मात्रा में खतरनाक हैं, और बहुतसे (प्रभु-वर्गके) लोग इन विचारोंको इसलिए गलत कहते हैं, क्योंकि उनका विश्वास है कि वह (उनके स्वार्थके लिये) खतरनाक हैं।

"अठारहवीं सदीके (भौतिकवाद प्रधान) दर्शनके विरुद्ध जो प्रतिक्रिया (देखी जाती) है, वह अयोग्य सिद्ध हुए किसी एक सिद्धान्तके खिलाफ उतना नहीं है, जितना कि भयंकर *दुराचार* (प्रभुता-सम्पत्ति अपहरण) *के स्रोत समझे जानेवाले* सिद्धान्तके खिलाफ। (यह) प्रतिक्रिया जबर्दस्त थी, क्योंकि वह उस क्रूरतासे प्रेरित हुई थी, जो कि फ्रेंच क्रान्तिके *अत्याचारों* २ (!!!) के रूपमें यूरोपमें हलचल मचाये

1 History of Philosophy (by G H Lewis) Vol II pp. 743 44

२ फ्रेंच-क्रान्तिमें कमकर-जनताने ज्यादा अत्याचार या खून-खराबी की, अथवा सत्ता धारियोंने, इसे यहाँ बतलानेकी जरूरत नहीं।

अथवा—

"वास्तविक जगत्—प्रकृति और (उसके) इतिहास—को उसी तरह ग्रहण करना, जैसी कि वह एक हर आदमीको मालूम होती है, जो कि विज्ञानवादी (दार्शनिक) कल्पनाओंकी पूर्वधारणाओंसे मुक्त है।"१

७ प्रतिपक्षियोंके आक्षेपका उत्तर

लेकिन जरा ठहरिये, भौतिकवादकी व्याख्या उसके शत्रुओंके मुँहसे सुनिये। भारतके धर्माचार्य कहते हैं—

"जब तक जिये सुखसे जिये, ऋण करके घी (शराब ?) पिये।
देहके भस्मीभूत हो जाने पर फिर आना कहाँ से ?" २

—अर्थात् भौतिकवादी परम पामर स्वार्थी, लोलुप मनुष्यरूपमें मृगा है? और यूरोपके धर्माचार्य उसे भौतिकवादी कहते हैं, जो कि—शराबी, इन्द्रियलम्पट, समाजशत्रु, अहंकारी चोर है। साथ ही उनकी रायमें विज्ञानवादी (दार्शनिक) होते हैं—संयमी, जितेन्द्रिय, समाज-सुहृद्, निरहंकारी, स्वार्थत्यागी, महात्मा।

भारतमें भौतिकवादियोंके लिये यह गाली क्यों मिली, इसका पता इतिहासमें सुरक्षित नहीं—आखिर हमारे इतिहासको राजा-रानीके स्वयंवरसे फुर्सत ही तब न! हाँ, यूरोपीय भौतिकवादियोंको जो गालियाँ पिछली सदीमें दी गईं, उनके लिखनेके लिये एक प्रत्यक्षदर्शी, तथा दर्शनके इतिहास लेखकोंमें प्रसिद्ध व्यक्ति—जार्ज हेनरी लेविस् (१८१७-७४ ई०) मौजूद था। देखिये वह क्या लिखता है—और इतिहास अक्सर अपनेको सामान्य रूपसे दुहराया करता है, यदि इस बातपर ध्यान रखें तो इससे अपने यहाँकी गालीका भी रहस्य खुल सकता है। जिस समयके बारेमें

---

1 Feurbach p 53

२ "यावज्जीवेत् सुखं जीवेद् ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। भस्मीभूतस्य देहस्य पुनरागमनं कुतः"—सर्वदर्शन-संग्रह (चार्वाकदर्शन)

"इसे समझनेके लिये भारी चातुरीकी आवश्यकता नहीं है, कि भौतिकवादका साम्यवाद और समाजवादके साथ कितना घनिष्ठ संबंध है। भौतिकवादके सिद्धान्तसे (साबित है)—मनुष्यका मूलतः भला होना, बौद्धिक क्षमतामें समान होना, तजबा, आदत और शिक्षावर्धनकी सर्व-शक्तिमत्ता, मनुष्यपर बाह्य परिस्थितियोंका प्रभाव, उद्योग धंदेका भारी महत्त्व, (जीवनके) उपभोगोंका औचित्य आदि-आदि। यदि मनुष्य अपने सारे ज्ञान, प्रत्यक्ष आदिको इन्द्रिय जगत्‌से तैयार करता है, तो इसका अर्थ यह है, कि व्यवहार-जगत्‌को इस तरह व्यवस्थापित किया जाय, जिसमें कि (मनुष्य) इस (जगत्) में (जो वस्तु) सच्चे अर्थोंमें मानवीय है, उसे अनुभव कर सके, तथा *मानवके तौरपर स्वयं अनुभव* करनेकी उसे आदत पड़ जाय।

"यदि (व्यापक अर्थमें) समझदारीवाला स्वार्थ ही सारे आचार (नियमों) का मूल है, तो मनुष्योंके वैयक्तिक स्वार्थोंको *मानवीय* स्वार्थोंसे एक कराना होगा। यदि मनुष्य भौतिक अर्थोंमें अ-स्वतंत्र है तो अपराधोंके लिये व्यक्तियोंको दंड न दे, समाज विरोधी अपराधोंके प्रसव-स्थानोंको नष्ट कर हर स्त्री पुरुषको अपने जीवनको दिखलानेके लिये सामाजिक अवसर देना चाहिये। *यदि मनुष्यका निर्माण परिस्थितियाँ करती हैं, तो परिस्थितियोंको मानवीय बनाना होगा।* यदि मनुष्य स्वभावतः सामाजिक है, तो वह अपने वास्तविक स्वभावको सिर्फ समाजमें ही विकसित कर सकता है, फिर तो उसके स्वभावकी, शक्तिकी नाप एक अकेले व्यक्तिकी शक्तिसे न कर समाजकी शक्तिसे करना चाहिये।

"*ये और इसी तरहके विचार, प्रायः शब्दशः, सबसे पुराने फ्रेंच भौतिकवादियोंमें*[१] *पाये जाते हैं।*

---

१ पुराने यूनानी भौतिकवादी दार्शनिकों तथा सत्रहवीं अठारहवीं सदीके यूरोपीय भौतिकवादियों (बेकन, हॉब्स, लॉक—अँग्रेज, कन्दि-

हुई थी। कंदिलाक, दिदेरो और कबानीस[1] के दार्शनिक (भौतिकवादी) विचार कन्वेंशन (क्रान्ति परिषद्) के अपराधोंके जिम्मेवार ठहराये जाते थे। जिस किसी विचारमें भौतिकवादकी गंध पाई जाती थी, उसे पाप, मद्याचार और सर्कारके नाशके लिये प्रयत्न करनेवाला विचार समझा जाता था। जो कोई विचार अध्यात्मवाद (विज्ञानवाद) की दिशाकी ओर जाता मालूम पड़ता था, उसका बड़े उत्साहके साथ स्वागत किया जाता था, उसका प्रचार और साधुवाद किया जाता था। (इससे) हम समझ सकते हैं कि उस पीढ़ीके (धनी लोगोंके) दिमागमें भौतिकवादके साथ क्रान्तिका संबंध कितना अटूट (सा जान पड़ता) था।'

भौतिकवाद विरोधियोंके मनोभावको व्यक्त करते हुए वह कहता है—

"उनका मुख्य उद्देश्य है (वर्तमान) सदाचार और (राज्य) व्यवस्था का समर्थन करना, जिनको वह उस (भौतिकवादी) दर्शनके कारण खतरेमें पड़ा समझते हैं, क्योंकि वह उनपर प्रहार करना चाहते हैं। (उनके भाषणोंमें) लगातार (लोगोंके पुराने) पक्षपातों और आदतों भावोंको भड़काया जाता है। (जिससे) श्रोता सभी उच्च भावनाओंको अध्यात्मवादी (विज्ञानवादी) सिद्धान्तोंके साथ जोड़नेकी आदत डालता है, और सभी नीच भावनाओंको भौतिकवादी सिद्धान्तोंके साथ, यहाँ तक कि एक (अध्यात्मवादी) संप्रदायका उनके मस्तिष्कमें पूज्य भावनाओंके साथ अटूट संबंध हो जाता है, और दूसरे (भौतिकवाद) का घृणाकी भावनाओंके साथ।"

३ भौतिकवादियोंका आदर्श

जिन लोगोंको नरपशु बनाकर यह गालियाँ सुनाई जाती थीं, उनका सबसे बड़ा अपराध दूसरा ही था, जिसे उस समाजके दो सरताज अपराधियों—मार्क्स और एंगेल्स—के मुँहसे सुनिये[3]—

---

[1] देखो "दर्शन दिग्दर्शन"   [2] वहीं

[3] Holy Family (1845 by Marx & Engels)

है, जिसका अर्थ है द्वि-संवाद—दो आदमियोंका प्रश्नोत्तर। बुद्धके बहुतसे सूत्र प्रश्नोत्तरके रूपमें ही सुत्त पिटकमें मिलते हैं, इसीलिये उन्हें "बुद्धका डायलॉग" १ भी कहा गया है। उनसे पहले उपनिषद्में भी द्वि-संवादात्मक उपदेश बहुत हैं। यूनानके दार्शनिक सुकात (४६६ ३६६ ई० पू०) ने भी अपने उपदेशोंके लिये यही ढंग स्वीकार किया था, और प्रश्नकर्ताके प्रश्नका जो उत्तर वह देना चाहता था, उसे प्रश्नोत्तर द्वारा स्वयं उसीके मुँहसे कहलवाता था। यह ढंग सुकातके बाद इतना पसंद आया कि उसके शिष्य अफलातूँ (४२७ ३४७ ई० पू०) ने इस "परम सत्य" तक पहुँचनेका साधन बतलाया। यदि "डायलेक्टिक्स" का प्रयोग सिर्फ द्विसंवादात्मक अर्थमें ही होता, तो हम भी इसी शब्दको इसके लिये इस्तेमाल करते, किन्तु डायलेक्टिक्सका दर्शनमें जिस अर्थमें प्रयोग होता है, वह डायलॉगका मुख्य नहीं, लाक्षणिक अर्थ है, और "वादे-वादे जायते तत्त्वबोध" (वाद-वाद करते हुए तत्त्वबोध होता है)—के अर्थमें ज्यादा आता है। आप एक बात कहते हैं, हम उसका विरोध करते हैं, फिर हमारी और आपकी परस्पर विरोधी बातोंसे एक तीसरी बात निकलती है—इस तरह जहाँ परस्पर विरोधी बातोंसे तीसरे तत्त्वकी उत्पत्ति होती है, उसे डायलेक्टिक्स कहते हैं, जिसे हिन्दीमें हम द्वंद्ववाद या द्वंद्वात्मकवाद कह सकते हैं, यद्यपि इसमें मूल यूनानी, शब्दका सिर्फ पूर्वार्ध "दियो" (द्वं) भर ही आता है। द्वंद्वात्मक प्रक्रियामें जिस क्रमसे हम परिणाम या तत्त्वबोधपर पहुँचते हैं, उसे तीन सीढ़ियोंमें विभक्त किया जा सकता है—

(१) *वाद*—जीव भूत है।

(२) *प्रतिवाद*—जीव भूत नहीं, बिल्कुल अलग चेतन तत्त्व है,

(३) *संवाद*—जीव न भूत है, न अलग तत्त्व है, बल्कि वह भूतके गुणात्मक परिवर्तनसे उत्पन्न एक नया तत्त्व है।

1 Dialogues of the Buddha

भौतिकवादके लिये गत दिन गालियाँ खाई इतिहासमें पढ़नेकी ही बाते नहीं हैं। हमारे सामने भी भौतिकवादी सोवियत देश और उसकी सरकारको कितनी गालियाँ पिछले २८ वर्षोंमें दी जाती थीं, यह हम सब जानते हैं—यद्यपि आज सोवियत् जनता और लालसेनाने अपनी कुर्बानियों, मृत्यु निर्भयतासे बतला दिया है, कि भौतिकवादी जिंदगीसे भी ज्यादा हँसी हँसी मरना जानते हैं। फ्रांसके कम्युनिस्ट अद्भुत आत्मोत्सर्गका महान् उदाहरण हर रोज पेश कर रहे हैं। आज (मार्च, १९४२ ई०) से चन्द ही सप्ताह पहले हिटलरकी गोलीसे उड़ाये गये फ्रेंच कम्युनिस्ट[1] साथी गब्रील पेरीने मृत्युसे कुछ ही समय पहिले लिखा था[2]—

"मेरे मित्रोंको मालूम होना चाहिये कि मैं अपने उस आदर्शोंके प्रति (अन्ततक) सच्चा रहा हूँ, जिसे कि अपने सारे जीवनमें मैंने (अपने सामने) रक्खा। मेरे देशवासी जानें कि मैं इसलिए मर रहा हूँ, जिसमें कि फ्रांस जीता रहे। अन्तिम बार मैं अपने हृदयको टटोल रहा हूँ। मैं कहीं कोई पछतावा नहीं अनुभव करता। यदि मुझे फिर (जीवन) आरंभ करना पड़े, तो फिर उसी पथका अनुसरण करूँगा। चंद मिनटोंमें मैं आनेवाली प्रभामयी उषाके लिये अपनी (जीवनरूपी) भेंट चढ़ाऊँगा। विदा, चिरंजीव फ्रांस!"

ग. द्वंद्ववाद

द्वंद्ववाद या द्वंद्वात्मक वाद अंग्रेजी भाषाके डायलेक्टिक्स शब्दके अर्थमें इस्तेमाल होता है। यह शब्द भी यूनानी दिया-लोग शब्दसे आया

लाक, कबानी, दा'लम्बर, लामेत्री, लाप्लास, दो'लबाख, दीदेरो, हेल्वेशियस, कुप्पा, बोनी-फ्रेंच) के मतों के बारेमें 'दर्शन दिग्दर्शन' को देखो।

१ कम्युनिस्ट दैनिक La Humanity (मानवता) के विदेश-विभागके संपादक २ रायटर लन्दन ८ मार्च १९४२ ई०।

"इसके विरुद्ध द्वंद्ववाद वस्तुओं तथा उनके (मानस) प्रतिबिम्बों—विचारों—को उनके वास्तविक संबंधों, उनकी गति आरम्भ, और अन्तके साथ हृदयंगम करता है। द्वंद्ववाद जीवन और मृत्युकी असंख्य क्रियाओं प्रतिक्रियाओं, प्रगतिशील तथा प्रगति विरोधी परिवर्त्तनों पर बराबर ध्यान रखता है।"

'किसी चीज और उसके विरोधी भागका विभाजन द्वंद्ववादका सार है।"[1] प्रचलित तर्कशास्त्र और द्वंद्ववादमें भारी अन्तर यह है, कि तर्कशास्त्र उसी वस्तुको अपने विचारका विषय बना सकता है, जो कि स्थिर, ठोस, एक ही बार सदाके लिये पकीपकाई मिल गई है। किन्तु, जगत् और उसकी वस्तुयें ऐसी नहीं हैं—गति और परिवर्त्तन उनकी नस-नसमें भरा है। रोजमर्राके साधारण व्यवहारकेलिये प्रचलित तर्कशास्त्र काम दे सकता है, जैसे साधारण नापोंके लिये अंकगणित या बीजगणित, किन्तु जब हम चल ग्रहों, चल-उपग्रहों, चल-सूर्य, चल नक्षत्रोंकी दुनियामें पहुँच कर हिसाब लगाना चाहते हैं, तो स्थिर गणित—अंक गणित, बीजगणित—वहाँ काम नहीं दे सकता, वहाँ चल-कलनकी जरूरत पड़ती है। इसी तरह सौर परिवारके भीतर न्यूटनके गुरुत्वाकर्षणसे हमारा काम बहुत कुछ चल जाता है, किन्तु सौर परिवारमें भी बारीक गणित तथा सौर परिवारके बाहरकी समस्याओंके हल करनेमें गुरुत्वाकर्षण काम नहीं दे सकता, वहाँ जरूरत होती है आइन्स्टाइनकी सापेक्षताके अनुसार विश्वकी वक्रताकी।[२]

३ द्वंद्ववादके सोलह सूत्र

संक्षेपमें "विरोधियोंकी एकता (समागम)" के सिद्धान्तको द्वंद्ववाद कहते हैं। इसपर हम आगे संक्षेप करनेवाले हैं। द्वंद्ववादके स्वरूपको

1 Materialism (Lenin) p 321
२ देखो "विश्वकी रूपरेखा" (सापेक्षतावाद)

१ व्याख्या

उपरोक्त कथनपर ध्यान रखते हुए हम द्वन्द्ववादकी व्याख्या इस प्रकार कर सकते हैं। संक्षेपमें द्वन्द्ववाद वह प्रक्रिया (तरीका) है, जिसमें दो परस्पर विरोधी मतोंके संघर्षके बाद हम सत्य तक पहुँचते हैं। प्रकृतिमें द्वन्द्ववादका अर्थ है अपने भीतरी विरोधी स्वभावोंके द्वन्द्वसे प्रकृतिका एक तीसरे रूपमें परिवर्तित होना—हाइड्रोजनके प्राणपीड़क तथा आक्सीजनके प्राणदायक तत्त्वोंसे तीसरे तत्त्व—जलका निर्माण। विचार-क्षेत्रमें इस प्रक्रियाका अर्थ है, दो विरोधी विचारोंके द्वन्द्वसे तीसरे विचार पर पहुँचना। जैसे—

(१) वाद (यान्त्रिक भौतिकवादी)—जगत् भौतिक (परमाणु) तत्त्वमय है, क्योंकि वही इन्द्रियगोचर, तथा इन्द्रियगोचर ज्ञानद्वारा सिद्ध है।

(२) प्रतिवाद (विज्ञानवादी)—जगत् अभौतिक (विज्ञान) तत्त्वमय है क्योंकि भूतसे विलक्षण चेतनातत्त्व विज्ञानके मानने पर ही संभव है।

(३) संवाद—जगत् द्वन्द्वात्मक भौतिक तत्त्वमय है, भौतिक होनेसे वादवाली बात आ जाती है, और द्वन्द्वात्मक होनेसे भूतमें नये गुणके उत्पादन करनेकी शक्ति, जिससे गुणात्मक परिवर्तन द्वारा चेतनाका पैदा होना बिल्कुल संभव है।

इसीलिए एंगेल्सका कहना है[1]—

२ द्वन्द्वात्मक विधिकी विशेषता

"अतिभौतिक (अध्यात्म) शास्त्रियों के लिये वस्तुयें तथा उनकी मानसिक झलक (प्रतिबिंब)—विचार—अलग अलग हैं, उनपर एकके बाद एक तथा एक दूसरेसे अलग करके विचार करना चाहिये, (क्योंकि) वही स्थिर, ठोस एक ही बार सदाके लिये बने-बनाये शोधके विषय हैं।

1 Socialism Scientific and Utopean pp 31 34

"इसके विरुद्ध द्वन्द्ववाद वस्तुओं तथा उनके (मानस) प्रतिबिंबों—विचारों—को उनके *वास्तविक सबंधों*, उनकी गति-आरम्भ, और अन्तके साथ हृदयगम करता है। द्वन्द्ववाद जीवन और मृत्युकी असख्य क्रियाओ प्रतिक्रियाओं, प्रगतिशील तथा प्रगति विरोधी परिवर्त्तनों पर बराबर ध्यान रखता है।"

"किसी चीज और उसके विरोधी भागका विभाजन द्वन्द्ववादका सार है।"[१] प्रचलित तर्कशास्त्र और द्वन्द्ववादमे भारी अन्तर यह है, कि तर्कशास्त्र उसी वस्तुको अपने विचारका विषय बना सकता है, जो कि स्थिर, ठोस, एक ही बार सदाके लिये पक्कीपक्काइ मिल गई है। किन्तु, जगत् और उसकी वस्तुएँ ऐसी नहीं हैं—गति और परिवर्त्तन उनकी नस नसमें भरा है। रोजमराके साधारण व्यवहारकेलिये प्रचलित तर्कशास्त्र काम दे सकता है, जैसे साधारण कामोंके लिये अकगणित या बीजगणित, किन्तु जब हम चल-ग्रहों, चल-उपग्रहों, चल-सूर्य, चल-नक्षत्रोंकी दुनियामे पहुँच कर हिसाब लगाना चाहते हैं, तो स्थिर गणित—अक-गणित, बीजगणित—यहां काम नहीं दे सकता, वहाँ चल-कलनकी जरूरत पड़ती है। इसी तरह सौर परिवारके भीतर न्यूटनके गुरुत्वाकर्षणसे हमारा काम बहुत कुछ चल जाता है, किन्तु सौर परिवारमे भी बारीक गणित तथा सौर परिवारके बाहरकी समस्याओंके हल करनेमें गुरुत्वाकर्षण काम नहीं दे सकता, वहाँ जरूरत होती है आइन्सटाइनकी सापेक्षताके अनुसार विश्वकी *वक्रताकी*।[२]

३ द्वन्द्ववादके सोलह सूत्र

सक्षेपमें "विरोधियोंकी एकता (समागम)" के सिद्धान्तको द्वन्द्ववाद कहते हैं। इसपर हम आगे सविशेष कहनेवाले हैं। द्वन्द्ववादके स्वरूपको

1 Materialism (Lenin) p 331
२ देखो "विश्वकी रूपरेखा" (सापेक्षतावाद)

समझानेके लिये लेनिन्ने १६ सूत्र रखे हैं, डेविड गेस्टकी छोटी व्याख्याके साथ हम उन्हें यहाँ देते हैं। १ —

हम आमपर विचार कर रहे हैं, हम विचारके लिये 'साकार (भौतिक) आम चाहिये यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, किन्तु आमका स्वरूप कितनी विशेषतायें रखता है, जिन विशेषताओंके साथ कि वह 'सजीव' विश्वका अंग बना हुआ है। आमपर विचार करते वक्त हम उसकी सारी विशेषताओंको एक साथ विचारका विषय नहीं बना सकते। आममें मोटाई-मुटाई, नरमपन-कड़ापन, पीला हरापन, मिठास-खटास, मीठी सुगंध, तीखी सुगंध, कच्चापन-पकापन सड़ापन और इनके सैकड़ों प्रभेद पाये जाते हैं। निश्चय ही हम सोचते वक्त आमकी इन सारी विशेषताओंपर एक ही समय नहीं विचार करते, इसलिये हम एक समय आमकी किसी एक विशेषता—रंग, स्वाद या गंध—को बाकी विशेषताओंसे पृथक कर उसे विचारका विषय बनाते हैं। यह सिर्फ सुभीतेके ख्यालसे किया जाता है। किन्तु, यहाँ हमें यह ध्यान रखना है कि कोई भी विचार या चिन्तन असम्भव है, जब तक कि उसका विषय—वस्तु—न हो, और वस्तु अपनी हजारों विशेषताओंके साथ विश्वका अभिन्न अंश है, इसलिये द्वन्द्ववादी तरीकेसे सोचते वक्त हमें वस्तुओंको उसी रूपमें देखना चाहिये, जिसमें कि वह वस्तुतः है। इसीलिये लेनिन्का पहिला सूत्र—

१ प्रत्यवेक्षण (के विषय) को 'साकार' (वस्तुसत्, खुद वही वस्तु) होना चाहिये, (न कि उदाहरण या प्रतिनिधि होनेके लिये प्रयोज्य आकार)।

विचारकी पहिली अवस्थामें हम वस्तुको अपने दिमागमें विश्व—द्वन्द्वतापूर्ण 'सजीव' विश्व—से अलग कर लेते हैं, जो कि वास्तविकता नहीं है। वास्तविकता लानेके लिये उस पृथक्कृत वस्तुको फिर उसके

1 Dialectical Materialism (by David Guest) p p 47 6

'घर'में रखना होगा, जिसमें कि वह फिर 'सजीव' विश्वका अंग बन जाये—गोया इस प्रकार हम पहिली अवस्था(पृथक्करण)का प्रतिषेध करते हैं, ऐसा किये बिना हम अध्यात्मवाद, विज्ञानवादकी मानसिक भूल भुलैयासे बच नहीं सकते। इसीलिये, लेनिन्‌का दूसरा सूत्र—

२ हमें प्रत्येक वस्तुके दूसरी वस्तुओंके साथ अनेक प्रकारके जो सबंध हैं, उनके सारे योगफलपर विचार करना चाहिये।

प्रत्येक वस्तु यही नहीं कि विश्वव्यापी घटनाका एक अंश है, बल्कि वह स्वयं भी वस्तुतः एक घटना – प्रतक्षण भागमें भी किसी तरहके स्थिर सारसे शून्य नित्य परिवर्तनशील प्रवाह—है, इसलिये उसके "स्वभाव"को उसकी प्रकृतिमें समाये रूपमें समझा जा सकता है, न कि उसे परिवर्तनके रूपसे अलग करके। अतएव, हमारे लिये विचारणीय हैं—

३ वस्तु या प्रतीयमान विश्वका[1] विकास, उसकी अपनी गति, उसका अपना 'जीवन'।

किन्तु, यह विकास ऐसा नहीं है, जो कि हेतुके बिना 'दैवी चमत्कार' की तरह अपने आप जारी हो गया हो, यह विकास सदा आन्तरिक द्वंद्व (विरोध) तथा बाहरी सबंधों—जिनमें खुद द्वंद्व भी शामिल है—का परिणाम है। हम विकासकी व्याख्या उतनी ही कर सकते हैं, और बुद्धिसम्मत तरीकेसे उसे उतना ही समझ सकते हैं, जितने परिमाणमें कि हमने वस्तुके आन्तरिक द्वंद्वकी खोज की है। अतएव—

४ हम वस्तुमें (उसकी) आन्तरिक विरोधी प्रवृत्तियों (तथा पहलुओं)की तलाश करनी चाहिये, उन्हें देखना चाहिये।

५ वस्तु (या आकार आदि)को विरोधोंके योग या एकताके तौर पर भी देखना चाहिये।

[1] Phenomena

समझानेके लिये लेनिनने १६ सूत्र दिये हैं, डेविड गेस्टकी छोटी व्याख्याके साथ हम उन्हें यहाँ देते हैं।[1]—

हम आमपर विचार कर रहे हैं, इस विचारके लिये 'साकार' (भौतिक) आम चाहिये यह कहनेकी आवश्यकता नहीं, किन्तु आमका स्वरूप हजारों विशेषताएँ रखता है, फिर विशेषताओंके साथ कि यह 'सजीव' विश्वका अंग बना हुआ है। आमपर विचार करते वक्त हम उसकी सारी विशेषताओंको एक साथ विचारका विषय नहीं बना सकते। आममें खट्टाई-मिठाई, नरमपन-कड़ापन, पीला-हरापन, मिठास-खटास, मीठा सुगंध, खारा सुगंध, कच्चापन-पकापन, मोटापन और इनके सैकड़ों प्रभेद पाये जाते हैं। निश्चय ही हम आमकी इन सारी विशेषताओंपर एक ही समय नहीं विचार सकते इसलिये हम एक समय आमकी किसी एक विशेषता—रंग, स्वाद या गंध—को सारी विशेषताओंसे पृथक् कर उसे विचारका विषय बनाते हैं। यह सिर्फ सुभीतेके ख्यालसे किया जाता है। किन्तु, यहाँ हमें यह ध्यान रखना है कि कोई भी विचार या चिन्तन असम्भव है, जब तक कि उसका विषय—वस्तु—न हो और वस्तु अपनी हजारों विशेषताओंके साथ विश्वका अभिन्न अंश है, इसलिये द्वन्द्वात्मक तरीकेसे सोचते वक्त हम वस्तुओंको उसी रूपमें देखना चाहिये, जिसमें कि वह वस्तुतः है। इसीलिये लेनिनका पहिला सूत्र—

१ प्रत्यवेक्षण (के विषय) को 'साकार' (वस्तुगत, खुद वही वस्तु) होना चाहिये, (न कि उदाहरण या प्रतिनिधि होनेके लिये अयोग्य आकार)।

विचारकी पहिली अवस्थामें हम वस्तुको अपने दिमागमें विश्व—द्वन्द्वात्मक 'सजीव' विश्व—से अलग कर लेते हैं, जो कि वास्तविकता नहीं है। वास्तविकता लानेके लिये उस पृथक्कृत वस्तुको फिर उसके

1 Dialectical Materialism (by David Guest) p p 17 6

'घर'में रखना होगा, जिसमें कि वह फिर 'सजीव' विश्वका अंग बन जाये—गोया इस प्रकार हम पहिली अवस्था(पृथक्करण)का प्रतिषेध करते हैं, ऐसा किये बिना हम अध्यात्मवाद, विज्ञानवादकी मानसिक भूल भुलैयोंसे बच नहीं सकते। इसीलिये, लेनिनका दूसरा सूत्र—

२ हमें प्रत्येक वस्तुके दूसरी वस्तुओंके साथ अनेक प्रकारके जो सम्बंध हैं, उनके सारे योगफलपर विचार करना चाहिये।

प्रत्येक वस्तु यही नहीं कि विश्वव्यापी घटनाका एक अंश है, बल्कि वह स्वयं भी वस्तुतः एक घटना—अनवरत आगम भी किसी तरहके स्थिर भारसे शून्य नित्य परिवर्तनशील प्रवाह—है, इसलिये उसके "स्वभाव"को उसकी प्रकृतिम समाये रूपमें समझा जा सकता है, न कि उसे परिवर्तनके रूपसे अलग करके। अतएव, हमारे लिये विचारणीय हैं—

३ वस्तु या प्रतीयमान विश्वका[1] विकास, उसकी अपनी गति, उसका अपना 'जीवन'।

किन्तु, यह विकास ऐसा नहीं है, जो कि हेतुके बिना 'दैवी चमत्कार' की तरह अपने आप जारी हो गया हो, यह विकास सदा आन्तरिक द्वंद्व (विरोध) तथा बाहरी सम्बंधों—जिनमें खुद द्वंद्व भी शामिल है—का परिणाम है। हम विकासकी व्याख्या उतनी ही कर सकते हैं, और बुद्धिसम्मत तरीकेसे उसे उतना ही समझ सकते हैं, जितने परिमाणमें कि हमने वस्तुके आन्तरिक द्वंद्वकी खोज की है। अतएव—

४ हमें वस्तुमें (उसकी) आन्तरिक विरोधी प्रवृत्तियों (तथा पहलुओं)की तलाश करनी चाहिये, उन्हें देखना चाहिये।

५ वस्तु (या आकार आदि)को विरोधोंके योग या एकताके तौर पर भी देखना चाहिये।

[1] Phenomena

६ इनमें इन विरोधोंके संघर्ष या प्राकट्य तथा जो इन संघर्ष आदिके साथ टकराता है, उसका परीक्षण करना चाहिये।

हरएक वस्तु अपने स्वरूपमें अगणित पेचीदगियाँ भरी है। उसके बतानेवाले सारे पहलुओं और विशेषताओंकी गिनती नहीं की जा सकती। वह फिर की दूसरी वस्तुओंमेंसे प्रत्येकके साथ भिन्न भिन्न प्रकारके संबंध रखती है। उसका परिज्ञान हमें तभी हो सकता है, जब कि हम उसे इन भागोंमें विभक्त—(विश्लेषण)—करके देखें और इन भागोंका उनके पारस्परिक संबंधके साथ एकत्र (संश्लेषण) करके विचार करें। अतएव, वस्तुके यथार्थ ज्ञानके लिये जरूरी है—

७ विश्लेषण और संश्लेषणकी एकता, भिन्न भिन्न भागोंमें तथा पूर्ण योगमें विभाजन—इन भागोंको एक साथ जमा करना।

८ प्रत्येक वस्तु (या आकार आदि) के संबंध—विभिन्न ही नहीं, बल्कि *साधारण, सामान्य* (संबंध भी)। प्रत्येक वस्तु (आकार, घटना आदि) सभी दूसरी वस्तुओंसे संबद्ध है।

९ सिर्फ विरोधोंकी एकता [समागम] ही नहीं, बल्कि सभी दूसरी स्व विरोधी (वस्तुओं)का प्रत्येक निश्चय, प्रत्येक गुण, प्रत्येक विशेषता, प्रत्येक पहलू, प्रत्येक स्वभावका भी।

१० नये पहलुओं, संबंधों आदिके प्रकट होनेकी अपरिमित प्रक्रिया।

११ मनुष्यों द्वारा वस्तुओं, आकारों, घटनाओं आदिके ज्ञानके गंभीर होने—बाहरी रूपसे सार रूप तथा कम गहराईसे *अधिक गहराई तक पहुँचने*—की अनगिनत प्रक्रियाएँ।

१२ सह भावसे कार्यकारण-संबंध (हेतुता) और जोड़ (सन्धि) तथा एक-दूसरेकी निर्भरताके एक रूपसे दूसरे अधिक गहरे तथा अधिक बहुव्यापी (साधारण) रूपमें पहुँचनेकी अनगिनत प्रक्रियाएँ।

विरोधके बीच होता यह संघर्ष विकासका कारण बनता है, तथा एक सीमा पर पहुँचकर पुराने स्थिति-प्रवाहसे एक बिल्कुल क्रान्तिकारी विच्छेद उपस्थित करता है, और पुरानेकी जगह एक नई वस्तु (या गुण) प्रकट होती है। इस प्रकट होनेकी विशेषता है, एक स्थितिसे बिल्कुल भिन्न स्थितिमें कूदना—शान्त प्रवाहका प्रवाहित होना नहीं, बल्कि पिछले प्रवाहका विच्छेद कर एक नये प्रवाहका उपस्थित होना। इस कुदानके स्वरूपको लेनिनने अपने शेष चार सूत्रोंमें बतलाया है—

१३ (वस्तुकी) निम्न अवस्थामें पाई जानेवाली कुछ विशेषताओं, गुणों आदिकी उच्च अवस्थामें आवृत्ति होना।

१४ पुरानी (अवस्था)की ओर दिखलावटी लौटना (प्रतिषेधका प्रतिषेध),

१५ (बाहरी) आकारका (भीतर रहनेवाले) सारके साथ संघर्ष तथा सारका आकारके साथ संघर्ष।

१६ परिमाणका गुण तथा गुणका परिमाणके रूपमें परिणत होना।

१५वें और १६वें सूत्र ६वें सूत्रकी व्याख्या हैं। याद रखना चाहिये कि द्वंद्ववाद मार्क्सवादके ज्ञानका सिद्धान्त है—इसके द्वारा ही वास्तविक ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। सूत्रमें कई बातोंकी व्याख्या अपेक्षित है, जिसे हम आगे कहनेवाले हैं, इसलिये यहाँ कहनेकी जरूरत नहीं।

४ क्षणिकवाद

द्वंद्ववादके रूपका जो दिग्दर्शन ऊपर हुआ है, उससे स्पष्ट है, कि वह विश्व और उसकी वस्तुओं—वस्तु नहीं घटना—को परिवर्तनशील गतिशील प्रवाह मानता है। इसके समझनेके लिये आइये इन बातों पर अलग अलग विचार करें।

(४) *परिवर्तन*—जिस वक्त मनुष्य भाषाका विकास कर रहा था—और उसमें काफी आगे तक पहुँच चुका था, उस वक्त द्वन्द्ववाद पैदा नहीं हुआ था, जिसके कारण कुछ अपरिहार्य दोष हमारी भाषाओंमें रह गये हैं। हम विश्वको घटनाओंका प्रवाह न समझ, उसे वस्तुओंका समूह मानते हैं, उसीके अनुसार हम भाषामें गति-परिवर्तन द्योतक क्रिया पद "होता है" (भवति) न कहकर, "है" (अस्ति) कहते हैं। हमारी बहुत-सी दिक्कतें, गलतफहमियाँ दूर हो जायँ, यदि हम 'अस्ति'का बायकाट कर हर जगह 'भवति'का प्रयोग करें। हर 'चीज' 'है'की अवस्थामें नहीं, बल्कि 'होने'की अवस्थामें है। द्वन्द्ववादका 'है' से कोई संबंध नहीं, चाहे भाषाकी अनिवार्यतासे हमें उसका प्रयोग भले ही करना हो—वह सिर्फ 'होना'से संबंध रखता है।

परिवर्तनशीलता (क्षणिक) वादको अधिक विकसित कर उसे एक साइंसका रूप देनेका भारी श्रेय मार्क्सवादको बहुत हद तक जरूर है किन्तु यह सिद्धांत बहुत पुराना है। बुद्ध (५६३ ४८८ ई० पू०) और उनके समकालीन यूनानी दार्शनिक हेराक्लितु (५३५ ४९५ ई० पू०) दोनों ही क्षणिकवाद (अनित्यवाद) के महान् समर्थक थे। बौद्धोंका तो हर समय यह नारा रहा कि "जो है वह क्षणिक है"[1] जो क्षणिक नहीं है वह है भी नहीं। हेराक्लितु कहता था, "(जगत्‌की) सृष्टि उसका नाश है, उसका नाश उसकी सृष्टि है, कोई चीज नहीं है, जिसके पास स्थायी गुण हो। संगीतका समन्वय निम्न और उच्च स्वरोंका समागम—*विरोधियोंका समागम*—है। यह (क्षणिकता) एक ऐसा नियम है, जिसे न देवताओंने बनाया, न मनुष्योंने। यह सदासे रहा है और रहेगा।" बुद्ध और हेराक्लितुके क्षणिकवादी दर्शनपर हम अन्यत्र[2] कह चुके हैं।

हेगेल् (१७७० १८३१ ई०) यद्यपि विज्ञानवादी था किन्तु वह असंग (४०० ई०) की भाँति मानता था कि विज्ञान स्थिर नहीं, क्षणिक

[1] "यत् सत् तत् क्षणिकम्" [2] देखो "दर्शन दिग्दर्शन"

है, इसीलिये उसे शंकराचार्यकी तरह मायावाद—रस्सीमें साँपके भ्रमकी भाँति यह जगत् अपनेसे सर्वथा विलक्षण ब्रह्म भ्रम, मायामात्र है—का सहारा नहीं लेना पड़ा। हेगेल्ने पहलेसे चले आते विज्ञानवादमें परिवर्त्तनशीलता(क्षणिकता)को मिलाकर उसे एक कदम आगे बढ़ाया। किन्तु पहले हीसे मौजूद असंगके क्षणिकवादको "प्रच्छन्न बौद्ध" शंकराचार्यका स्थिर ब्रह्मवाद—मायावाद—का रूप देना, उनके प्रयत्न को प्रगतिकी ओर नहीं, बल्कि पतनकी ओर बतलाता है। मार्क्स एंगेल्सके वैज्ञानिक (द्वंद्वात्मक) भौतिकवादने हेगेल्के द्वन्द्वात्मक वादको काल्पनिक विज्ञानवादसे मुक्त कर उसे और आगे बढ़ाया।

एंगेल्स परिवर्त्तनशीलतावादके बारेमें समझाते हुए कहते हैं[1]—

"जब हम सारी प्रकृति या मानव-जातिके इतिहास या खास अपनी ही बौद्धिक (मानसिक) क्रियापर विचार, मनन करते हैं, तो सबसे पहले सबन्धों, टक्करों, योगों वियोगोंकी न खतम होनेवाली उलझनोंका चित्र हमारे सामने आता है। इस (चित्र)में पहले जो जहाँ जैसा था, (दूसरे क्षण) उसमेंसे कुछ भी वैसा नहीं रहता, सब कुछ चल रहा (गतिशील) है, अस्तित्वमें आ रहा, और विलीन हो रहा है।

"अतएव पहले-पहल हम *चित्रको संपूर्ण (रूप)के तौरपर* देखते हैं, उस वक्त उसके अलग अलग अवयव कम या अधिक (नजरसे) ओझल रहते हैं, हम (यहाँ) *गति, परिवर्तन, संबंध देखते हैं, न कि (ऐसी) चीजें, जो कि गति या संबंध कराती हैं और (परस्पर) संबद्ध हैं।*

"यह विचार, यद्यपि दृश्योंके चित्रके सामान्य स्वरूपको पूरे आकारके तौरपर ठीकसे प्रकट करता है, लेकिन वह उतना चित्रको बनानेवाले विस्तार(अंशों)को समझानेके लिये पर्याप्त नहीं है, और

[1] Socialism Utopian and Scientific pp 29 34

जब तक हम इन (अंशों विभागों) को नहीं समझते तब तक हमें सारे चित्रका स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता। इन अंशोंको जाननेके लिये हमें उन्हें उनके प्राकृतिक या ऐतिहासिक संबंधसे अलग करना होगा। फिर प्रत्येककी—उसके स्वभाव, विशेष कारण, कार्य आदिके साथ—परीक्षा करनी होगी। प्राकृतिक (भौतिक) साइंस और ऐतिहासिक गवेषणाका यह मुख्य काम है।

"लेकिन, (साइंसके) काम करनेके इस ढंगने हमारेमें यह आदत लगा दी है कि हम प्राकृतिक वस्तुओं तथा घटनाओंको पृथक् कर—विशाल सम्पूर्ण (आकार)में उनके संबंधसे हटाकर—देखते हैं, उन्हें हम गतिकी अवस्थामें नहीं, स्थितिकी अवस्थामें, परिवर्तनशील नहीं, स्थायी (रूप)में, जीवन (की अवस्था)में नहीं, बल्कि मृत्यु (की अवस्था)में देखते हैं।

"इसके विरुद्ध द्वन्द्ववाद वस्तुओं और उनके (मानस) चित्रोंको उनके आवश्यक संबंध, सहभाव, गति, आरम्भ और अन्त (के रूप) में देखता है।

"प्रकृति द्वन्द्ववादका प्रमाण है। प्रकृति अभौतिक (आध्यात्मिक) रीतिसे नहीं, बल्कि द्वन्द्वात्मक रीतिसे (अपना) काम करती है। वह सदामें आवृत्ति करनेवाले चक्र (युग)की सनातन अद्वैतता (के रूप) में नहीं, बल्कि एक वास्तविक ऐतिहासिक (न दुहराये जानेवाले) विकासके रूपमें काम करती है।"

विश्व वस्तुओंका समूह नहीं, घटनाओंका समूह है, अर्थात् जिसे हम वस्तु कहते हैं, वह वस्तुतः परिवर्तनशील तरंग प्रवाह है। एक पीपलके पत्तेको लीजिये। यह उस समय छोटे छोटे कणोंका समूह जान पड़ता है, किन्तु यदि अणुवीक्षणकी सहायतासे लाखों गुना बढ़ाकर देखें, तो वे कण अपने समूहके भीतर निरन्तर बदलते दिखलाई पड़ेंगे।

इस तरह हम नंगी आँखोंसे पत्तेमें निश्च स्थिरताको देखते हैं, सूक्ष्मतामें जानेपर उसे उसका अवयव स्वीकार नहीं कर सकते।

परिवर्तन विश्वके रोमरोममें है, प्राणि अप्राणि सारा जगत् इस नियममें जकड़ा हुआ है। विचार बदलते रहते हैं, राय बदलती रहती हैं, हमारी रुचि अरुचि, हमारी सदाचारीय मूल्य आँकनेकी भावना, हमारी समझ, खुद हमारा स्वभाव भी बदलता रहता है। अपने वातावरणके कारण हम बदलते, नये बन रहे हैं, और हमारे प्रभावमें आकर वातावरण भी बदल रहा और नया बन रहा है। हम भी उसके लिये वातावरण हैं। विश्व स्वयं अपनेको बदलता, नया बनाता प्रकट करता है। उसका हरएक भाग गति कर रहा है। हरएक दृश्य वही नहीं है जो कि एक क्षण पहले था। कोयलेके एक टुकडेको हम जलाते हैं—वह अब कोयला नहीं, बल्कि धुआँ और प्रभास्वर ताप है। वह अब चमकता काला ढेला नहीं है, बल्कि बिखरे हुए कण हैं, जो कि आकाशमें फैल रहे हैं। हरएक परिवर्तन पहले क्षण किसी वस्तु या वस्तु-समूहकी गतिके रूपमें दिखलाई देता है, जिस गतिके साथ उस वस्तुकी कुछ विशेषताएँ तथा दूसरी वस्तुओंके साथ उसके सबंधमें भी तब्दीली हो रही है।

लेकिन, इस गतिको सीधे-सादे तौर से देशमें एक स्थानसे दूसरे स्थानमें जाना नहीं समझना चाहिये, बल्कि जैसा एन्गेल्सने कहा है "यह वास्तविक ऐतिहासिक (न दुहराया जानेवाला) विकास है।" विश्वमें घटित हो रहा, प्रत्येक परिवर्तन, एक नवीन भाव (वस्तु) को अस्तित्वमें लाता है। विश्व परिवर्तन शील विश्व है। एक क्षणसे दूसरे क्षणमें भी वह वही (पहिले क्षणवाला ही) नहीं है। प्रत्येक साँस, जो मैं अपने सेलमें इस वक्त ले रहा हूँ, वह सेलके वायु-मंडलके ऑक्सीजन, कार्बन आदिके परिमाणमें अन्तर पैदा कर रहा है। परिवर्तनशील विश्व कहनेका यह भी मतलब है कि उसके गुण भी बदल रहे हैं।

इस आमूल परिवर्तनमें सन्देह करनेकी जरूरत नहीं, जब कि हम

मालूम है कि भौतिक तत्त्वोंके भीतर घुसने पर हम जिन इलेक्ट्रोन आदि (९२) परमाणुओं पर पहुँचते हैं, उनमें रेडियो क्रियावाले परमाणु[1] स्वतः टूटकर बदलते हुए एकसे दूसरे तत्त्वमें परिणत होते रहते हैं। रेडियो क्रियावाले परमाणु—उनके नाभिकण—जो टूटते हैं, वह किसी बाहरी प्रहारके कारण नहीं, बल्कि अपने भीतरकी विरोधी शक्तियोंके समागम के ही कारण। न्यूट्रनसे गोला बारी करके इधर साइंस वेत्ताओंने परमाणुके आकार-गुण सबमें परिवर्तन कर हजारों तरहके नये रासायनिक मिश्रित तत्त्वोंको तैयार किया है।

सदृश उत्पत्ति—प्रकृतिके अन्तस्तमम परिवर्तन और भी क्रान्तिकारी है, और भी आमूल है, यह तो मालूम हुआ। अब सवाल उठेगा कि ऐसा होनेपर हम "यह वही है" का ख्याल क्यों होता है? यहाँ हमें लेनिन्के १३वें १४वें सूत्रोंको फिर दुहराना पड़ेगा। परिवर्तनकी उड़ान निम्न शर्तोंके साथ होता है—"निम्न अवस्थामें पाई जानेवाली कुछ विशेषताओं, गुणों आदिकी उच्च अवस्थामें आवृत्ति होनी, और पुरानी (अवस्था)की ओर दिखलावटी लौटना।" इसका अर्थ है कि हरएक नई उत्पत्ति पुरानेके सदृश होती है। इस सदृश-उत्पत्तिके कारण वैसा भ्रम होना आश्चर्यकी बात नहीं है।

(२) *गति*—"गतिके बिना भूत (भौतिक तत्त्व) रह नहीं सकता कोई ऐसी गति नहीं जो कि भूत गति नहीं है", देमोक्रितु, लुक्रेतिउस से लेकर मार्क्स, एन्गेल्स, लेनिन् होते आज तक सारे भौतिकवादियोंका यही नारा रहा है। एन्गेल्सने लिखा—[2]

"गति भूतका (अपने) अस्तित्व (रहने)का स्वरूप है। बिना गतिके भूत न कभी था, और न कभी रहेगा। (हम देखते हैं)—

[1] प्लाटिनियम्, रडोन्, रेडियम्, अक्टीनियम्, थोरियम् आदि। देखो, "विश्वकी रूपरेखा"।

[2] Anti-Duhring (1878) p 71

विश्व-आकाशमें गति, नाना प्रकारके आकाशीय पिंडोंके ऊपर छोटे-छोटे पिंडोंकी यांत्रिक ('गुरुत्वाकर्षण वाली') गति ताप या विद्युत्-चुम्बकीय तरंगा, रासायनिक मिश्रण और विच्छेदन या प्राणि शरीरके रूपमें अणु-गुच्छकोंकी गति—किसी भी समय विश्वमें भूतका प्रत्येक परमाणु इन गति प्रकारोंमेंसे एक या दूसरे रूपमें, अथवा एकाएक इन प्रकारोंमेंसे अनेक रूपोंमें होता है। सभी (तरहका) विश्राम, सभी साम्यावस्था सिर्फ सापेक्ष है, और उसे गतिके प्रकारोंमेंसे किसी एककी अपेक्षासे ही समझा जा सकता है।"

(३) *विश्व विच्छेदयुक्त प्रवाह*—परिवर्तनके बारेमें लिखते वक्त हम बतला आये हैं, कि किस तरह विश्व और उसके क्षुद्र परमाणुओं तक पर परिवर्तनका नियम लागू है। भौतिक तत्त्वके सूक्ष्मतम ज्ञात अंश इलेक्ट्रन्[1]को ले लीजिये। साइंसकी ताजा गवेषणाओंने सिद्ध किया है, कि वह कण-तरंग है—अर्थात् उसमें कण-जैसी एकदेशीयताके गुण भी हैं, और तरंग-जैसे प्रवाहके गुण भी, जिसका साफ अर्थ है कि वह सीमित—परिच्छिन्न—विच्छिन्न (विच्छेदयुक्त) प्रवाह है। बुद्धवाद इसी विच्छिन्नतामें तथा उसीके द्वारा होते विश्वका घटना प्रवाह मानता है। विश्व और उसके पदार्थोंके प्रत्येक अभिनव रूप, अभिनव गुणके उत्पन्न होनेके साथ ही अतीत रूप, अतीत गुणसे विच्छेद हो जाता है। इसीलिए, बुद्धवाद सिर्फ प्रवाह कहकर ही नहीं ठहर जाता, बल्कि उसे विच्छिन्न प्रवाह भी कहता है। विच्छिन्न और प्रवाह दो परस्पर विरोधी बातोंको सुनकर घबड़ाना नहीं चाहिये। बुद्धवाद विरोधि-समागमवादका ही दूसरा नाम है। यदि सनातनी तर्कशास्त्रकी समझमें यह नहीं आता, तो उसे जंगलकी खाक छानने दीजिये। प्रकृति जब स्वयं इसका समर्थन करती है, तो तर्क बपुरा किस खेतकी मूली है।[2]

[1] देखो "विश्वकी रूपरेखा"

[2] "यदिदं स्वयमर्थानां रोचते तत्र के वयम्"—प्रमाणवार्त्तिक

विच्छेदयुक्त प्रवाहके सम्बन्धमें लिये एक तरहकी गतिशीलता चाहिए। सॉंप सरकता है—हर स्थानको छूता जाता है, उसकी गति निरन्तर प्रवाह है। और, मेंढककी कुदान (मंडूक प्लुति) एक दूसरे ही तरहकी गति है, जिसमें मेंढक हर स्थानको छूता नहीं है, कूद जाता है, और फिर कुदकर पॉंच हाथके फासले कोई स्थान छूये बिना नये स्थानपर जा पड़ता है। फिर विच्छेदयुक्त प्रवाहके बारेमें हम कह रहे हैं, वह इसी तरहकी मंडूक कुदान है। अंकगणितको हम इस तरहकी मेंढक-कुदानमें भरा देखते हैं। संख्याएँ एककी संख्यासे दो की संख्यापर क्या हम सरकते हुए जाते देखते हैं, या मेंढक कुदानसे? हर अंकपर यही बात है। अंकमें हम सदा १, २, ३ का प्रवाह पाते हैं, जहाँ १ से दो, २ से तीन में कुदान विच्छेदको भी पाते हैं। यह सारा विच्छिन्न (कुदान)-युक्त प्रवाह है।

इस विराट समागम—विच्छेदयुक्त प्रवाह—के न होने पर प्रकृति 'सिनेमा' जैसे चित्र नहीं होती। आजकल सिनेमाका बहुत प्रचार है। नागरिक, ग्रामीण सभी लोग सिनेमा और उसकी देवीके अभिनयोंका आनन्द लेते हैं। जानते हैं, सिनेमाके चल चित्र किस तरह रुपहले पर्दे पर प्रतिबिम्बित हो हमारे मनोरंजनके कारण बनते हैं। यहाँ भी क्षण-तरंग, विच्छेदयुक्त प्रवाह मौजूद है। फिल्म सैकड़ों फीट लम्बा पारदर्शक (फीता) होता है, जिसपर छोटी छोटी चौकोर तसवीरें हैं। इन डेढ़-दो इंच लम्बी चौड़ी चौकोर तसवीरोंको कागज पर लेकर यदि आप आतशी शीशेसे देखें, तो वह चौखटोंमें लगी 'निर्जीव' (गतिशून्य) तसवीरें हैं। किन्तु, जब यह छोटे-छोटे तसवीर मनकाकी माला (क्षण-तरंग) के रूपमें एक के बाद एक पर्दे परसे गुजरता है, तो उनको हम उस रूपमें देखते हैं, जिसे चल चित्रपट कहते हैं। किन्तु, यहाँ एक बात और ख्याल रखिये, यदि सिनेमाकी मशीन-लालटेनके मुँहसे गुजरते वक्त एक तसवीरको दूसरी तसवीरसे 'अविच्छिन्न' क्रमसे लगा दिया जाय, तो जानते हैं तसवीर आपको कैसी दिखलायेगी?—बिल्कुल अस्पष्ट, बिना पहचान किये

कमरेसे खींची तसवीर अथवा साठ वर्षके बूढ़ेकी ऐनककी लगाकर चलनेवाले बालककी आँखोंसे देखी जानेवाली 'दुनिया'की तरह। इसीलिये, सिनेमाकी चित्र मालामें एक तसवीरको दूसरीसे विच्छेद करनेका इन्तिजाम किया गया है। इसी विच्छेदयुक्त चित्र प्रवाहका चमत्कार है, जिसे कि हम सिनेमाकी चलती-फिरती तसवीरोंमें पाते हैं।

घ. द्वन्द्वात्मक (वैज्ञानिक) भौतिकवाद

भौतिकवादके कई भेद हैं, खासकर उसके ऐतिहासिक प्रवाहमें। एक पुराण भौतिकवाद था, चार्वाकको जिसका समर्थक बतलाया जाता है, और कहा जाता है कि वह सिर्फ प्रत्यक्ष प्रमाणको मानता था—गोया वह मनुष्यकी मस्तिष्क शक्तिके इस्तेमालको ठीक नहीं मानता था। लेकिन, हम नहीं समझते, चार्वाक इतना बच्चोंका-सा दार्शनिक था। उसका प्रत्यक्ष प्रमाण पर जोर देनेका यही मतलब हो सकता है, कि इन्द्रियों द्वारा प्राप्त होनेवाला ज्ञान 'परमार्थ' सत् है, दूसरी तरह—कल्पना आदिके द्वारा अनुमान-उपमान शब्द—से जो ज्ञान प्राप्त होते हैं, वह उतने ही अंशमें प्रामाणिक होंगे, जितने अंशमें उन्हें प्रत्यक्ष प्रमाणकी सहायता प्राप्त है।—प्रत्यक्ष मूर्धाभिषिक्त प्रमाण है, दूसरे उसके चाकर हैं। चार्वाकके समय कुञ्जी पर चलनेवाली घड़ी अथवा वाष्प चालित यन्त्रोंका पता नहीं था। पीछे इन यन्त्रोंके अस्तित्वमें आनेपर जो भौतिकवाद प्रचलित हुआ, उसे *यांत्रिक भौतिकवाद* कहते हैं।

(१) *यांत्रिक भौतिकवाद*—पुराण भौतिकवादमें 'किण्व' डालनेसे शराबके नशाकी उत्पत्तिकी भाँति भूतसे चेतनकी उत्पत्ति बतलाते थे। लेकिन, जब चाभी देकर हफ्ता नहीं, वर्षों चलनेवाली घड़ियाँ बनने लगीं, तो इसे लेकर दो तरहके दार्शनिक विचार पैदा हुए, जिनमें एक तो देकार्त-जैसे उन ईश्वरविश्वासियोंका गिरोह, जो कि विश्वको भारी

घटी यन और ईश्वरको चाभी लगानेवाला मानते थे। इस यांत्रिक ईश्वरवादमें ऐसे विचार भी शामिल थे, जिनमें ईश्वरको प्रलय तक के लिये चाभी लगा आराम करते बतलाया गया था, और इसीलिये उनका कहना था, बीचमें सारी बातें प्राकृतिक नियमसे चलती हैं। दूसरा विचार यांत्रिक भौतिकवादियोंका था, जो घड़ी, घड़ीसाज सबको भौतिक मानकर कहते थे, कि किसी ईश्वरको सृष्टिके आदिमें चाभी देने तथा प्रलय (क़यामत) के समय नाश करनेकी जरूरत नहीं। सत्रहवीं अठारहवीं सदीमें यंत्रोंके जो तरह-तरहके आविष्कार हुए थे, उनका प्रभाव भौतिकवाद पर पड़ना जरूरी था। यांत्रिक भौतिकवादियोंके लिये मन और भूत एक ही चीज थी। इस अर्थमें नहीं कि प्रकृतिसे मन निर्मित हुआ है, बल्कि दोनों अभिन्न हैं। गुणात्मक परिवर्तनसे—विच्छेदयुक्त प्रवाह द्वारा—किस तरह बिल्कुल नई वस्तु—घटना—पैदा होती है, इसे वह महत्त्व नहीं देते थे। उनके लिये जिस तरह घड़ी उसके पुर्जोंका योग है, वैसे ही मन भी उसके बनानेवाले भौतिक तत्त्वोंका योग है। अठारहवीं सदीके यांत्रिक भौतिकवादके बारेमें एंगेल्सने लिखा था [1]—

"पिछली सदीका भौतिकवाद बहुत अधिक यांत्रिक था क्योंकि उस समय सभी प्राकृतिक साइंसोंमें यंत्रशास्त्र और (वहाँ भी) वस्तुतः ठोस पार्थिव तथा आकाशीय पिंडोंका यंत्रशास्त्र—संक्षेपमें गुरुत्वाकर्षणका यंत्रशास्त्र एक निष्कर्षपर पहुँच पाया था। देकार्त[2] के लिये जैसे पशु (जीवरहित स्वयंवह यंत्र) था, वैसे ही अठारहवीं सदीके भौतिकवादियोंके लिये मनुष्य एक यंत्र था। रसायन और प्राणि-संबंधी स्वभाव (जिन घटनाओंमें, यह सच है—यंत्र शास्त्रके नियम भी लागू हैं, किन्तु दूसरे उनसे उच्चतर नियमों द्वारा वे भी पार किये जाते हैं) की घटनाओंमें

[1] Ludwig Feuerbach pp 367)

[2] देकार्त सिर्फ मनुष्यों और फरिश्तोंमें ही जीवात्माकी सत्ताको स्वीकार करता था, बाकी प्राणी उसके लिये जीव-रहित यंत्र थे।

इस तरह सिर्फ यन्त्र शास्त्रके मानोंके प्रयोगका अभाव पुराने फ्रेंच भौतिकवादकी एक खास कमी थी, जो कि उस समयके लिये अनिवार्य भी थी।

"दूसरी खास कमी उस भौतिकवादकी इस बातमें थी कि वह विश्वको घटना प्रवाह—ऐतिहासिक घटना प्रवाहके तौरपर विकसित होते भूत (भौतिक तत्त्व)—के तौरपर समझनेकी क्षमता न रखता था। वह समझता था कि प्रकृति निरन्तर गति कर रही है। किन्तु, उस समयके विचारके अनुसार यह गति सदासे एक वृत्त पर हो रही है, इसलिये उस स्थानसे कभी नहीं हटती, और फिर उन्हीं परिणामोंको उत्पन्न करती है।"

फ्रांसीसी भौतिकवादी दोल्बाख[1] (१७२३-८९ ई०) ने लिखा था[2] —"हम (भौतिकवादियों)को कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये, यदि कोई व्यक्ति पहिलेकी कल्पनाओंसे इन्कार करता है। यदि कोई बतलाता है कि प्रकृति अटल एवं सार्वत्रिक नियमोंके खास समूहके अनुसार काम करती है, यदि कोई विश्वास करता है कि मनुष्य, चौपाया, मछली, कीड़े, वृक्ष आदि जैसे आज हैं, वैसे ही सदासे रहते आये हैं और रहेंगे, यदि वह जोर देता है कि तारे नभ-मंडल में अनन्तकाल तक जगमगाते रहेंगे।" यांत्रिक भौतिकवादकी यह यांत्रिक जड़ता ही थी, जिसने विज्ञानवादको आगे बढ़ानेमें काफी सहायता पहुँचाई, यद्यपि उसमें सबसे सहायक थी मध्य और उच्चवर्गके शिक्षितोंके दिमाग की क्रान्तिके नामसे उत्पन्न हुई परेशानी।

(२) वैज्ञानिक भौतिकवाद—द्वन्द्ववादके बारेमें हमने बतलाया कि वह द्वन्द्वसमागम, विच्छेद-युक्त प्रवाह और गुणात्मक परिवर्तनका सिद्धान्त है। भूत और भौतिकवादको भी हम बतला चुके, और यह भी कि यांत्रिक भौतिकवाद—अपने समयके लिये काफी प्रगतिशील रहते

[1] D Holbach [2] Essays in History of Materialism (by Plekhanov) p 13 में उद्धृत।

भी—यह उलझनोंका अपने आठवें दर्शन द्वारा सुलझानेमें असमर्थ था। भौतिकवाद+द्वन्द्ववाद=द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद जिसको ही वैज्ञानिक भौतिकवाद कहते हैं, भौतिकवादका उत्तम विकास है, और यह विश्वके सारे क्षेत्रपर एक-सा लागू होता है।

(१) व्याख्या—वैज्ञानिक भौतिकवाद वह भौतिकवाद है, (क) जो अतिभौतिक (आध्यात्मिक) और विकासहीन भावनाओंसे मुक्त है, (ख) जो कि प्राकृतिक जगत् (जिसमें मनुष्य भी सम्मिलित है) को विकसित होते, स्वरूप-परिवर्तनकर निरन्तर घटना-प्रवाहके रूपमें स्वीकार करता है, (ग) इसीलिये जो उसी तरहके विकास होते सर्वरूप अपनी विकास-प्रक्रियाको चलाता है—यह सभी वस्तुओंको उनकी वस्तु-वास्तवतामें एक दूसरेसे भिन्न स्वरूपों, उनकी अन्योन्याश्रयता, और उनके विकास-संबंधी बाहरी भीतरी परिणामों (की दृष्टि) से देखना चाहता है।[1]

साइंस-युगके आरम्भमें एक समय था, जबकि दर्शन भी धर्मकी भाँति उपेक्षित था, किन्तु कांट, हेगेल् जैसे दार्शनिकोंने उसे बचानेकी कोशिश की। कांटने प्रतिभा और प्रयोगकी सारी कसौटियोंको कुण्ठित करके, और हेगेलने साइंसके आधार द्वन्द्वात्मक भूत (भौतिक) तत्त्वको ही द्वन्द्वात्मक विज्ञान नाम देकर अपने दर्शनके लिये साइंसकी सहायता प्राप्त की। इसमें शक नहीं कि कांट और हेगेलके प्रयत्नोंने दर्शनकी वह गत नहीं बनने दी, जैसी कि धर्मकी हुई। और उसके बाद तो दर्शन यहाँ तक दावा करने लगा कि वह सब साइंसोंके ऊपर महासाइंस है, वैज्ञानिक भौतिकवाद अपनेको साइंसोंका निरंकुश शासक—महाराजा—नहीं समझता, उसकी इस विषयमें क्या राय है, इसे एंगेल्सके शब्दोंमें सुनिये—[2]

---

[1] Dialectics (by T A Jackson) p. 22

[2] Socialism pp 39 40

(११) उद्देश्य—"आधुनिक [वैज्ञानिक] भौतिकवाद सारत द्वंद्व-वादी है, और उसे उस प्रकारके (दर्शन निया) की कोई जरूरत नहीं, जोकि महाराजाकी भाँति सारी सभी साइंसोंकी मौडपर 'मेरा शासन है', यह दिखलाना चाहता है। प्रत्येक खास साइंसके लिये वस्तुओंके बड़े समुदाय और वस्तु-सम्बंधी हमारे ज्ञानके बीच अपनी स्थितिको साफ करना जरूरी है, और जैसे ही वह यह कर लेता है, वैसे ही इस सारे समुदायके लिये उपयोगी एक खास साइंसकी जरूरत नहीं रहती। *अब भी पहलेके सभी दर्शनोंमेंसे जो कुछ बच रहा है, वह है विचार और उसके नियमोंका साइंस—प्रचलित तर्कशास्त्र और द्वंद्ववाद।* और बाकी सभी बातें इतिहास और भौतिक (प्राकृतिक) साइंसके अन्तर्गत आ गई हैं।"

इस तरह साफ है, कि वैज्ञानिक भौतिकवाद अपनी वही स्थिति नहीं समझता, जो कि दूसरे दर्शन। पैसोंके लिये—दो-चार नहीं दो-चार हजार दो-चार लाखके लिये—जुआ-चोरी, रिश्वत, बेइमानी, बही-खातेका जाल सब कुछ करनेवाला शिक्षित धनिक-वर्ग तथा उसके पिट्ठू जिस तरह रोटीकी बात करतेही नाक भौं सिकोड़ सातवें आसमानपर बैठे देवताकी तरह बोल उठता है—मनुष्य रोटीसे नहीं जीता, रोटीका सवाल रखना मानवताका अपमान है, मनुष्यको "नेह नाना", 'सत्य शिव सुन्दर', "तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते।"[1] ठीक इसी तरह दर्शन भी अपनेको सातवें आसमानका देवता समझ "शाम बादशाहके हुस्नमाने" निकालता है, जो नितान्त परिहासास्पद है, इसे कहनेकी आवश्यकता नहीं।—और इसे दार्शनिकगण अधिक सोचने-समझनेकी शक्ति रखने वाले बूझते हैं। इसीलिये तो वह भी पुराने समयमें (और अब भी जब-तब)—जैसे कणाद, गौतम, गजाली, शङ्कर—और [illegible]

[1] "यहाँ नाना नहीं है", "सत्य, अच्छा, सुन्दर", "[illegible] ज्ञान करो, [illegible] कि (पामर लोग) [illegible]

आँखोंमें धूल झोंकनेके लिये कांट और विलियम् जेम्सने भी—धर्म और दर्शनके समन्वयकी कोशिश की थी, उसी तरह आज भी कुछ लोग दर्शन और साइंसका समन्वय करना चाहते हैं।

इससे एक बात और साफ हो जाती है, कि मानवकी प्रगतिमें दर्शन धर्मसे आगे आनेवाली स्थिति रखता है। इसलिये दुनियामें सभी जगह दर्शनको गाली देते देख भी धर्मको उसकी सहायता पानेके लिये अपना हाथ पसारना पड़ा। साइंस दर्शनसे भी आगेकी प्रगति है, इसलिये "लोग क्या कहेंगे"के खयालसे दर्शन चाहे साफ स्वीकार न करे, किन्तु वह भी साइंसका मुँह जोहता है। "शाह बादशाहका हुक्मनामा" निकालनेसे दर्शन साइंसका महाराज नहीं हो सकता। वैज्ञानिक भौतिकवाद अपनेको साइंसोंके ऊपर नहीं समझता और न साइंससे अलग। वह सभी साइंसों—ज्योतिष, भौतिकशास्त्र, रसायन, प्राणिशास्त्र के गवेषणीय विषय द्वन्द्वात्मक भूतको आगममें आकूल न होने देनेकी कोशिश करता है। इसकी वर्तमान अवस्थामें कितनी जरूरत है यह आप आसानीसे समझ सकते हैं, जबकि जीन्स और एडिंग्टन जैसे साइंसदानोंको धर्म दर्शन—राज तथा वर्तमान समाज-व्यवस्था—की चापलूसी करते हुये अपने पदको ठीकरों ("सर" ?)के मूल्य बेंचते देखते हैं। वैज्ञानिक भौतिकवादकी आज आवश्यकता है, विचार-क्षेत्रमें इन प्रतिक्रियावादी विचारों (दर्शनों) से लोहा लेनेके लिये। वस्तुतः, वैज्ञानिक भौतिकवाद विज्ञानों (साइंसों)का अधिनायकत्व है, जो कि कमकर अधिनायकत्वकी भाँति नीचेसे—भिन्न भिन्न साइंसोंसे—शक्ति प्राप्त करता है। और जैसा कि एन्गेल्सने अभी कहा, जैसे ही साइंसको "आत्मचेतना" आजायेगी, और नामधारी साइंसदानोंकी धाँधली तथा अनधिकार चेष्टा खतम हो जायगी, वैसे ही यह अधिनायकत्व और विचार क्षेत्रकी सरकार भी सूरज मुखी मुद्रा होजायगी, तथा जो काम वैज्ञानिक भौतिकवादके रूपमें आज संगठित हुआ है, उसे खुद साइंस अपने आप करने लगेंगे, इस प्रकार

उनके (सफल गवेषणाओं) कुछ उत्तम उदाहरणोंको यहाँ उद्धृत करना (अच्छा नहीं, क्योंकि) उससे उनकी नौकरी और वेतन पर खतरा हो सकता है।"

देखा, पूँजीवादी समाजके विचार-स्वातंत्र्यका दिग्गजवादी गौरव अन्दर कितनी पोल है! इसने साइंस सेवक समझके सिर पर भी कच्चे धागेके सहारे नंगी तलवार लटका रक्खी है!!

(१५) भूतकी प्रधानता "भेद नाश"वाले उपनिषद्के ऋषियों, तथा निर्विकार विज्ञान(मन)मयी (अभौतिक) दुनियाके 'स्रष्टा' अफलातूँको छोड़ दीजिये, उन्हें अत्याचारपूर्ण भारसे दबी जाती दासोंकी दुनियाको भुलाने का यही रास्ता मालूम हुआ, किन्तु आधुनिक साइंस युगके विचारक भी भौतिक जगत्को भुलवानेकी जी-तोड़ कोशिश करके जब बेहतर दुनिया बनानेके प्रयत्नमें बाधा डालते हैं, तो आश्चर्य और क्षोभ दोनोंकी सीमा नहीं रहती। शायद वह यह कहते हैं कि बेहतर दुनिया बनानेमें हम बाधा नहीं डालते, किन्तु "करनी रहित कथनी" अपने और दूसरोंको धोखा देनेके सिवाय कुछ नहीं है। यदि उनके विचारमें भौतिक दुनियाका अस्तित्व ही नहीं है, तो सर राधाकृष्णन् हिन्दू विश्वविद्यालयकी व्यासगद्दीसे गीता या शंकराचार्यके अद्वैतवाद—मायावाद—को सुनाकर कुछ नौजवानोंके दिमागमें धर्मकी सड़ी लाशकी माला धारण करानेमें भले ही सफल हो सकते हैं, किन्तु उनसे यह आशा नहीं की जा सकती, कि वह उसी तरह नई दुनियाके निर्माण करनेमें प्राण-शरीर लगा सकेंगे, जितना कि वह तरुण लगा सकते हैं, जिनके लिये दुनिया माया, अनिर्वचनीय ब्रह्मकी छाया नहीं, बल्कि वह वस्तु-सत्य—हजारों पीढ़ियों और असंख्य मनुष्योंके दुःख-सुख, जीवन-मरणकी वास्तविक दुनिया—है। वह जमाना गया जब भौतिकवादियोंको दुराचारी 'ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्'वादी स्वार्थी कहकर लोगोंको भटकाया जा सकता था। अब लोगोंकी आँखें खुली हैं, और वह जानते हैं कि सबसे

पामर नरपशु दुराचारी मनुष्य मिलेंगे धर्माचार्यों और उनके इशारे पर गदगद हो नाचनेवाले सेठों, राजाओं, नवाबोंमें। स्वार्थके लिये जाति और देशको बेंचनेवाले भी उसी वर्गमें ज्यादा मिलेंगे, जो कि "नेह नाता" का अनन्य भक्त है।

हाँ, लेकिन आजके दार्शनिकोंने पैंतरा बदला है, वह मायावादकी जगह परिणामवादी विज्ञानवाद—दुनिया कल्पित नहीं, अभौतिकतत्त्व (विज्ञान या मन) का परिणाम (रूपान्तर) है—को मानते हैं, वह कहते हैं विश्वके भीतर मूलतत्त्व भूत नहीं, अभूत (विज्ञान, मन) है। लेकिन भूतके बिना मन (विज्ञान) कभी था, क्या यह कल्पना भी की जा सकती है—वैज्ञानिक विधिके अनुसार? साइंस हमें बतलाता है कि मनके पैदा होनेसे पहिले अरबों वर्षों तक बिना मनके ही भूत (भौतिक तत्त्व) मौजूद था। भूगर्भ शास्त्री पृथिवीकी आयुको दो अरब वर्षसे ऊपर मानते हैं, आइये देखिये तो वहाँ मन कब उत्पन्न होता है। लेकिन यहाँ पहिले यह प्रश्न उठ खड़ा होगा—मनको किसके भीतर मानते हैं। प्रभु ईसाके भक्तोंका फतवा था कि स्त्रियोंमें जीव नहीं है। खैर! यह चौदह-पंद्रह सौ वर्षोंकी पुरानी बात है, और बात बदलेनेपर जीव और आत्माकी बालकी खाल खाचनेका डर है। ईश्वरपुत्र ईसाके परमभक्त देकार्त (१५९६ १६५० ई०) को लीजिये, उस मरे—प्रभु मसीह उसकी आत्माको शांति दें—अभी तीन सौ वर्ष मुश्किलसे हो पाये हैं—उसका कहना था मनुष्य छोड़ बाकी सभी प्राणी—वानर और वनमानुष भी—चलते-फिरते यंत्र हैं। आधुनिक मानवका पता ४०, ५० हजार वर्षसे पहिले बिल्कुल नहीं लगता। यदि नेअन्डर्थल, जावी, चीनी पथराई हड्डियोंवाले मानवों अथवा मानवाभासोंको भी मान लें कि उनमें अफलातूँ और शंकराचार्य जैसा मन था, जो कि अपने भीतरसे इस ब्रह्मांड का मदारीकी थैलीकी तरहसे निकाल सकता था, तो भी हम १० लाख वर्ष तकही पहुँचते हैं। यदि आप और आग्रह करते हैं, और आधुनिक पक्षियों

तत्को मन प्रदान करना चाहते हैं, क्योंकि तोते मनुष्यकी तरह बोलते हैं—बोलते ही नहीं गुस्सा या खाना माँगनेके शब्दोंके अर्थसे भी कभी कभी परिचित देखे जाते हैं—इसलिये उनके तुफैलसे सारी पक्षी जातिको यदि मनवाली माननेका आग्रह करते हैं, तो एवमस्तु, तब भी ५० लाख वर्षसे आप आगे नहीं पहुँचते—साथ ही यह भी ख्याल रखिये कि उस वक्तके पक्षी तोतेका तो क्या आजके उल्लूके जूतेका तस्मा खोलनेकी योग्यता नहीं रखते थे। तब भी मनकी आयु ५० लाख वर्ष होगी, जब कि पृथिवी (उसके मन हीन भूत) की आयु २०,००० लाख वर्ष है। आप यदि सारे पुराण-पक्षी, पुराण सरीसृप, अर्ध जलचर, मछली, प्रथम रीढ़धारीसे भी आगे अ-रीढधारी प्रथम प्राणीको भी मन-वाला कहना चाहते हैं, तो हम उसके लिये भी तैयार हैं, यद्यपि इतना बतला देनेके साथ कि इन बेचारोंको अपने मनसे दुनिया बनानेकी साथ 'सात जन्म' में भी नहीं हो सकती थी और जोंक, केंचुये जैसी अरीढ़धारी प्राणिजातिके प्रथम वंशज बैक्टीरिया और विरस् जैसोंको भूत और अ-भूत (जड चेतन) दोनों कहलानेका वैसा ही अधिकार था, जैसे चमगादड़को पशु और पक्षी दोनों कहलानेका। खैर, आपके इस दुराग्रह-के मान लेनेपर भी मनकी आयु सिर्फ ५०० लाख वर्ष होती है, जबकि पृथिवीमें मौजूद भूत उससे उससे ४० गुना बूढ़ा है। इससे साफ साबित है, कि विश्वमें भूत (भौतिक तत्व) पहिलेसे मौजूद था, मन या विज्ञान पीछे आया। साइंसवेत्ता हैल्डेनके शब्दोंमें[1]—

"चाहे, बाहरी प्रकृति (जगत्) के बारेमें हमारा ज्ञान (साक्षात् नहीं) परम्परासे (विषय इंद्रिय-मस्तिष्कके सम्पर्कसे प्राप्त वेदना द्वारा) ही क्यों न हो, किन्तु हम उसके बारेमें जितना जानते हैं, उसके सामने हमारा वेदनासंबंधी ज्ञान नगण्यसा है, क्योंकि इस (जगत्) के बारेमें जो ज्ञान हमें प्राप्त है, वह सामाजिक (सारे समाज द्वारा अर्जित) है।

[1] Marxist Philosophy and Sciences pp 140-42

मैं अपने हाथको देखता हूँ, और जानता हूँ कि इसमें कितनीही नस, पशी, हड्डी, रुधिरबिंदु हैं। यह ज्ञान हजारों शरीर शास्त्रियोंकी वेदनाओंपर आधारित है। मैं प्रत्येक केशके परमाणुओंकी स्थिति-व्यवस्थाको जानता हूँ (या कमसे कम स्थूल रूपसे जानता हूँ)। यह ज्ञान आस्टरकी वेदनासे प्राप्त हुआ है, जो कि एक्स रेके फोटो चित्रोंकी परीक्षा करते वक्त उसे हुई। हजारों आदमियोंका समाजीकृत (सारे समाज द्वारा अर्जित) ज्ञान, चाहे वह (साक्षात् नहीं, वेदना) परम्परासे ही प्राप्त क्यों न हो, उससे कहीं अधिक (प्रामाणिक) सूचना हमें देता है, जितना कि एक आदमीका वैयक्तिक ज्ञान। मुझे वास्तविक दुनियामें काम करना है। वे (विज्ञानवादी वेदान्ती) भी, यदि पूर्णतया स्वार्थी नहीं हैं, तो, अपने विचारोंको अपने साथी (दूसरे मनुष्यों) तक भूत (भौतिकतत्त्वों) पर काम करते हुए लेखन या भाषण द्वारा पहुँचाते हैं। यदि आप (विज्ञानवादी) सचमुच विश्वास रखते हैं, कि आपने अपनी वेदनाओं द्वारा जगत्को बनाया है, तो आप (ऐसी विषम दुनिया बनाकर अपने ऊपर) बड़ी भारी जवाबदेही ले रहे हैं। तो भी मैं (जगत्के बनानेवाले) आपको नहीं कहता कि आप एक (दूसरी इससे) बेहतर दुनियाको बनायें, बल्कि मैं सिर्फ (इतना ही अर्ज करूँगा, कि आइये) इस सामने (मौजूद जगत्)को बदलनेमें हमारी सहायता कीजिये। मुझे विश्वास है, ऐसा (बदलनेकी सहायता) करनेमें [स्वार्थी वेदान्ती सत्ताधारियोंकी ओरसे] जिस विरोधका सामना आपको करना पड़ेगा, वह आपको पक्का विश्वास करा देगा, कि आपका मुकाबिला [मायासे नहीं बल्कि] वास्तविकता [ठोस जगत्] में हो रहा है।"

(v) *वैज्ञानिक भौतिकवादके सामने काम*—इसे मार्क्सने एक वाक्य कह दिया है[1]—

[1] Thesis on Feuerbach XI

"दार्शनिकोंने भिन्न भिन्न ढङ्गसे जगत्की सिर्फ *व्याख्या* की है, किन्तु (असल) बात है, उस (जगत्)के बदलनेकी।"

भौतिकवादियोंको पिछले सत्ताइस सौ वर्षोंमें—याज्ञवल्क्यसे लेकर हिट्लर तक—जो गालियाँ सुननी पड़ी हैं, वह इसलिये कि वह इस दरिद्रता और अन्यायसे भरी दुनियाकी गलत-सलत व्याख्या नहीं करना चाहते, बल्कि उसे बदलनेमें लग जाते हैं। वैज्ञानिक भौतिकवाद वह दर्शन (हमारी भाषामें प्रचलित शब्दके अनुसार) है, जो कि बतलाता है—दुनियामें परिवर्तन होता है और कैसे यह परिवर्तन होता है। यही नहीं उस परिवर्तनमें मनुष्य होनेके नाते हमें हिस्सा भी लेना चाहिये। हमारे आँखोंके सामने बड़ा भारी परिवर्तन घटित हो रहे हैं। एक परिवर्तन यह है जो कि साइंस अपने आविष्कारोंसे उपस्थित कर रहा है।—रेल, तार, बिजली, हवाई जहाज, रेडियो, सिनेमा किस तरहके परिवर्तनको उपस्थित कर रहे हैं, यह मनुष्यकी अचिन्त्य क्षमताको बतला रहे हैं। राजघाट (बनारस)के पुलके पास खड़े होकर देखिये तो इस पारसे उस पार बीस गजके करीब लम्बे और भारी भारी लोहेके गार्डरोंसे बने उस विशाल पुलको, और फिर उसके पास खड़े किसी ३॥ हाथ लम्बे आदमीको देखिये। देखिये मनुष्यके जग-परिवर्तन करनेकी शक्तिको। यह जिनात(जिन्न)-बादशाहोंकी तरहकी शक्ति नहीं है, वैसी शक्तिवाले आगरे और काँकि (राँची) में काफी मिलेंगे, किन्तु उन्होंने एक छछूँदर भी पैदा करके नहीं दिखाई। और जब ५०,००० और ६०,००० टन, (१५,००,००० और १८,००,००० पंद्रह और अठारह लाख मन) के किसी दीर्घकायी जहाजको आप देखते हैं, उस वक्त भी डेढ़ मन भारी आदमीकी परिवर्तन करनेकी शक्तिको समझ सकते हैं। वैज्ञानिक भौतिकवादी मनुष्यके कोरे सपनोंपर नहीं, बल्कि वास्तविक परिवर्तनकी शक्ति पर विश्वास करते हैं, और जगत्को बेहतर रूपमें परिवर्तित करनेके लिये उसे इस्तेमाल करना चाहते हैं। सोवियत् मध्य एसियामें कराकुलनकी हजारों

मील विस्तृत निर्जल निर्जन भूमि है। यहाँ छोटी छोटी घास उगती थी, जिसके सहारे लाखों भेड़ें, घोड़े, ऊँट पाले जा सकते थे, किन्तु यहाँ पीने का पानी नहीं था। जमीनके पेटमें पानी प्रचुर परिमाणमें था, किन्तु वह कास्पियन समुद्रके जलसे भी ज्यादा खारा (नमकवाला) था। नमक बेकार चीज नहीं, पानी बेकार चीज नहीं, घास बेकार चीज नहीं, क्योंकि उनकी सहायतासे अपार सम्पत्ति—जबा कमानेवाली ही नहीं, मनुष्यके जीवनको सुखी और समृद्ध बनानेवाली—पैदा की जा सकती थी, किन्तु आदिकालसे करा-कल्पक पथिकके हृदयमें सिर्फ भारी भय सचार करने का कारण बना रहा। जब सोवियतोंकी घोर भौतिकवादी सरकार कायम हुई, मनुष्यने जग-परिवर्तन करनेके लिये साइंसके हथियारको हाथमें लिया, तो कराकल्पककी उस मरुभूमिमें बड़े-बड़े ट्यूब वेल् लगाये गये, बड़े-बड़े जलाशय बनाये गये। जाड़ेमें पाँच-छै महीने तक इस करा (काले) रेगिस्तानमें पानी जम जाया करता है। उस समय ट्यूब वेल् से पानी निकाल निकालकर इन सीमेंट किये तालाबोंमें भरा जाता। सर्दीसे शुद्ध पानी बर्फ बन जाता और नमक नीचे तलछटके तौर पर बैठ जाता। इन बर्फकी चट्टानोंको हजारों मनुष्य और मशीनें दूसरे महान् सरोवरोंमें डालते रहते हैं। गर्मी आने पर बर्फ पिघलकर वहाँ शुद्ध जलकी अपार जलराशि जमा हो जाती। आज कराकल्पककी भूमिसे लाखों टन नमक निकलता है, करोड़ों-करोड़ भेड़ें तथा दूसरे पशु मांस, ऊन, चमड़ा और दूध प्रदान कर रहे हैं। आज वहाँ बिजलीकी रोशनी, रेडियो, सिनेमा, पुस्तकालय, अस्पताल, होटल, रेस्तोराँसे सुसज्जित शहर और कस्बे आबाद होते जा रहे हैं। मनुष्य जगत्के परिवर्तित करनेमें जोर शोरसे लगा हुआ है।

मनुष्यने अपने सामाजिक (वैयक्तिक नहीं) प्रयत्नसे मस्तिष्कका विकसित किया, साइंसको पैदा किया, अब उसकी सहायतासे वह जग परिवर्तनको और तेजीसे कर रहा है। तो भी इस परिवर्तनके साथ खुद

समाजके परिवर्तनमें गति अत्यन्त मन्द रही है, लेकिन अब वह समझने लगा है, जग-परिवर्तन करते हुए अपने तथा अपने समाजको अछूता रखनेकी कोशिश नहीं करनी चाहिये, बल्कि दोनोंको घरसे शुरू करना चाहिये। इसीलिये यहाँ 'समाजवादकी जय', इसीलिये यहाँ "साम्यवादकी जय", इसीलिये यहाँ "पूँजीवादकी क्षय" करनी है।

(vi) सत्य बनाया नहीं जाता—वैज्ञानिक भौतिकवाद घटना-प्रवाहवाली इस वास्तविक दुनियासे अलग सत्यकी दुनिया खोजनेकी गलती नहीं करता। दार्शनिक काफी ऐसे हैं और हुए हैं, जो इस भौतिक दुनियाके पीछे एक आत्मा, ब्रह्म, या मन (विज्ञान)की वास्तविक लोकोत्तर दुनियाके पानेका दावा करते हैं। ऐसा दावा करनेवालोंके बारेमें हम यही कह सकते हैं, कि उन्होंने वहाँ 'सत्य' को पाया नहीं—पैदा किया। किन्तु 'सत्य' पाया जाता है, पैदा नहीं किया जाता है। इस विद्यमान दुनियासे इन्कार कर इस तरह सत्यका पैदा करना सिर्फ मनका लड्डू है, जिसे हाथमें लेकर परीक्षा नहीं कर सकते, जो किसीकी भूखको तृप्त नहीं कर सकता। हम जिसकी वैज्ञानिक परीक्षा नहीं कर सकते, वह सिर्फ मूढ विश्वासकी बात भर हो सकता है।

(vii) फ्वेरबाखपर ग्यारह सूत्र—हेगेल्‌के द्वन्द्ववादको मार्क्स तक पहुँचानेमें लुडविग् फ्वेरबाख (१८०४-७२ ई०) का खास हाथ है। फ्वेरबाखने "ईसाइयत-सार"[1] नामसे एक बहुत ही विचारपूर्ण पुस्तक लिखी थी,[2] जिसे पढ़नेके बाद मार्क्स (१८१८-८३ ई०)ने १८४५ ई० में एक नोटबुकमें ग्यारह बातें नोट कर दी थीं। मार्क्सकी मृत्युके बाद १८८८ ई० में एन्गेल्स जब मार्क्सके कागजोंकी देखभाल कर रहे थे, तो उन्हें ये नोट मिले, जो "फ्वेरबाखपर नोट"[3] के नामसे

[1] Essence of Christianity
[2] देखिये "दर्शन दिग्दर्शन"
[3] Thesis on Feuerbach

मशहूर हैं। वैज्ञानिक भौतिकवादके समझनेके लिये तरुण (२७ वर्ष) मार्क्सके ये सूत्र बहुत सहायक साबित हुए हैं।—

१ अबतक विद्यमान हर एक भौतिकवाद—जिसमें फ्वेरबाख का भी शामिल है—में प्रधान दोष यह है, कि (उनमें) विषय [बाह्य पदार्थ], वास्तविकता, इन्द्रियगोचरताको *मानुषिक इन्द्रियगोचरीय क्रिया,-प्रयोगके तौर पर नहीं*, मानसिक तौर पर नहीं, बल्कि सिर्फ विषय या चिंतन[1]के तौरपर ही ग्रहण किया जाता था। इस तरह भौतिकवादके विरोधमें विज्ञानवादने क्रियावाले पहलूको विकसित करनेका मौका पाया, किन्तु [हाँ] निराकार रूपमें ही, क्योंकि विज्ञानवाद किसी वास्तविक इन्द्रिय गोचरीय क्रियाको स्वीकार नहीं करता। फ्वेरबाख विचारके विषयों [मानसिक कल्पना चित्रों] से वस्तुत भिन्नता रखनेवाले इन्द्रियगोचर विषयोंको स्वीकार करता है, किन्तु वह स्वय मनुष्यकी क्रियाको विषयों (बाह्य पदार्थों) के द्वारा होनेवाली क्रियाके तौरपर ख्यालमें नहीं लाता। इसीका परिणाम है, जो कि "ईसाइयत सार" में सैद्धान्तिक मनोभावको ही वह एकमात्र शुद्ध मानवीय मनोभाव समझता है, और प्रयोगको वह सिर्फ उस [मानवीय मनोभाव]की दिखलावटी गन्दी 'म्लेच्छ' मूर्ति मानता और निश्चित करता है, इसीलिये वह व्यवहार गाम्भीर्य समन्वित क्रान्तिकारी क्रिया [प्रयोग] के महत्त्वको समझ नहीं पाता।

२. साकार सत्य क्या मनुष्यकी समझ द्वारा प्राप्त किया जा सकता है? यह प्रश्न सैद्धान्तिक नहीं व्यावहारिक प्रश्न है। सत्य—अपने सोचनेकी वास्तविकता, शक्ति, 'इस-ओर-पन'—को प्रयोग [क्रिया] में मनुष्यको सिद्ध करना होगा। प्रयोग [क्रिया] से रहित चिन्तनका वास्तविकता या अवास्तविकताके बारेमें

[1] Contemplation

विवाद करना सिर्फ मतवादोंवाला सवाल [है, अतएव व्यर्थ] है।

३ मनुष्य परिस्थितियाँ और [पारिवारिक] पालन-पोषणकी उपज है, इसीलिये परिवर्तित मनुष्य [किन्हीं] और परिस्थितियों[1] तथा परिवर्तित पालन पोषणकी उपज हैं।—भौतिकवादी सिद्धान्त यह भूल जाता है कि परिस्थितियाँ भी उसी तरह मनुष्य द्वारा बदली जाती हैं, और शिक्षकको स्वयं शिक्षा प्राप्त करनी होती है। इसलिये इस सिद्धान्तको समाजको दो हिस्सोंमें बाँटनेकी बातपर आना पड़ता है, जिनमेंसे एक (रावर्ट ओवेनके रूपमें) समाजके ऊपर आसन लगाता है।

परिस्थितियों और मानवीय क्रियाओंके परिवर्तनको एक ही साथ (साथकी बात) क्रान्तिकारक प्रयोगके तौरपर ही माना और बौद्धिक तौरसे समझा जा सकता है।

४ फ्वेरबाख़ मजहबी आत्म-बहिष्कार—दुनियाको दो मजहबी काल्पनिक तथा वास्तविक दुनियाओंमें बाँटना—को लेकर शुरू करता है। मजहबी दुनियाको उसके समारी उपादानमें विलीन करना फ्वेरबाखका काम है। उसका ध्यान इस ओर नहीं जाता कि यह कर चुकने पर भी मुख्य बात करनेको रह जाती है, क्योंकि, सांसारिक उपादान अपनेको अपनेसे ऊपर उठा एक स्वतन्त्र लोकके तौरपर स्थापित करता है, [फ्वेरबाखने जो यह ईसाई स्वर्गकी व्याख्याकी है] उसकी यह व्याख्या इस सांसारिक उपादानके आत्म भेद (अपनी फूट) और आत्म विरोधिता द्वारा ही की जा सकती है। इसलिये सांसारिक उपादान [ईसाई स्वर्गसे भिन्न यह हमारी ठोस दुनिया] को ही सबसे पहले उसके [आन्तरिक] विरोधके रूपमें समझना होगा, और तब विरोधको हटाकर प्रयोगमें उसे आमूल परिवर्तित करना होगा। इस तरह,

[1] Secular

उदाहरणार्थ एक बार जहाँ पता लग गया कि (पवित्र सन्त-परिवारके भीतर) सांसारिक परिवार (का ख्याल) छिपा हुआ है, तो खुद सांसारिक परिवारका ही सैद्धान्तिक (शास्त्रीय) तौरसे खंडन और प्रयोग द्वारा मौलिक परिवर्तन करना चाहिये।

५ फ्वेरबाख निराकार चिन्तन से सन्तुष्ट न हो, इन्द्रियगोचरतायुक्त चिन्तनमें प्रवृत्त होना चाहता है, किन्तु इन्द्रियगोचरताको वह एक व्यावहारिक [प्रयोग लायक] मानवीय इन्द्रियगोचरता-युक्त क्रिया नहीं ख्याल करता।

६ फ्वेरबाख मजहबको उसके मानवीय सारमें लेता है। किन्तु, यह मानवीय सार एक-एक व्यक्तिमें सदा पाई जानेवाली निराकार-कल्पना नहीं है। तहमें पहुँचनेपर वह सामाजिक सबधोंका पुंज [सुरूना] है।

फ्वेरबाख इस वास्तविक सारको खंडन करनेका प्रयत्न नहीं करता, इसीलिये वह [निम्न बातोंके लिये मजबूर है]—

(१) ऐतिहासिक घटना प्रवाहसे निकालकर धार्मिक भावनाको अपने लिये खास चीजके तौरपर स्थिर करना और एक निराकार—अलग थलग—मानवीय व्यक्तिको पहलेसे मान लेना।

(२) अतएव मानवीय सार, फ्वेरबाखके मतसे, केवल [न्यायशास्त्रकी] *जाति*—जिसका काम है, मूक [निष्क्रिया] आन्तरिक समानता [गायपन] के तौरपर, बहुतसे व्यक्तियों [गाय-शरीरों] को *स्वभावतः* मिलाना—के तौरपर समझा जा सकता है।

७ इसीलिये फ्वेरबाखको नहीं सूझ पड़ता, कि 'धार्मिक भावना' खुद एक *सामाजिक* उपज है। जिस निराकार व्यक्तिका

उसने [अपने प्रथमें] चित्रण किया है, वह वस्तुतः एक खास प्रकारका समालोचना [उपाधि] है।

८ सामाजिक जीवन सारतः व्यावहारिक [प्रयोगात्मक] है। सभी [निगूढ़] रहस्य—जो सिद्धान्तको रहस्यवादकी ओर भगा ले जाते हैं—मानवीय व्यवहार [प्रयोग] तथा इस व्यवहारके समझनेसे बौद्धिक तौरपर हल हो जाते हैं।

९ चिन्तनमूलक भौतिकवादके द्वारा सबसे बड़ी बात जो मिली है, वह 'नागरिक समाजमें अकेले व्यक्तियोंका दृष्टिकोण है।

१० प्राचीन भौतिकवादका दृष्टिबिन्दु 'नागरिक समाज' है, नवीन [भौतिकवाद] का दृष्टिबिन्दु है मानवतायुक्त समाज या समाजवादयुक्त मानवता।

११ दार्शनिकोंने भिन्न भिन्न तरीकेसे जगत्की सिर्फ व्याख्या की है, और असल बात है उसके बदलनेकी।

फ्वेरबाखपर मार्क्सने जो ये ग्यारह सूत्र लिखे हैं, वह बिना भाष्य और विवरणके समझमें आना इसलिये भी मुश्किल है, क्योंकि उसमें हर जगह फ्वेरबाखकी 'मास्टरपीस' (श्रेष्ठ कृति) 'ईसाइयत-सार' की ओर संकेत है। भाष्य विवरणकी जरूरत समझते हुए भी मैं उस लोभका संवरण करना चाहता हूँ, क्योंकि पुस्तकके विस्तारका ख्याल जरूर रखना है और साथ ही फ्वेरबाख् और उसके 'ईसाइयत-सार' पर मैं "दर्शन दिग्दर्शन"में लिख चुका हूँ। यहाँ, पाठक यदि सिर्फ इतना स्मरण रखें, तो कुछ काम चल जायगा, कि फ्वेरबाख्ने ईसा-मसीह, परमात्मा, पिता ईश्वर, परलोक (स्वर्ग नर्क), फरिश्ता आदि सभी ईसाई कल्पनाओंका आधार इसी हमारे चातुर्भौतिक जगत्को माना है, और ईसाइयतकी अलौकिकतापर भारी प्रहार किया है। मार्क्सने फ्वेरबाख्को कुछ बातोंमें और आगे न बढ़नेके लिये फटकारा भी है,

तो भी फ्वेरबाख्ने महत्त्वको वह कम नहीं मानता। फ्वेरबाख् कहता है—

'धर्म मनुष्यको अपने आपसे अलग कराता है, (इसके कारण) वह (मनुष्य) अपने सामने, अपने प्रतिवादीके तौरपर, ईश्वरको ला रखता है। ईश्वर वह है, जो कि मनुष्य नहीं है—मनुष्य वह है, जो कि ईश्वर नहीं है। ईश्वर और मनुष्य दो विरोधी छोर हैं, ईश्वर पूर्णतया भावरूप, वास्तविकताओंका योग है, मनुष्य पूर्णतया अभाव-रूप (अकिंचन) सभी अभावोंका योग है।'[1]

३. परिवर्तनकी घटना-शृंखला

जगत्के परिवर्तनकी व्याख्या जगतसे करना, वैज्ञानिक भौतिकवाद का सबसे मुख्य काम है, यह अब तककी लिखी पंक्तियोंसे स्पष्ट हो गया होगा। अब यह बतलाना है कि परिवर्तन—आमूल परिवर्तन—किन अवस्थाओं, सीढ़ियोंसे गुजरता है। यह सीढ़ियाँ वैज्ञानिक भौतिकवाद की त्रिपुटी हैं—

(१) विरोधि-समागम, (२) गुणात्मक परिवर्तन और (३) प्रतिषेध का प्रतिषेध। वस्तुके उदरमें विरोधी प्रवृत्तियाँ जमा होती हैं, इससे परिवर्तनके लिये सबसे आवश्यक चीज़—गति—पैदा होती है। फिर हेगेल्के द्वन्द्ववादी प्रक्रियाके *वाद* और *प्रतिवाद* के संघर्ष से *संवाद* रूपमें नया गुण पैदा होता है, इसे दूसरी सीढ़ी गुणात्मक-परिवर्तन कहते हैं। पहले जो *वाद* था, उसको भी उसकी पूर्वगामी कड़ीसे मिलानेपर वह किसीका प्रतिषेध करनेवाला संवाद था, अब गुणात्मक-परिवर्तन—आमूल परिवर्तन—उससे उसका प्रतिषेध हुआ, सो यह *प्रतिषेधका प्रतिषेध* है।

(१) विरोधि समागम—

दो या अधिक एक दूसरेसे और स्वभावसे विरोधी वस्तुओंका समागम दुनियामें पाया जाता है, यह बात हरएक आदमीको जब तब

[1] Atheism p. 33

नजर आती है। किन्तु, उसे देखकर यह ख्याल नहीं आता कि एक बार इस विरोधि-समागमको मान लेने पर फिर विश्वके संचालक ईश्वरकी जरूरत नहीं रहती, न किसी अभौतिक रहस्यमय दिव्य नियम-की आवश्यकता। विश्वके रोम-रोममें गति है, देकार्त (अरस्तू, उदयन और गज़ाली भी) कहता कि गतिका स्रोत ईश्वर है। दो परस्पर विरोधी शक्तियाँ (वस्तुओं, घटना प्रवाहों)का मिलना ही गति पैदा करनेके लिये पर्याप्त है। गतिका नाम विकास है—या लेनिन्‌के शब्दोंमें कहिये—"विकास विरोधियोंके संघर्ष (का नाम) है।"[1] विरोधी जब मिलेंगे तो संघर्ष जरूर होगा, और, संघर्ष नये स्वरूप, नई गति, नई परिस्थिति अर्थात् विकासको जरूर पैदा करेगा, यह बात साफ है। अखाड़ेमें बिलियार्ड खेलनेवाले देखते हैं मेज़ पर दो विरोधी दिशाओंकी ओर गति रखनेवाले गेंद चल रहे हैं। यदि उनकी गति विरोधी न हो, तो उनका मिलन न होगा। यदि विरोधी गति होनेसे एक एक तरफसे आता है, दूसरा दूसरी तरफसे, तो दोनों विरोधियोंका समागम होता है—यह विरोधके समागम पैदा करनेमें हेतु होनेका दृष्टान्त है। किन्तु, मामला यहीं खतम नहीं हो जाता। दो विरोधी गेंदों (अंडों)का जब समागम होता है, तो उनके गुणोंमें भी परिवर्तन हो जाता है एक अंडा पूर्व को जा रहा था, दूसरा उत्तरको, दोनों मिलते—टकराते—हैं, अब उनके वेग (गति)की दिशा पूर्व या उत्तरकी ओर न रहकर नई दिशामें होती है, यह वेगका गुणात्मक परिवर्तन (दिशात्मक परिवर्तन) है। खैर, इसे आगेके लिये छोड़िये। यहाँ यह तो स्पष्ट है कि विरोध शक्ति या क्रिया-का नाम है, जो विरोधीके स्वभावमें है। उस क्रियाके होने पर समागम होना, और समागमसे नये गुण, नये स्वभावका पैदा होना अनिवार्य है।

(२) *व्याख्या*—अफलातूँ बहस करता था—हमारी कुर्सीका काठ कड़ा है, कड़ा न होता तो हमारे बोझको कैसे सहारता?

[1] Materialism p 324

और काठ नर्म है, यदि नर्म न होता, तो कुल्हाड़ा उसे काट कैसे सकता? इसलिये, काठ कड़ा और नर्म दोनों है—भूत (मौलिकतत्त्व) परस्पर विरोधी पदार्थ है। अफलातूँ ठीक स्थान पर पहुँच गया था, निशाना ठीक लगा था, किन्तु वह बहक गया। उसने सत्य पर पहुँचनेके लिये प्रकृति (प्रयोग) को छोड़, कल्पना पर अधिकतर आधारित तर्क शास्त्रको अपना पथ प्रदर्शक बनाया। और परिणाम? दो विरोधी गुणोंका एक जगह होना असम्भव है, इसे बुद्धि स्वीकार नहीं कर सकती, इसलिये यह कड़ापन, यह नर्मपन और स्वयं यह भूत ही अ-सत्य—सत्ता न रखनेवाला—है, जो सत्ता है, वह इससे परे है, जिसे हमारी पथ-प्रदर्शिका कृपामयी बुद्धि दिखलाती है। उसका ख्याल इधर नहीं गया, कि आप चले थे वस्तु (कुर्सी)की परीक्षा करने—कुर्सी क्या है? कुर्सी बेचारी जैसी है (कड़ी+नरम) वैसा रूप दिखलाती है। आपको कुर्सी की इमानदारी पर विश्वास रखना चाहिये था, क्योंकि उसने आपके मन-का लुभानेके लिये (बुद्धि-संगत बननेके लिये) बढ़ा-चढ़ाकर नहीं कहा, बल्कि एक तरह अपनी हीनता—दोष—को दिखलाया। लोग बाजारमें सिर्फ नफा कमानेके लिये बैठे हुए बनियेकी भी इस तरहकी बात पर ज्यादा विश्वास करते हैं, फिर यहाँ कुर्सी बेचारी आपसे नफा खानेके लिये भी बैठी नहीं है।

कुर्सी क्या है यह आप जानना चाहते थे। कुर्सी जो है, उसे उसने प्रकट किया। उसकी बातसे इन्कार कर जो आप तर्क (कोरी बुद्धि या कल्पना) के फेरमें पड़कर यह कहते हुए लौट रहे हैं "यह गलत कहती है—यह है ही नहीं!!' गलत कहती है—कहती है!! और है नहीं तो भी कहती है!!! वाहरे बाभके पुत्रके व्याह करानेवाले!! आपके ऐसा पारखी यदि अपने ६ फीट लंबे दो मन भारी शरीरको सूक्ष्मकर इंचके दस करोड़वें हिस्सेके बराबर लंबे-चौड़े तथा तोलाके ४लाख-लाख-खरबवें भागके बराबर भारी हाइड्रोजन परमाणुके भीतर घुस पाता, और वहाँ वह नाभिमें अवस्थित

१/१० करोड़-करोड़ इंचके १/१२५ हजार-लाख-लाख-लाख वाला भारी कण (प्रोटन)के गिर्द उससे काफी फासिलेसे १/१५ लाख लाख इंचके १/६२५ लाख-लाख-लाख लाख वाला भारी दूसरे कण (एलेक्टन) को बड़ी तेजीसे घूमते देखता। शायद किसी "भाव बस्ती"से बहुत दूर इस सुनसान नभागनमें इस नृत्यको देखकर प्रसन्नता होती—आखिर अफलातूँ भी प्रकृतिकी मनोहारिणी छटाका आनंद कभी कभी लेता जरूर रहा होगा। (माना सुकरात जैसे मनीषी निरपराध महापुरुषके मारे जाने, तथा अपने सामन्त-परिवारको अधिकारच्युत कर उनका स्थान लेनेवाले अथेन्सके बनिया शासकोंके उस अत्याचारके कारण उसका मन दुनियासे बहुत छोटा होगया था, तो भी यौवनमें गृहस्थ रहते समय सामन्त-परिवारकी सुंदरी अथेन्स-नागरी अपनी पत्नीके अधरोंको उसने कभी मधुर तो जरूर पाया होगा)। हाँ, यदि नृत्यसे "आँगन" को झूमकर जैसे ही अफलातूँ उन दोनों कणोंके पास पहुँचता, देखता कि बाहरवाला कण (एलेक्टन) बड़े जोरसे उसे धक्का दे रहा है। शायद अफलातूँ जैसा तत्त्वपरीक्षक इसे बुरा न मानता, समझ लेता—अभी अथेन्सके नागरिकोंकी भाँति यह शिष्टाचार निपुण नहीं हुआ है, या उपनिषत्की "अतिथि देवो भव"[1] (आगन्तुकको अपना न बना आगन्तुक ही रख घरबार उसे हाथमें सौंप दो) की शिक्षा न पा, ब्राह्मणोंके अदर्शनमें अभी वह म्लेच्छ ही रह गया है। किन्तु यदि किसी तरह वह भीतर वाले कण (प्रोटन)के पास पहुँच पाता, तो अंधे धृतराष्ट्रके लौह भीमके आलिंगनवाला खतरा अपने सिर पड़ता।—और मालूम होता यह तो ऐसा आलिंगन (आकर्षण) करना चाहता है, कि हड्डी-पसली भी साबित नहीं रहे। एकके धक्के और एकके "आलिंगन"के ताजे तजर्बेके बाद अफलातूँ जैसे सम्भ्रान्त सामन्त-परिवारके एक भद्र पुरुषकी क्या राय हो सकती थी, इससे हम यही समझ सकते हैं, कि वह उनको

[1] अतिथिको देवता मानो।

असभ्य, जगली, बर्बर कहता, और गुस्सा शान्त होनेपर यदि दार्शनिको की सहृदयतासे काम लेता तो क्लाइव या रोड्सको उन्हें सभ्य बनानेके लिये भेजता। किन्तु हमारे इस अफ्लातूँने अपनेको सहृदयता असहृदयता, पाप पुण्य, धर्म-अधर्म, कर्म अकर्म सबसे ऊपर उठाया, अपने को ठीक अफ्लातूनी "विश्वरूप" में दिखलाया—(हाइड्रोजन) परमाणु=एलेक्ट्रन्+प्रोटन, और एलेक्ट्रन्=—बिजली, प्रोटन्=+बिजली। —=० (ऋण+धन=शून्य)। हमने जो देखा, छोडो वाना उसे, उससे भर पाया, भगवान् ऐसी बात किसीकी न बनाये। किन्तु, हमारी गुरु पथ प्रदर्शिका, बुद्धि (तर्क, कल्पना) जो कुछ कहती है, हम तो उसके माननेवाले हैं। वह बतलाती है, इस तरहकी ऋण धन सयुक्त, परस्पर विरोधी वस्तुओंका समागम (परमाणु) तीन कालमें नहीं हो सकता, इसलिए परमाणु है ही नहीं, एलेक्ट्रन् है ही नहीं, प्रोटन् है ही नहीं। एलेक्ट्रन् अब भी अफ्लातूँको अपनी उजड्ड भाषामे कह रहा है—"आओ, दार्शनिकप्रवर। मेरे पास आओ, और खुद देखो कि मै हूँ या नहीं।" दूसरे प्रोटन् अपनी दो हजार गुनी तेज आवाजसे चिल्लाकर कह रहा है—"स्पार्टनवीर नहीं, अथेन्सके विलासी कायरोंकी सन्तान! जरा इधर तो आ, यदि मैं हूँ ही नहीं, तो आनेमें क्या उज्र है?"

हमारा सौभाग्य है कि आजके साइसवेत्ता अफ्लातूँके तर्कका अनुसरण नहीं करते—कमसे कम उस वक्त, जब कि वह रविवारके दिन चर्च या विश्वनाथके मंदिरमें न हो, साइंसकी प्रयोगशालाम रहते हैं। वह प्रकृतिके उदरमें उसके रोम-रोममें व्याप्त इस विरोधि-समागमको दूषण नहीं, भूषण समझते, और रोटीको कडी और नरम दोनों पा, उसे फेंककर भूखा मरना नहीं पसद करते। साइसवेत्ता हैल्डेनके शब्दों में[1]—"अफ्लातूँकी भाँति मेज नरम और कडी दोनों है (इसलिये नहीं

[1] Marxist Philosophy and the Sciences p 30

है)—कहनेकी जगह हम कितनी ही बारीक नापोंसे पता लगाते हैं कि गाठ कितना बड़ा है, इसकी दूकानका जोर कितना है, आदि।"

अफलातूँके योग्य शिष्य अरस्तूने मनोमयी दुनियासे नीचे उतरनेकी कोशिश जरूर की, किन्तु उसकी प्रथम महान् प्रसूति तर्कशास्त्रने अफलातूँकी कृपामयी तर्क बुद्धिको सामन्त रानीकी जगह चक्रवर्तीरानी (राजराजेश्वरी, मलका-मुअज्जमा) बनानेकी पूरी कोशिश की। वस्तुके व्यवहार (प्रयोग) ने तर्क विद्याको पैदा किया था। मगर, यह शोख लड़की बाजारमें अपनी कीमत बढ़ी देख माँ-बापको पहिचाननेसे इन्कार करती है। अरस्तूने कहा कि वस्तु और तदनुकूल गुण तो ठीक है, किन्तु इससे उलटी बात करनी गलत है। हेगेल्ने कहा—वस्तु अपने भीतर अनुकूल ही नहीं, प्रतिकूल—विरोधी—गुण भी रखती है, यही विरोध वस्तुमें पर-अनपेक्षित स्व-चालित गतिको लाता है, जिससे वह वस्तु अपनी गति—अपने आत्मविकास—के दौरानमें, एक दूसरी ही वस्तुके रूपमें अपनेको परिणत कर सकती है। लेकिन, तर्कशास्त्रके प्रणेता दो दिग्गजोंकी लड़ाईमें बेचारे सर राधाकृष्णन्की बुरी हालत हुई है। विश्वनाथके बलपनको खाकर मालवीयजीकी गद्दीसे (सिंहासनबत्तीसीकी पुतलियोंकी भाँति) बाबा ज्यादा श्रद्धा और शर्मसे आये तरुणोंके कानोंमें इन्जेक्शन दे, लम्बी धोती-पगड़ी सँभालते अभी दर्वाजेसे वह बाहर निकलते ही हैं, कि यूनान और जर्मनीके दो मल्लोंको इस तरह हिन्दू विश्वविद्यालयके मैदानमें जूझते देखते हैं। राधाकृष्णन्के ख्यालमें पहले तो आया—जाने दो, दोनों सफेद मूजियोंको लड़ने दो। किन्तु, जरा ही देरमें मालूम हुआ, इस लड़ाईमें बाबा विश्वनाथ (जिनके बल पनको वह उससे भी ज्यादा श्रद्धा भक्तिसे अभी खा चुके थे, जिससे शायद बाबाका भादिया भी न खाता होगा) भी खतरेमें हैं। हेगेल्की जीतका मतलब एक ही कदम आगे उसके शिष्य फ्वेरबाख्की जीत, मार्क्सकी जीत, भौतिकवादकी जीत, अनीश्वरवादकी जीत, पुराने समाज

और धर्मके प्रसकोंकी जीत। माथा ठनका, राधाकृष्णन्‌की पतली-दुबली शान्त मूर्ति उदासा बन गई। पगड़ी फेंकी, धोतीका कच्छा बाँधनेमें असमर्थ देख विद्यार्थियोंने मदद की। हिरनकी भाँति चौकड़ी मारते वह भी अखाड़ेके पास पहुँच गये। "बड़े-बड़े डूबे जायँ कौन कहे कितना पानी" की कहावत याद आई, कुछ ठमके, और ठमकनेमें एक और भी कारण हुआ, सोचने लगे 'अफलातूँ और शंकराचार्य दोनों भारी मित्र थे—वेदान्तमें देश काल तीनों कालमें असत्य हैं—लेकिन, अरस्तू तो अपने गुरुका वैसा ही पक्का चेला नहीं है, जैसा कि मैं अपने गुरु शंकराचार्यका। फिर क्यों मैं इस कम्बख्त अरस्तूके गाढ़े वक्त काम आऊँ!' उसी वक्त अध पुन दुर्योधन (सुयोधन नहीं) की बात याद आई—हम अपने घरमें सौ और पाँच हैं, किन्तु बाहरवालोंके लिये १०५। बेचारे सर साहेब बेतहाशा बोल गये[1]—"भूत (जड़तत्त्व) जीवन या चेतनाका विकास नहीं कर सकता, जबतक कि उसके अपने स्वभावमें उन (के उत्पादन) की क्षमताएँ न हों। बाहरी वातावरणसे चाहे कितना ही धक्का क्यों न दिया जाय, केवल भूतसे जीवनको जबर्दस्ती निकाला नहीं जा सकता।" प्राच्य महाविद्यालयके विद्यार्थियोंने पहले इस रंगरेजीके पढ़ुआ विदेशियोंके लिये दर्शनके एरंड-कल्पवृक्षके प्रति पहलेसे चली आई ईर्ष्याके कारण तटस्थ रहना चाहा, किन्तु श्रद्धेय महामहोपाध्याय बालकृष्ण मिश्रका इंगित देख उन्होंने आनन्दबागके दयानन्द शास्त्रार्थका नजारा पेश कर दिया। बेचारा हेगेल् कहता ही रह गया—विश्वके गर्भमें सर्वत्र विरोध-समागम है, यह उसकी जबर्दस्त क्षमता है, जिससे वह कुछसे कुछ हो जाता है। सर्वपल्ली रट रहे थे—यह गलत है "मनुष्यके धार्मिक तथा आचारिक, दार्शनिक तथा ललित कलात्मक उच्चतम तजर्बोंके प्रति जो हमसे माँग पेश करती है, कि हम काल (प्राप्त) भावी वास्तविकता

---

[1] Indian Philosophy by Sir S Radhakrishnan, Vol I. 181

[भौतिक जगत्] के मूलको सनातन [ब्रह्म] में, शान्तिके आधारको अन्तमें, मनुष्यको ईश्वरसे उत्पन्न हुए तौरपर स्वीकार करें।"[1]

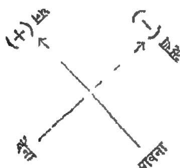
विद्यार्थियोंकी तालीम देवताकी आत्माका दूर तक पहुँचना मुश्किल था। अन्तमें वह हिन्दू विश्वविद्यालयका यह कहकर कामता चला गया—"तो फादेरो यह साइंस कालेज, इञ्जीनियरिंग कालेज, प्रयोगशाला, रसायनशालाकी ईंट-चूनेकी इमारतों पर रुपया बर्बाद किया, यहाँ तो दूसरे विश्वनाथ-मंदिर और दूसरे नादियोंकी जरूरत है।" विद्यार्थियोंने उमन दार्शनिकके भावपूर्ण परिहासको बिना समझे एक स्वरसे कह डाला—"मालवीयजीकी कृपा है, दूसरी बार आयोगे तो उस भी देख जाओगे, विदेशी म्लेच्छ नहीं थे।"

हाँ, यदि हिन्दू विश्वविद्यालयकी कथाको बीचमें लानेसे गंभीर पाठकोंको विरक्ति हुई हो, तो क्षमा करें। इस कथासे भी हम यही कहना चाहते थे, कि प्रकृति (भूत) पारस्परिक विरोधोंकी खान है, वही उसका जीवन, यही उसका स्वभाव है। राधाकृष्णन् जिस क्षमताको चाहते हैं वह प्रकृतिके अपने पेटमें है। "मुझको कहाँ खोजे बंदे म तो तेरे पास म" के, अनुसार जब इतनी बड़ी जबर्दस्त शक्ति—क्षमता—प्रकृतिके पासमें नहीं, पेटमें मौजूद है, तो उसे किसीके सामने हाथ पसारनेकी क्या जरूरत! और भीतरमें मौजूद वह क्षमता न हो, तो "बाहरी वातावरण [ईश्वरको भी, कृपया, ले लीजिये] से चाहे कितना ही धक्का क्यों न दिया जाय [विरोधि समागम रूपी आन्तरिक क्षमतासे हीन द्वन्द्वात्मकता शक्ति] केवल भूतसे जीवनको जबर्दस्ती करके निकाला नहीं जा सकता।"

(२) स्वरूप—विरोधि(यानी)-समागमको विरोधियोंका परस्पर अन्तर्व्यापन या एकता भी कहते हैं, जिसका अर्थ यह है कि ये विरोधी सचमुच ही हिन्दू विश्वविद्यालयके अरस्तू हेगेल या भीम जरासंधकी तरह दो अलग व्यक्तियोंकी तरह मल्लयुद्ध नहीं कर रहे थे, बल्कि वे एक ही

[1] वही p 191

(अभिन्न) वास्तविकताके ऐसे दोनों प्रकारके पहलू होते हैं। ये दोनों विरोध, दार्शनिकोंके परमार्थकी तराजू पर तुले सनातन कालसे एक दूसरेसे सर्वथा अलग अवस्थित भिन्न भिन्न तत्त्वके तौरपर नहीं रहते, बल्कि वह वस्तुतः एक हैं—एक ही समय, एक ही स्थान पर, अभिन्न होकर रहते हैं—कृपया इसे याज्ञवल्क्य या कबीर साहब (अथवा राधाकृष्णन्‌की भी) भाषा न समझकर सीधी-सादी प्रकृतिकी भाषा समझिये। पुराने यूनानी भी इस नियमको जानते थे—



"जो कर्जखोरके लिये ऋण (देना) है, वही महाजनके लिये धन (पावना) है। (हमारे लिये) पूर्वका रास्ता (दूसरेके लिये) पश्चिमका भी रास्ता है। बिजली में धन और ऋणके छोर दो अलग स्वतन्त्र (पदार्थ) नहीं हैं।"[1]

[1] Logic by (Hegel)

लेनिनने विरोधको द्वन्द्ववादका सार (=सार) कहा है—और यह भी कि "(किसी) एक (वस्तु) का विभाजन और उसके विरोधी ज्ञान द्वन्द्ववादका सार है।"[1] पर एकता कभी कभी सिर्फ एक क्षणिक मेहमान है, जैसे कि चलती मोटरके पहियेका छोर धरतीसे क्षण भर लिये छूता है, और उसका उतना महत्त्व नहीं है, जितना कि उसके द शक्ति पाकर चलते रहते चक्केके रूपमें जो गति और परिवर्तन है उसका तो इस प्रकार एक ही वस्तु (घटना प्रवाह)में हम विरोधियोंका समाग भी पाते हैं, जिसका फल होता है विरोधियोंका संघर्ष, और उसक परिणाम होता है समागम (एकता) का टूटना तथा 'नवीन' (तत् का प्रकट होना। मृत्यु (टूटने) से इस नवीनके प्रकट होने (जीवन को खरीदा जाता है।

(२) *संघर्ष, समागम साम्यावस्था*—सभी वस्तुयें जड़ मूल बदलती, नई उत्पन्न होती हैं, सभी वस्तुयें प्रवाहमय नचारी टेमकी वा हैं—विश्वकी इस वास्तविकताके बारेमें बतला चुके हैं। समाज भी विश्वका एक अंग है, इसलिये वह उसके कानूनसे बाहर कैसे जा सक है। समाजमें भी आमूल परिवर्तन होता है, क्योंकि समाजके भीतर त उसके वातावरणमें विरोध-समागम मौजूद है। विरोधका अर्थ है इलन साम्यावस्थाका ध्वंस। प्रकृतिमें चिर-साम्यावस्था चाहना उसमें आल हत्याकी माँग करनी है। वह साम्यावस्थाको लाती है, किन्तु मोट चक्केके भूमिसे छूनेकी तरह क्षण भरके लिये, साम्यावस्था स्वयं प्रवाह चंचल है। यह स्थापित होती है, नष्ट होती है, फिर स्थापित होती है, फि नष्ट होती है। किन्तु उन्हीं धागोंकी उधेड़-बुन नहीं है, सब चीज न हर क्षण नये चक्के, नया 'आकाश' (वेग-क्षेत्र), नई भूमि। इ साम्यावस्थाको घटा-बढ़ाकर हम स्थिति नाम देते हैं। अचल चित्रसे च चित्र (सिनेमा) को हम ज्यादा पसंद करते हैं, किन्तु प्रकृतिको अप

[1] On Dialectics

सिनेमा चलाते देख हम तमाशा देखते बच्चोंकी तरह कहते हैं, "मा, मैं रेणुकाको 'घर आये' गाती देखना चाहता हूँ।" कितना ही माई-दाइ करनेपर भी जब प्रकृति आपके लिये अपने सिनेमाकी गतिको रोकनेको तैयार नहीं होती, तो आप अपने मनसे एक नये स्थिर ध्रुव-संसारको रचने लगते हैं।—वहाँ वसन्त और वर्षाके ऋतु, वैचित्र्य तथा उसकी सुषमा न होती होगी, फिर वहाँ अश्वघोष और कालिदासकी भी जरूरत नहीं। आखिर—'धोबी बसिके का करे दीगम्बरके गाँऊँ"। यदि अगरा कफ़िरवाले जग निर्माताओंकी भाँतिका आपका जगत् न होता और आप किसी इष्ट मित्र या अपनी आजन्म सहधर्मिणी मुन्नूकी माँको भी उस अपने 'हाथकी' बनाई दुनियामें ले जाना चाहते, और बेचारी सती साध्वी हिन्दू पत्नीको उस देशकी भनक भी मालूम हो जाती, तो या तो सनातन धर्मके अनुसार वह कुएँमें कूदकर जान दे डालती या किसी अप-टू-डेट सतीका अनुकरण करते हुए अदालतमें तिलाककी भिक्षा माँगनेके लिये तैयार पाई जाती।

विरोधियोंका समागम, विरोधियोंका संघर्ष प्रकृतिको चिर नवयौवन प्रदान करता है, चिर-नवयौवनका रास्ता यदि जरा मरणके श्मशानसे जाता है, तो जिस तरह प्रकृतिको इसमें एतराज नहीं, उसी तरह सच्चे प्रकृति पुत्रों और पुत्रियोंको भी एतराज नहीं होना चाहिये और न महादेवी वर्माकी तरह 'सांध्यगीत' के स्वरमें बड़ेके बड़े आँसू बहानेके लिये बैठ जाना चाहिये।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवादकी त्रिपुटी—विरोधिसमागम, गुणात्मक परिवर्तन, प्रतिषेध प्रतिषेध—हेगेल्की देन है। यह सुनकर तअज्जुब करने की जरूरत नहीं है कि ऐसा इज्जतदार दार्शनिक ऐसी नामाकूल हरकत क्यों कर बैठा। वह या उसकी तरहके दूसरे इज्जतदार हैं या बेइज्जत, इसका निर्णय सदियोंमें होगा, फिक्र मत करें, यदि वास्तविकको वास्तविक, परिवर्तनशीलको परिवर्तनशील रहना और अपने मनसे गढ़कर 'नई

लेनिनने विरोधको द्वन्द्ववादका सार (=सार) कहा है—और यह भी कि "(किसी) एक (वस्तु) का विभाजन और उसके विरोधका ज्ञान द्वन्द्ववादका सार है।"[1] पर एकता अभी अभी सिर्फ एक क्षणिक मेहमान है, जैसे कि चलती मोटरके पहियेका छोर धरतीसे क्षण भरके लिये छूता है, और उसका उतना महत्त्व नहीं है, जितना कि उसके द्वारा शक्ति पाकर चलते रहते चक्केके रूपमें जो गति और परिवर्तन है उसका। तो इस प्रकार एक ही वस्तु (घटना प्रवाह)में हम विरोधियोंका समागम भी पाते हैं, जिसका फल होता है विरोधियोंका संघर्ष, और उसका परिणाम होता है समागम (एकता) का टूटना तथा 'नवीन' (वस्तु) का प्रकट होना। मृत्यु (टूटने) से इस नवीनके प्रकट होने (जीवन) को खरीदा जाता है।

(३) *संघर्ष, समागम साम्यावस्था*—सभी वस्तुयें जड़-मूलसे बदलती, नई उत्पन्न होती हैं, सभी वस्तुयें प्रवाहमय बत्तीकी टेमकी तरह हैं—विश्वकी इस वास्तविकताके बारेमें बतला चुके हैं। समाज एवं विश्वका एक अंग है, इसलिये वह उसके कानूनसे बाहर कैसे जा सकता है। समाजमें भी आमूल परिवर्तन होता है क्योंकि समाजके भीतर तथा उसके वातावरणमें विरोध-समागम मौजूद है। विरोधका अर्थ है हलचल, साम्यावस्थाका ध्वंस। प्रकृतिमें चिर-साम्यावस्था चाहना उससे आत्महत्याकी माँग करनी है। वह साम्यावस्थाको लाती है, किन्तु मोटरके चक्केके भूमिसे छूनेकी तरह क्षण भरके लिये, साम्यावस्था स्वयं प्रवाहमय चंचल है। वह स्थापित होती है, नष्ट होती है, फिर स्थापित होती है, फिर नष्ट होती है। किन्तु उन्हीं धागोंकी उधेड़-बुन रहा है, सब चीज नई हर क्षण नये चक्के, नया 'आकाश' (देश-क्षेत्र), नई भूमि। इसी साम्यावस्थाको चला-चलाकर हम स्थिति नाम देते हैं। अचल चित्रसे चल चित्र (सिनेमा) को हम ज्यादा पसंद करते हैं किन्तु प्रकृतिको अपना

[1] On Dialectics

सिनेमा चलाते देख हम तमाशा देखते बच्चाकी तरह कहते हैं, "मा, मैं रेणुकाको 'घर आये' वाली देखना चाहता हूँ।" कितना ही माई-दाई करनेपर भी जब प्रकृति आपके लिये अपने सिनेमाकी गतिको रोकनेको तैयार नहीं होती, तो आप अपने मनमें एक नये स्थिर ध्रुव-संसारको रचने लगते हैं।—वहां वसन्त और वर्षाके ऋतु, वैचित्र्य तथा उसकी सुषमा न होती होगी, फिर वहाँ अश्वघोष और कालिदासकी भी जरूरत नहीं। आखिर—"धोरा वसिके का करे दीगरके गाँऊँ"। यदि आगरा कोंकेवाले जग निर्माताओंकी भाँति आपका जगत् न होता और आप किसी इष्ट मित्र या अपनी आजन्म सहधर्मिणी मुन्नूकी माँको भी उस अपने 'हायकी' बनाई दुनियामें ले जाना चाहते, और बेचारी सती साध्वी हिन्दू पत्नीको उस देशकी भनक भी मालूम हो जाती, तो या तो सनातन धर्मके अनुसार वह कुएँमें कूदकर जान दे डालती या किसी अप-टू डेट बहनीका अनुकरण करते हुए अदालतमें तिलाककी भिक्षा माँगनेके लिये तैयार पाई जाती।

विरोधियोंका समागम, विरोधियोंका संघर्ष प्रकृतिको चिर नवयौवन प्रदान करता है, चिर-नवयौवनका रास्ता यदि जरा मरणके श्मशानसे जाता है, तो जिस तरह प्रकृतिको इसमें एतराज नहीं, उसी तरह सच्चे प्रकृति पुत्रों और पुत्रियोंको भी एतराज नहीं होना चाहिये और न महादेवी वर्माकी तरह 'साध्यगीत' के स्वरमें घड़ेके घड़े आँसू बहानेके लिये बैठ जाना चाहिये।

द्वन्द्वात्मक भौतिकवादकी त्रिपुटी—विरोधिसमागम, गुणात्मक परिवर्तन, प्रतिषेध प्रतिषेध—हेगेलकी देन है। यह सुनकर तअज्जुब करने की जरूरत नहीं है कि ऐसा इज्जतदार दार्शनिक ऐसी नामाकूल हरकत क्यों कर बैठा। वह या उसकी तरहके दूसरे इज्जतदार हैं या बेइज्जत, इसका निर्णय सदियोंमें होगा, फिक्र मत करें, यदि वास्तविकको वास्तविक, परिवर्तनशीलको परिवर्तनशील कहना और अपने मनसे गढ़कर 'नई

मौलिकता' का न उपस्थित करना इज्जतसे हाथ धोनेके लिये काफी है, तो ऐसी इज्जत अपने पास रखें। हेगेल् बेचारा था भी हमारा आदमी (पंजाबी भाषामें 'साडा बंदा')। उसे प्रच्छन्न भौतिकवादी नहीं कह सकते, क्योंकि गौडपादके प्रशिष्य प्रच्छन्न बौद्ध शंकराचार्यकी भाँति उसने अपनेको छिपानेकी कोशिश न की। द्वन्द्ववाद प्रकृतिका अभिन्न स्वरूप है, इसे उसने पहिचाना और स्वीकार किया, किन्तु जब विचारके आनन्दमें विभोर हो वह इस अपने महान् आविष्कारको कागजपर लिख कर बाटना चाहता था, तो वह प्रकृतिकी जगह 'विज्ञान' (अभौतिक-तत्त्व) पर लट गया—या कहिये देवताओंका अमृत गलतीसे राहु केतुके मुख में पड़ गया। लेकिन ठीक जगह लगा दीजिये, सब काम बना बनाया है। मार्क्सने यही किया, और हेगेल्के दर्शनको शीर्षासनकी सासतसे बँचाया—हाँ मैं सासत ही कहता हूँ, चाहे जवाहरलालजी जैसे सम्भ्रान्त व्यक्ति भी उसे क्यों न अपना रहे हों। अच्छा, अब अपने असली विषय द्वन्द्ववादके दूसरे सूत्र गुणात्मक परिवर्तन पर चलें।

(२) गुणात्मक परिवर्तन—

"केवल परिमाणात्मक [नाप-तोल सबंधी] परिवर्तनही एक खास सीमा पार होनेपर गुणात्मक (नये गुणोंवाले) भेदोंमें बदल जाता है।"[1]

(?) व्याख्या—कार्बन डायोक्साइड (द्वि-आक्सित कार्बन) एक जहरीली गैस है, यदि शुद्ध द्वि-आक्सित कार्बनमें कोई साँस ले तो वह मर जायगा, किन्तु मनुष्यके जीवन धारणके लिये भी उसकी अवश्यकता है। मनुष्यके रुधिरमें ५% (पाँच सैकड़ा) द्वि-आक्सित कार्बनकी जरूरत है, जिसके बिना आदमीका स्वास्थ्य और जीवन नहीं रह सकता। यहाँ मात्रा के भेदसे गुण (प्राण-रक्षण, प्राण ध्वंसन) में भेद हो जाता है।

[1] Capital (by Marx) Vol I

क्लोरिन् एक जहरीली गैस है, जिसे रसायनिक युद्धमें इस्तेमाल किया जाता है। सोडियम् (सोडा) एक तरहका क्षार है, जिसे पानीपर रखनेमें आग लग जाती है। इन दोनोंके परमाणुओंको खास परिमाणमें मिलानेसे खानेका नमक पैदा होता है—जिसमें न क्लोरिन् जैसी प्राण-संहारक गैसका गुण है, न सोडियम्का आग लगानेका गुण, बल्कि एक बिल्कुल नये गुणका प्रादुर्भाव होता है—वह अब खाद्य नमक है।

ये परिमाणके परिवर्तनसे गुणके परिवर्तन—परिमाणात्मक परिवर्तनसे गुणात्मक परिवर्तन—के उदाहरण हैं। आइये इनके बारेमें कुछ हेगेल्के मुँहसे सुनें[1]—

"आदमी परिवर्तनको मंद गतिसे (थोड़ा-थोड़ा करते हुए) परिवर्तन लानेकी कोशिश करना चाहते हैं, किन्तु यह मंदगति (का परिवर्तन) सिर्फ अस्पष्ट परिवर्तन है, जो कि गुणात्मक परिवर्तनसे उलटा है। मन्दगतिमें दोनों वास्तविकताओं—चाहे उन्हें अवस्थाके तौरपर लीजिये या स्वतंत्र वस्तुके तौरपर—के संबंध रुके रहते हैं। परिवर्तनको (स्पष्टताके साथ) समझनेके लिये जिस (बात) की जरूरत थी वह हटाई हुई रहती है।"

"संगीत-संबंधी संबंधोंमें जब आगे आगेके स्वर आदि-स्वरसे क्रमशः आगे और आगे चले जा रहे हैं (उस वक्त) एकाएक एक मुड़ान (मुड़ना-लौटना), एक ऐसा आश्चर्यजनक स्वर समन्वय[2] प्रकट हो उठता है, जिसपर कि अभी नई बीती गतिसे *परिमाणानुसार* बढ़ते हुए नहीं पहुँचाया गया, बल्कि वह एक दूरस्थ क्रियाके तौरपर एक दूरस्थ वस्तुके संबंधीके तौरपर प्रकट हुआ।

"[रसायनशालामें] धातुवाली आक्साइड (उदाहरणार्थ सीसा आक्साइड) आक्साइड [आक्सिजन मिश्रित] होनेके एक खास

[1] Science of Logic Vol I pp 388—90 [2] Concord

परिमाणवाले स्थानोंपर (पहुँचकर) बनते हैं, और अपने रंग तथा दूसरे गुणोंमें फर्क करते हैं। वह क्रमश: एक (रूप) से दूसरेमें लीन नहीं होते।

"सभी (तरहके) जन्म और मरण, क्रमश: गतिसे नहीं होते, बल्कि इस (गति) की रोक हैं, और परिमाणात्मक परिवर्तनसे गुणात्मक परिवर्तन पर (मड़क) कुदान करते हैं। उत्पत्ति और लय पर विचार करते वक्त साधारण कल्पना समझती है कि जब उन्हें उसने क्रमश: प्रकट होते या विलीन होते कल्पितकर लिया, तो उन्हें समझ लिया। किन्तु सत्ता (सद् वस्तु)में ना ग्राम तौरसे परिवर्तन होते हैं, वह सिर्फ एक परिमाणसे दूसरे परिमाणके रूपमें ही नहीं होते, बल्कि गुणात्मक [एक गुणवाले रूप] से परिमाणात्मक [दूसरे परिमाणवाले रूपमें] तथा परिमाणात्मकसे गुणात्मक परिवर्तन होते हैं यही दूसरा बन जाना है, क्रमसे नाता तोड़ लेना है।

"पानी [बर्फ होनेके लिये] ठंडा होते वक्त लेड़के (कड़े होनेके) तरीकेसे थोड़ा थोड़ा करके कड़ा नहीं होना, बल्कि यकायक कड़ा [बर्फ] हो जाता है। जब वह हिम [जमनेके] बिन्दु पर अच्छी तरह नहीं पहुँचा हो हो सकता है (अभी) वह पूर्णतया तरल है (यदि वह निश्चल है), और हल्के तौरसे हिलानेसे कठोर अवस्थामें आ जाता है।"

(२) *जीवन और भूत*—भौतिकवादियों पर यह आक्षेप किया जाता है, कि वह तो जीवन और मन जैसी उत्तम वस्तुको जड़-तत्त्वकी कोटिमें ला देते हैं, इसीलिये हमने सर राधाकृष्णन्को 'हिन्दू धर्म द्वारा'के नामसे तो नहीं किन्तु उससे कुछ ऊँचे तल पर ' मनुष्यके धार्मिक तथा आचारिक, दार्शनिक तथा ललित कलात्मक उच्चतम तजर्बेकी भक्ति" को गायगुहार लगाते और एक कलमवीरके तौर पर भीष्म प्रतिज्ञा करते देखा भौतिकवाद मेरी लाश परसे गुजरकर ही पुण्य भूमि भारतमें घुस सकता है। लेकिन हम उन देवोंको विश्वास दिलाना चाहते हैं, कि

भौतिकवादी जीवन और मनको जड़ भौतिकतत्व हर्गिज नहीं
कौन ऐसा गँवार होगा, जो कन्दको चीनी, चीनीसे गुड़,
उसको मिट्टी अतएव कन्द (कलाकन्द)का मिट्टी
करेगा। वैज्ञानिक भौतिकवादी प्रकृतिमें सर्वत्र गुणात्मक
और मानते हैं, और गुणात्मक परिवर्तनका मतलब है
वही नहीं।" मिट्टीमें वह गुण हर्गिज नहीं था, जो कि
मिट्टी बिलकुल नहीं। कन्द और मिट्टी उन्हीं परमाणुओंसे
नष्ट होने पर वह उन्हीं "सहिरी मूल ईंटा" के रूपमें
वैज्ञानिक भौतिकवादी नहीं मानते। वैज्ञानिक भौतिक
परमाणु नहीं कण-तरंग, विच्छेद-युक्त घटना प्रवाह है,
भी क्षण-क्षण नाश उत्पादका नियम मिला हुआ है।
मिट्टीमें उन्हीं परमाणुओंके समझनेकी गलती नहीं
मिट्टीसे हुआ है यह मान सकते हैं, किन्तु कन्द मिट्टी है,
हमपर नहीं लगाई जा सकती। यह सच है
हुआ है, वह भूत (भौतिकतत्व) ही है, किन्तु
किसी तरहसे भी नहीं, चाहे उसके
यह बिल्कुल गुणात्मक परिवर्त्तन, पूर्व (भूत)
है। कृष्ण भगवान्‌का बेटा जाने, उनके
महत्त्वपूर्ण व्याख्या—जिसके समझनेमें
बुद्धि भी पूर्णतया कुंठित है, और अपने
उन्होंने कभी श्रोताओंको नहीं बतलाया
यद्यपि उस महापुरुषके "सपत्नीक"
जरूर इस बातका तकाजा करता
घरमें परम सात्विक अड़-साधका
अभागा होगा, जिसने भोग लगाने
शालिग्रामको हाथसे फोड़कर

अगर अंडेको भीतरसे न देखा हो, तो एक बार जरूर तोड़कर देखिये। वहाँ कहीं छोटे छोटे पंखवाले उस चूजेका पता नहीं मिलेगा, जिसे आप कुछ दिन बाद उससे निकला देखेंगे। यदि जैसा कि मुर्गी माईने उसे सेया है, उसी तरह आपने थोड़ा सा बाहरी खोलके भीतर पहले एक सफेद तरल चीज पायेंगे, वह उन्हीं रासायनिक तत्त्वोंका है, जो कि हमारी हड्डी, मांसमज्जा और चीनीमें मिलते हैं। उसके भीतर केसरिया रंगका तरल (रस) भरा हुआ है। वहाँ, नाक, अंगुली आदि या हड्डा-हड्डीका कहीं ख्याल, सिवाय पीले, सफेद तरल रसके और कुछ नहीं पाइयेगा—यदि उबले हुए अंडेको पायें, दोनों प्रकारके इन तरल तत्त्वोंको ठोस आकारके टुकड़ेकी शकलमें देखेंगे। इस प्राकृत अंडेकी अवस्था और चूजेमें जमीन आसमानसे भी भारी अन्तर है, इसलिये जीव और भूतको एक कहना सरासर गलती है, साथ ही यह उससे भी भारी गलती है, कि गुणात्मक परिवर्तनकी अद्भुत क्षमता रखनेवाली प्रकृतिको उसके इस जन्मसिद्ध अधिकारसे वंचितकर जीवन या मनको कहीं बाहरसे आई चीज माना जाये।

चूजा तो मिट्टीसे गुड़ तकका गुणात्मक परिवर्तन जैसा है। जब हम उसे मिट्टी (भूत) माननेके लिये तैयार नहीं, तो फिर जैसे सर्वोच्च विकासके धनी मनुष्यको भूत (भौतिक तत्त्व) मानना वैज्ञानिक भौतिकवादसे उतना ही संबंध रखता है, जितना गदहेके सिरसे सींग। मनुष्य भूतका सर्वोच्च गुणात्मक परिवर्तन है। उसकी मानसिक, आचारिक शक्ति अद्भुत है। मनुष्य सोचता है, स्नेह प्रेमके लिए आत्मोत्सर्ग करता है, कला और सौंदर्यका आनंद लेता है, उदार भावनाओंसे पूर्ण उत्तम काम करनेकी उसमें क्षमता है। वह प्रकृतिकी आकस्मिक घटना या उपज नहीं है, और न वह केवल पशु है। लेकिन, ये सारे उच्च गुण भारी श्लाघनीय विशेषताएँ किसी ऐसे आत्मिक—विज्ञानमय (ब्रह्ममय) जगत्से नहीं आई हैं, जो कि हमारे जगत्से भिन्न, परे और पहलेसे

मौजूद था। ये सभी भव्य गुण या विशेषतायें अपना भौतिक इतिहास रखती हैं, और अपने विकासके मार्गको निश्चपर अंकित किये हुये हैं। उनका यह विकास पथ बतलाता है कि उनसे करोड़ों वर्षों पहले अरबसे अधिक वर्षोंमें लगातार जीवन-रहित, मन-रहित भूत (भौतिकतत्व) मौजूद था। फिर "अल्पारम्भ क्षेमकर" को मानो चनाकर बहुत छोटेसे रूपमें जीवनका आरम्भ हुआ इत्यादि। हमारे सामने सभी बातें साफ हो जाती हैं, जब हम इसे देख और समझ लेते हैं कि भूत (भौतिकतत्त्व) कभी निश्चल नहीं रहता, गति उसका गुण (स्व रूप=स्व-लक्षण) है। भूतकी उसकी परिभाषा है—भूत वह है जो गतिमें रहता है।

(३) दृष्टान्त—हेगेल के ऊपर उद्धृत वाक्योंमें गुणात्मक परिवर्तन को संक्षेपमें—अतएव कुछ क्लिष्ट भाषामें—बतलाया गया है। हमने कुछ सरल करनेकी कोशिशकी है, यदि उसे और साफ करनेकी जरूरत है, तो फिर सुनिये। भूतमें विकास होता है, मिट्टीसे ऊख, गुड़ (या बिना गुड़के सीधे) चीनी, कद तकका विकास हम खुद अपने हाथों करते हैं। प्रकृति इस विकासको क्रमशः और एकाएक दोनों तरहसे करती है। क्रमशः विकासके रूपमें विकाते विकाते एक दम हथियार छोड़ती है, अथवा लम्बी या ऊँची कुदानवाले खिलाड़ीकी भाँति पहले दौड़ते हुए फिर एकदम मेंढक कुदान करती है—नया गुण, नई वस्तु, नई घटना-अस्तित्वमें आती है।

१ पानीके जमनेका दृष्टान्त हेगेलने दिया है। बर्फ बनते वक्त पानी धीरे-धीरे गाढ़ा नहीं होता, बल्कि टेम्प्रेचर गिरते गिरते जैसेही हिम बिन्दु (३२° फार्न हाइट,०° सेंटीग्रेड) पर पहुँचता है, वह एकाएक बर्फ हो जाता है उसका तरलपन लुप्त हो जाता है, उसकी प्रवाहिता लुप्त हो जाती है, वह शीशेके बराबर कड़ा और भारी लोरी और ट्रामको अपने ऊपरसे गुजारने लायक हो जाता है। आप स्वच्छ पतीलीमें कण धूलिसे रहित शुद्ध जलको आग पर रखते हैं, वह गमाता, फिर सनसनाता है। आप

"थर्मामीटर" से गर्मीकी वृद्धिकी गतिको देखते जाते हैं, ८०°, ९०° तक वह आपको ठण्डा लगता है, ९६°, ९७° में आपके शरीर इतना गर्म होनेसे न ठण्डा न गर्म, जितना ही तापमान ऊपर उठता जाता है, पानीकी गर्मी बढ़ती जाती है—जितना गर्मी बढ़ती जाती है, तापमापक यन्त्रका पारा उतना ही ऊपर चढ़ता जाता है। १५०° में आप हाथ रखना नहीं चाहते, २००° में और असह्य गर्मी। आपको आश्चर्य होगा पानी खौलता क्यों नहीं? आप इत्मीनान रखिये जिस तरह स्वच्छ करके आपने पानीको रखा है, उसमें उसको खौलनेकी नौबत नहीं आयेगी। खौलनेके लिये रज और धूलि चाहिये, जिससे हवाके प्रवेश और बुल्बुला बनने की गुंजाइश हो। आपके जलमें कोई विजातीय तत्व नहीं है, इसलिये उसे भी उससे डर नहीं। यह देखिये टेम्प्रेचर २१०° डिग्री फारनहाइट पर पहुँच गया। सजग हो जाइये। क्या कहा—अभी भी तो वैसा ही है। यह लो यह क्या हुआ! सारा पानी बिना खौले बराबर भाप हो गया, देखिये २१२° फारनहाइट (१००° सेंटीग्रेड) है।

इस तरह तापके परिमाणक परिवर्तन—परिमाणात्मक परिवर्तन—ने एक खास सीमापर पहुँचते ही गुणात्मक परिवर्तन कर दिया, तरलको टेम्प्रेचर ठोस या भाप (गैस) बना दिया।

२ तराजूका दृष्टान्त देखने, समझनेमें इससे भी सहल है। सेरका बटखरा रख एक बहुत अच्छे तराजूमें आप खसखस (पोस्तेके दाने) को तौलिये। पाव, दो पाव, तीन पाव, पंद्रह छटाँक, १५ छटाँक ४ तोला, १५ छटाँक ४ तोला ११ माशा, १५ छटाँक ४ तोला ११ माशा ७ रत्ती, १५ छ० ४ तो० ११ मा० ७ रत्ती, ७ चावल, १५ छ० ४ तो० ११ मा० ७ रत्ती, ७ चावल, ७ खसखस तक धीरे धीरे रखते जाइये, तराजूकी डाँडी सीधी नहीं होगी, किन्तु जैसे ही आप आखिरी खसखस रखेंगे, वह बराबर हो जायेगी, और उसके आगे एक खसखस बढ़ाते ही डाँडी गिर जायेगी।

३ इसे भी छोड़िये, दूसरा दृष्टान्त लीजिये। चार पहलवान एक पत्थरको उठाना चाहते हैं। सारी ताकत लगाकर हार गये, वह नहीं उठा। उस वक्त एक लड़का उधरसे गुजरा। लड़केके यह पूछनेपर कि क्या मैं भी हाथ लगा दूँ, तीन पहलवान हँस पड़ते हैं, चौथेको जाने अनजाने वैज्ञानिक भौतिकवादकी गन्ध लग गई है, वह कहता है—आने दीजिये। लड़का हाथ लगाता है, पत्थर उठ जाता है। बाकी तीन पहलवान लड़केको भगवान् या सिद्ध पुरुष मानना चाहते हैं, वह उसके चरणोंमें दंडवत् गिरना ही चाहते हैं, किन्तु यह भौतिकवादी पहलवान कह उठता है—ऐसी कोई सिद्धाई नहीं है, आखिरी थोड़ासा भार बँच रहा था, जिसे उठानेके लिये हम चारोंकी शक्ति बँच नहीं रहती थी, इसलिये हम उठा नहीं पाते थे।

४ और उदाहरण लीजिये। स्टोवमें आप हवा भर रहे हैं। भरते जा रहे हैं, भरते जा रहे हैं, पूरी हवा भर दी गई है, स्टोवकी सूई खतरे-की लाल लाइनपर पहुँच गई है। होशियार हवा भरनेवाले गुणात्मक परिवर्तनवादी होनेके कारण आप समझ गये कि अब इसकी उदरपूर्ति हो गई। आपका साथी भगवानदास कोरा भाग्यवादी, ब्रह्मवादी कर्मवादी, या मायावादी शून्यवादी है। वह आपके जरासा हटते ही जलते स्टोवमें एक ही पिचकारी और कसता है, स्टोव फटनेका धड़ाका होता है। आप दौड़कर देखते हैं, घरमें आग लग रही है, भगवानदास जलते कपड़ोंमें तड़फड़ा रहा है। खैर आप किसी तरह गीले कपड़ेकी मदद से भगवान्दासको बुझाकर बाहर निकालते हैं। अस्पतालमें जाकर वह बँच जाता है। चंगा होनेपर भगवान्दास कहता है—भाई! मैंने तो आधा फूँक भर भी हवा नहीं डाली होगी, भगवान्ने किसी पुराने कर्मका फल दिया। आप कहते हैं—इसी जन्मके कर्मका फल है, वह आधी फूँक हवाका परिमाण गुणात्मक परिवर्तन करनेकी सामर्थ्य रखता है। और यदि भगवान्दास—भाई! लगानेमें अनुप्रासका आनन्द तो

जरूर मिलता है, किन्तु किसी बार भी आपसे प्रार्थना की कि इस जंजीर नामको बदलो—उसी गुणात्मक परिवर्तनको आपने बदल गायब रूपका भवन रूप न परिवर्तन देगा।

(४) मन—मस्तिष्क और चिन्तन-स्वरूप आन्तरिक क्षमता किया—जिसे कि हम मन कहते हैं—का क्या संबंध है, इसके बारेमें हम 'प्रत्यक्ष'[1] काफी कह चुके हैं। इसलिए उन बातोंको यहाँ दुहरानेकी जरूरत नहीं, साथ ही "जीवन और भूत" पर लिखते वक्त हम अपनी स्थिति साफ कर आये हैं, कि जीवन भूतसे उत्पन्न है, किन्तु भूतही नहीं है। जीवन और मन एकही घटनाका दूसरा पहलू, अथवा साधारण जीवनका उन्नततर विकास है। पावलोफ ने इस महान मस्तिष्ककी अँधेरी कोठरीमें घुसकर उसे देखनेका काम शुरू किया। पिछले चालीस वर्षोंमें उसके कितनेही भागोंको आलोकित जरूर किया जा सका है, किन्तु मस्तिष्कका पाला मज्जाके करोड़ों सेलोंका रहस्य इतनी जल्दी नहीं खोला जा सकता। तो भी गवेषणाओंसे जो कुछ पता मालूम हुआ है, उससे पता लगता है मनकी भिन्न भिन्न क्रियायें मस्तिष्कके भिन्न भिन्न भागोंके सेल-समुदायों से संबंध रखती हैं। एक अकेला सेल् अलग करके अनिश्चित कालतक अनुकूल आहारके साथ रखा जा सकता है, किन्तु उस वक्त वह अपनी सारी अद्भुत शक्ति खो बैठेगा, और एक साधारण एकसेलीय प्राणी—अमीबा—जैसा जीवन व्यतीत करेगा। इसलिए कहना चाहिए कि मस्तिष्क इन सेलोंका योग मात्र नहीं है, यहाँ परिमाण-संबंधी परिवर्तनसे गुणात्मक परिवर्तन होता है—और मस्तिष्कके करोड़ों सेल वह काम करते हैं, जिसे उन सेलोंकी वैयक्तिक क्षमता अलग-अलग नहीं कर सकती। नालंदाके दार्शनिक धर्मकीर्त्ति (६०० ई०)के शब्दोंमें[2]—"एकसे कोई

[1] "विश्वकी रूपरेखा"

[2] "न किंचिदेकमेकस्मात् सामग्र्या सर्वसंभवः।" प्रमाणवार्त्तिक ३।५३६ "संहती हेतुता तेषाम्—वहीं २।७८।

एक वस्तु नहीं होती, (बहुतसे हेतुओंकी) सामग्रीसे सबकी उत्पत्ति होती है।" "उनकी संहति (संघात) में हेतुता है।"

मनके बारेमें विचार करनेके लिये कुछ भी आगे बढ़नेसे पहिले यह ख्याल हटा देना चाहिये कि मन एक खास वस्तु है, जो फूलकी तरह अपने भीतरसे चिन्तन-स्मरण आदिकी सुगंधि निकालता रहता है। आधुनिक मस्तिष्क विद्या विशारद मनोविज्ञानवेत्ता मनको एक द्रव्य नहीं, बल्कि घटना-प्रवाह मानते हैं। जीवन और मनकी तुलना करके देखिये तो मालूम होगा, मन तभी तक रह सकता है, जब तक कि जीवन है। जीवनके न रहने पर मन (चिन्तन, स्मरण) का रहना बिलकुल असंभव है। खैर, इसे तो आप फजूल वक्त लेना कहेंगे। किन्तु यह ख्याल रखिये, कि परीक्षासे यह सिद्ध हो चुका है, कि मन शरीरके मरनेसे पहिले मर जाता है, इस तरह हमारे यहाँके नैयायिकों की व्याप्ति–"जहाँ जहाँ धूम वहाँ वहाँ आग"की तरह "जहाँ जहाँ मन वहाँ वहाँ जीवन" तो ठीक उतरती है, किन्तु जिस तरह "जहाँ जहाँ आग वहाँ-वहाँ धूम"को गलत व्याप्ति (अ-व्याप्ति) कहेंगे, क्योंकि निर्धूम आग भी देखी जाती है, उसी तरह "जहाँ-जहाँ जीव वहाँ-वहाँ मन" (चिन्तन, स्मरण) भी अव्याप्ति है, क्योंकि जीवन चिह्न, शरीरकी उष्णता श्वास प्रश्वासके बंद होनेके पहिले ही चिन्तन-स्मरणकी क्रियायें समाप्त हो जाती हैं—"मन" मर जाता है। यही नहीं कि मनके बाद भी शरीर जीता देखा जाता है, बल्कि बाज वक्त तो शरीरके मर जाने पर भी,—हिटलरके बम द्वारा ध्वस्त ग्राममें एकाध बच गये दुधमुहे बच्चेकी भाँति शरीरके कुछ सेलोंको जिन्दा रहते देखा जाता है, यद्यपि यह 'दुधमुँहा बच्चा' देर तकका मेहमान नहीं होता—मुर्दों के नाखून और केश जो कभी-कभी बढ़े पाये जाते हैं, वह इसीके दृष्टान्त हैं। वस्तुतः जिसे हम शरीर कहते हैं, वह अरबों स्वतंत्र सजीव सेलों (हाँ, यदि हमारे शरीरके किसी सेलको निकालकर खास रसमें रखें तो वह अनिश्चित काल तक एकसेलीय जन्तुकी तरह जीवि-

रहेगा) का संघात है। ये मेल अलग-अलग उस शक्तिको नहीं पैदा कर सकते, जिसे हम मनका नाम देते हैं, किन्तु उनकी संहतिमें देखता होती है और गुणात्मक परिवर्तनके नियम-अनुसार वैसी अद्भुत शक्ति (=मन) पैदा हो जाती है। पंकज (कमल फूल) पंकसे पैदा होता है, किन्तु वह पंक नहीं है, मन भी पंकज (पंकसे पैदा हुआ) है, किन्तु वह पंक नहीं। जैसे कमलके रूप गुणको देखकर उस स्वर्गमें उसका नाता पंकके साथ पर अन्याय और अपनेको जड़ मूर्ख साबित करना है, उसी तरह मनको आत्मासे जोड़ना भी जड़ मूर्ख बनाना है, अथवा "रानी साहब के शक्कर" की कहावतके अनुसार दूसरोंको धोखा देना है।

एक बार फिर भूतके उदर-गह्वरमें हम आपको ले चलना चाहते हैं। एलेक्ट्रनोंको प्राटन् (हाइड्रोजनके नाभिकण) के गिर्द निरन्तर नाच करनेके बारेमें हम कह आये हैं। पिछले युद्धके बाद वैज्ञानिक कैसे इस प्राटन्के जबर्दस्त किलेको भी तोड़नेमें समर्थ हुए, इसे दूसरी जगह[1] देखिये। यहाँ संक्षेपमें इतना ही समझिये कि यह प्राटन् भी तोड़ने पर एलेक्ट्रन् और पोजिट्रन् (पोजिटिव=धन बिजली)से युक्त मिला, और अब वैज्ञानिकोंने एलेक्ट्रन्के नामको और वैज्ञानिक बनाते हुए उसे निगेट्रन (निगेटिव=ऋण बिजली कण) नाम दे दिया। एलेक्ट्रन्, निगेट्रन्, न्युट्रन् इन "प्रारम्भिक" इकाइयोंसे कैसे विश्वका विकास हुआ, इसके बारेमें भी हम यहाँ दूर तक नहीं जा सकते। ये भिन्न-भिन्न परिमाणमें मिलकर (परिमाणात्मक परिवर्तनसे) गुणात्मक परिवर्तन करते हुए हाइड्रोजन्, कार्बन्, रेडियम् जैसे परस्पर भिन्न स्वभाववाले ९२ रासायनिक मूलतत्त्वों (परमाणुओं)को विकसित करते हैं। ये परमाणु मिलकर अणुओं, अणु-गुच्छकों तथा भिन्न भिन्न रसायन योगों—जल (ओ १ हा २), नमक आदि—को बनाते हैं। खैर, इस योगके बनाने

[1] "विश्वकी रूपरेखा"

म तापमानका खास महत्त्व है। तापमानके परिमाणके परिवर्तनसे कैसे जलमें गुणात्मक परिवर्तन हो वह ठोस बर्फ तथा गैसरूपी भापमें परिवर्तित हो जाता है, इसे हम बतला आये हैं। लेकिन इस तापको ढूँढनेके लिये मशाल लेकर बाहर भटकनेकी जरूरत नहीं। भूत (भौतिकतत्व) की गतिका ही नाम ताप है, और यह गति भूतमें स्वाभाविक है—गति-रहित भूत कहीं नहीं पाया जा सकता। एलेक्ट्रन् १,८७,६२८ मील प्रति सेकण्डकी चालसे चक्कर काटता है। रेडियमसे स्वत सदा निकलनेवाले कणोंमें एक अल्फा-कण भी है, यह एलेक्ट्रनकी गतिके सामने घसड़ा है—सिर्फ १० से १५ हजार मील प्रतिसेकण्ड चलता है, किन्तु जानते हैं वह कितना गर्म होता है—५० अरब डिग्री सेंटीग्रेड (फॉर्नहाइट करनेमें और ज्यादा डिग्री होगा), उसके सामने सूर्यकी नाभिपर की ४ करोड़ डिग्रीवाली गर्मी हिमालयकी सर्दी है। हाँ, तो गति = गर्मी, संघर्ष = समागम कराती है। परिमाणके परिवर्तनसे गुणमें परिवर्तन होता है। पृथिवी दो अरब वर्ष पहले बहुत सतप्त थी, ताप गिरनेके साथ गुणात्मक परिवर्त्तन शुरू हुए और अन्तमें जीवनकी आगमनीके लायक तापमान हुआ।—जीवनः सेंटीग्रेड (३२° फार्नहाइट)से १००° (२१२ फार्नहाइट) तक जीवित रह सकता है। और १००° सटीग्रेड पर थोड़े समय तकके लिये जीवित रहनेवाले बैक्टीरिया और विरस् हैं, जिन्हें भूत और जीवनकी बीचकी कड़ी माना जाता है। तापमान जीवन पर क्या प्रभाव रखता है, इसे मैं अपनी पुस्तक "विश्वकी रूपरेखा"से उद्धृत करता हूँ—करना ही चाहिये, नहीं तो आपलोग समझने लगेंगे कि अपनी पुस्तकका विज्ञापन देकर उसे बिकवाना तथा नफा कमाना चाहता हैं। नफेकी बात किसी हिन्दी-लेखकसे पूछिये और उद्धृत करनेका एक यह भी मतलब है क्या जाने दुनियाके इस महान्धानमें "विश्वकी रूपरेखा" कहाँ रहे और "वैज्ञानिक भौतिकवाद" कहाँ?—

प्रोफेसर हर्टविगने मेंढकों पर तापमानका प्रयोग किया है। उन्होंने

एक ही मेंडकके एक ही दिन दिये अंडोंको चार भागोंमें बाँटा। चारों भागोंको क्रमशः ११·५°, १५°, २०° और २४° सेंटीग्रेड तापमानके पानीमें पाला। तीन दिनके बाद देखा गया कि जहाँ प्रथम भाग दानेदार भी नहीं बन सका, वहाँ चतुर्थ भाग अंडा फोड़कर बाहर निकलने वाला था, और बाकी दो भाग बीचकी अवस्थामें थे। इसका अर्थ यह हुआ कि ऊँचे तापमानमें जीवन विकास शीघ्रतासे होता है।

"प्रोफेसर लोएव्ने ड्रोसोफिला मक्खी पर प्रयोग किया है। उससे पता लगा है, कि ३०° सेंटी तापमानमें रखनेपर मक्खीको अंडा फोड़कर बाहर निकलनेसे मरने तकमें २१ दिन लगे, २०° सेंटीग्रेडमें आयु ५४ दिनकी रही और १०° सें० में १७७ दिन अर्थात् आठ गुनीसे भी ज्यादा।

"तापमान जीवनकी गति को शीघ्रतासे तैयार करता है, ऊपर ड्रोसोफिलाके प्रयोगमें हर १०° डिग्रीपर जीवनकी अवधि ढाई और तीनगुनी घटी है। यह भी ख्याल रखना चाहिये कि, १०° सेंटीग्रेडसे ऊपर जीवनकी अवधि(१००° सें०)तक तापमानमें हर दस डिग्रीपर रासायनिक तत्वोंके प्रभाव भी दुगुने तिगुने हो जाते हैं।

"तापमानका आयुपर जिस तरहका प्रभाव हम मक्खियों, मेंढकों तथा दूसरे निम्न प्राणियोंपर पाते हैं, वह चिड़ियों, स्तनधारियों, मनुष्यों पर नहीं पाया जाता। कारण उनके शरीरकी बनावट ऐसी है, कि उनके शरीरका तापमान एक खास परिमाणसे ऊपर नहीं जाने पाता। गर्मियों में एककी जगह तीन-तीन गिलास पानी जो हम पीते हैं, वह टेम्प्रेचरको ६६°,६७° फारनहाइट तक रोक रखनेमें खर्च होता है।"

तापमानका जीवनपर प्रभाव कैसा होता है, यह तो समझ गये। पृथिवी पहिले अत्यन्त उष्ण थी, फिर गर्मी कम होते होते जब ऐसे तापमानमें आई, जहाँ कि जीवनका गुजर हो सकता है, तो जीवन उत्पन्न हुआ, और पृथिवीके तत्त्वोंसे ही उत्पन्न हुआ। कैसे हुआ, इसके लिये हम

मजबूर हैं, "विश्वकी रूपरेखा"को देखनेकी सलाह देनेके लिये। श्र जीव रसायनिक रसयोगसे गुणात्मक परिवर्तनके साथ एक नया तत्त्व "विरस"[1] या बेक्टीरिया पैदा हुआ। फिर क्रमशः एकसेलवाला प्राणी अस्तित्वमें आया। फिर एकसेलीय अमीयुवा, और अनेकसेलीय क्षुद्र कीटसे अरबों सेलोंवाले मनुष्य तक। आज भी हमारे शरीरके किसी सेल्को शरीरसे बाहर जिंदा रखा जा सकता है। सेल्के जिन्दा रखनेकी एक प्रक्रिया यह है, जिसे सन्तान प्रसव कहते हैं, जिसमें पति, पत्नीके एक एक सजीव सेल् आपसमें मिलते हैं, और उदरमें तथा बाहर आहार प्राप्त कर पुत्र या पुत्रीके रूपमें साकार हो हमारे प्रेम, तथा योग्यताके अधिकारी बनते हैं। दूसरा तरीका डाक्टर केरेल (अमेरिका) जैसे वैज्ञानिक इस्तेमाल कर रहे हैं—डाक्टर केरेलने मुर्गीके हृदयके एक सेल्को एक खास रसमें २० सालसे जीवित रखा है, उसकी जिन्दगी एक सेल् वाले अमीयुवा जैसी है।—स्मरण रखना चाहिये, मुर्गीकी औसत आयु सिर्फ पाँच सालकी होती है।

इसी गुणात्मक प्रक्रियासे मानव तत्त्वके विकासके समझनेके लिये हमें प्राणि शास्त्रियोंके प्रयोगसिद्ध एक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त जाति परिवर्तन[2]का थोड़ासा समझ लेना चाहिये।

(५) *जाति-परिवर्तन*—हमने अन्यत्र[3] इसके बारेमें लिखा है—"आनुवंशिकताका प्राणीके निर्माणमें" बहुत हाथ है, तो भी उसकी दीवारमें कुछ छिद्र हैं, जिसके कारण नई जातियों या श्रेणियोंका प्रादुर्भाव होता रहता है। व्यक्तिमें नये रूप-गुणका प्रादुर्भाव दो तरहसे होता है—एक अभ्यास या कृत्रिम रीतिसे—जैसे अशिक्षित व्यक्ति अध्ययन और अध्यवसायसे शिक्षित बन जाता है, अथवा दुर्घटनासे आदमी लंगड़ा-लूला हो जाता है। ये परिवर्तन ऊपरी तथा एक शरीर (पीढ़ी)

[1] Virus [2] Mutation

[3] ज्यादा जाननेके लिये देखिये "विश्वकी रूपरेखा"

तक ही सीमित रहते हैं। डाक्टरका लड़का सिर्फ इसलिये डाक्टर नहीं हो सकता, कि वह डाक्टरका लड़का है। इसका मतलब यह है कि अभ्यास और अध्यवसाय द्वारा प्राप्त गुण आनुवंशिक नहीं बनते। एक दूसरी तरहका परिवर्तन है, जो कि स्थायी होता है, इसे *जाति-परिवर्तन* कहते हैं। यह परिवर्तन ऊपरी नहीं, प्राणिके अन्तस्तम *जनक-बीज* (जेनस्[1]) में होता है, जिससे नवीन वस्तुका प्रादुर्भाव होता है। नवीनताका प्रादुर्भाव ही *विकासका* आधार है।

"मेंडल[2] की जाति परिवर्तनसंबंधी गवेषणायें डार्विनको अज्ञात थीं, इसलिये विकासका अर्थ वह अविच्छिन्न शान्त प्रवाह—समगति—लेता था। *विकास*, वस्तुत, अविच्छिन्न नहीं है, बल्कि विच्छिन्न उड़ान है।"

जनक-बीज या जेनस् ही एक पीढ़ीके आनुवंशिक गुणोंको दूसरी पीढ़ीमें पहुँचाते हैं। इन्हीं जनक बीजोंमें परिवर्तन जब और जितने परिमाणमें होता है, तब और उसी मात्रामें जातिमें परिवर्तन होता है। जनक बीज और जाति-परिवर्तनके विषयमें हम दूसरी जगह[3] लिख चुके हैं। मनुष्यका शरीर अरबों सेलोंका एक परिवार है। हर सेलमें एक नाभिकण होता है। हर "नाभिकण"में रस्सीके टुकड़ा जैसी कोई चीज (क्रोमोसोम) होती—(सेलकी भाँति इसका रूप भी बदलता रहता है)। इसकी संख्या मनुष्यमें ४८ है (खून या मांसकी परीक्षा कर इन क्रोमोसोमोंकी गिनतीसे यह किस प्राणीका मांस या खून है इसे बतलाया जा सकता है।) क्रोमोसोम्के धागेमें कुछ हजार छोटे-छोटे मनके पिराये रहते हैं, जिन्हें कि जनक-बीज (जेनस्) कहते हैं। अमेरिकन वैज्ञानिक मोर्गनने फलोंकी मक्खी ड्रोसोफिलाके प्रयोगसे जनक-बीजके रहस्यको खोज निकालनेमें बहुत सफलता पाई है। महीनेमें दो और सालमें २४ पीढ़ी तैयार हो जानेसे ड्रोसोफिलाके

---

[1] Genus [2] आस्ट्रियाका एक प्राणि शास्त्री [3] "विश्वकी रूपरेखा"

पीढ़ीसे पीढ़ीमें जनक-परिवर्तनका अध्ययन बहुत सुगम है। मोर्गनने कितनी ही लाख मक्खियोंकी आनुवंशिकताका लेखा तैयार किया है। जनक-परिवर्तनसे जो आनुवंशिकता-परिवर्तन होता है, इसे ही *जाति-परिवर्तन* कहते हैं। मोर्गनने अपनी इन मक्खियोंमें चार सौके करीब जाति-परिवर्तन देखे, इन चार सौ जाति परिवर्तनोंमेंसे बहुतोंका अध्ययन करनेसे मालूम हुआ है कि यहाँ जनक-बीजों (जनकों)के चार समूह हैं—अर्थात् समूहोंकी उतनी ही संख्या है, जितने कि ड्रोसोफिलाके नाभिन-युग्मे क्रोमोसोम् होते हैं। एक-एक समूहमें जनक-बीजोंकी संख्या क्रोमोसोम्की लंबाईके अनुसार होती है, और उसे अणुवीक्षणसे हम देख सकते हैं।

ड्रोसोफिलामें हर लाख पर २८ से ६१ तक जाति-परिवर्तनवाले व्यक्ति पाये गये हैं। लेखा लगानेसे पता लगता है कि एक हजार वर्ष के समयमें ड्रोसोफिलाके सभी जनक-बीज बदल जाते हैं। १५ दिनमें नई पीढ़ी तैयार करनेवाली, तथा सन्तान प्रसवमें लाखानी ड्रोसोफिला मक्खीमें *जाति-परिवर्तन*की गति बहुत तीव्र है। मुलरने एक प्रयोग द्वारा जाति-परिवर्तनकी प्राकृतिक गतिको १५० गुना तक कर दिया, और इस प्रकार एक लाखपर ४२०० से ६१५० जाति-परिवर्तन किये जा सके—अर्थात् ऐसा होनेपर छै वर्षमें सारी मक्खियोंके जनक-बीज बदल जायेंगे। ड्रोसोफिलाकी सारी जातिके जाति-परिवर्तनमें जितना समय लगता है, हम यहाँ उससे मतलब नहीं है, मतलब इससे है कि *जाति-परिवर्तन* होता है, और सिर्फ सर्प-गतिसे नहीं, बल्कि मेंडक-कुदानकी तरह यकायक होता है।

(६) *मनुष्य और उसके समाजमें गुणात्मक-परिवर्तन*—समाजमें गुणात्मक-परिवर्तन होता है, इसीको हम सामाजिक-क्रान्ति कहते हैं। यह जबसे पृथिवीपर मनुष्य आया तबसे हो रहा है, यद्यपि मस्तिष्कका मालिक मनुष्य प्रकृतिके काममें अक्सर बाधा डालना चाहता है, किंतु

वह होता ही रहता है। हमने इस परिवर्तनको अपने "मानव-समाज"में सविस्तार दिया है। इस तरहके परिवर्तनको और नजदीकसे देखना चाहते हों, तो अपने सामने मौजूद किसी घरकी तीन पीढ़ीका गौरसे देखिये। मेरा अपना उदाहरण लीजिये—

१ नाना (रामशरण पाठक, पल्टनके सिपाही)—"हमारी पल्टनका बलिया जिलेवाला राजपूत डाक्टर किस्तान था, उसकी स्त्रीने उसे छोड़ दिया। क्यों ? वह अंग्रेजोंके साथ चाय पीता था।"

२ पिता (गोवर्धन पांडे[1])—पूजा-पाठके बहुत पाबंद, किन्तु अपने हलवाहे चिनगी चमारकी लाशको लोगोंके बुरा माननेपर भी ४० मील दूर गंगा तटपर फूकनेके लिये ले गये, और

३ बेटा (राहुल सांकृत्यायन)—आप लोगोंके सामने नंगा खड़ा है। न हिंदुओंके भक्ष्याभक्ष्यको मानता, न धर्म अधर्म, न जात-पाँतको। बेचारा बलियावाला डाक्टर तो अंग्रेजोंके साथ चाय पीता था, यहाँ अंग्रेजोंको भी पी जानेके लिये तैयार है। और ? रामशरण पाठक और गोवर्धन पांडेके एक एक सेलूकी परंपराको आगे ले जानेके लिये (यदि वह इस सर्वसंहारी युद्धसे बच रहा तो) लोलाको उसने सहयोगिनी बनाया, जो कि पाठकजी, पंडिजी दोनोंके विचारसे सोलहो आना "किस्तान" म्लेच्छ रूसी स्त्री है।

मानव समाजमें गुणात्मक-परिवर्तनके लिये उसके जंगली, बर्बर, सभ्य (सभ्यम सामन्तवाद, पूँजीवाद, समाजवाद) अवस्थाओंको देखनेसे मालूम होगा कि इन अवस्थाओंमें गुजरनेपर किस तरह रूढ़ियाँ, आर्थिक, धार्मिक ढाँचे बदलते गये हैं।

---

[1] दादाको न देखने तथा समझ होनेसे पहिले माके मर जानेसे उनका दृष्टान्त नहीं दे सका।

३ प्रतिषेधका प्रतिषेध

द्वन्द्ववादके ध्वंस रचना कार्यकी तीसरी सीढ़ी प्रतिषेधका प्रतिषेध है। विनष्ट विलीन वस्तु (घटना प्रवाह)के उत्तराधिकारी या स्थाना पन्नको प्रतिषेध, निषेध, कहते हैं। यद्यपि प्रतिषेधका नाम कर्णकटु-सा प्रतीत होता है, किन्तु साथ ही उसका महत्त्व बहुत बड़ा है, यह इसीसे पता लगेगा कि विश्वकी हर एक प्रगति, हरएक विकासमें इसका होना जरूरी है। एक पीढ़ी पहिली पीढ़ीका प्रतिषेध करती है, फिर इस नयी पीढ़ी (प्रतिषेध) का प्रतिषेध अगली करती है। वैज्ञानिक भौतिकवादकी ही ओर देखिये—

पुराना भौतिकवाद
↓
यान्त्रिक भौतिकवाद
↓
वैज्ञानिक भौतिकवाद

प्राचीन भौतिकवादका प्रतिषेध सत्रहवीं-अठारहवीं सदीके यान्त्रिक भौतिकवादने किया, और उसका प्रतिषेध वैज्ञानिक भौतिकवादने, गोया वैज्ञानिक भौतिकवाद प्रतिषेधका प्रतिषेध है।

और,

अलग अलग वैयक्तिक सम्पत्ति->
पूंजीवादी वैयक्तिक सम्पत्ति->
समाजवादी सामूहिक सम्पत्ति

पूँजीवादने अलग अलग छोटे छोटे व्यवसायियों, शिल्पियोंको हटाकर उत्पादनके साधनों तथा व्यवसायको पूँजीवादी संगठनके हाथ-

म दे दिया। समाजवाद उसका प्रतिषेध कर प्रतिषेधका प्रतिषेध करता। मार्क्सने इस क्रियाके सामने दिखलाते हुए कहा है[1]—

“एक पूँजीपति कई [पूँजीपतियों]को मारता है। यह (पूँजीपतियों) द्वारा बहुतसे पूँजीपतियोंके इस प्रकार हो रहे स्वत्वहरण या केन्द्रीकरणके साथ-साथ वह लगातार बढ़ते हुए पैमानेपर आगे बढ़ता जाता है—श्रमका सहयोगी (सामूहिक) तौरपर प्रयोग, जान-बूझकर साइंसकी यंत्र-कलाकी तरक्की, भूमिका ठीक तौरसे उपयोग, श्रमके साधनोंका सिर्फ सामूहिक (सम्मिलित) तौरपर ही इस्तेमाल होने लायक बन जाना, सम्मिलित समाजीकृत श्रमके उत्पादन साधनोंके उपयोग द्वारा सभी उत्पादन-साधनोंमें मितव्ययिताका इस्तेमाल। उत्पादन-साधनोंका केन्द्रीकरण [कुछ हाथोंमें एकत्रित होना] तथा श्रमका समाजीकरण [वैयक्तिक नहीं व्यवस्थित सामाजिक रूपमें उपयोग] आखिरमें एक ऐसे स्थानपर पहुँच जाता है, जहाँपर वह अपनी पूँजीवादी खोलके प्रतिकूल हो जाता है। यह खोल फट जाता है। पूँजीवादी वैयक्तिक संपत्तिका (मरण) घंटा बज जाता है और हड़पक हड़पित होजाते हैं।”

सामन्तवादी युगकी वैयक्तिक संपत्तिको पूँजीवादने हड़पा, उसका प्रतिषेध किया, उसने पूँजी—लाभ—को वैयक्तिक पर श्रमको समाज बद्ध किया। एक ही जगह दो विरोधी व्यवस्थाओंका समागम हुआ। दोनोंमें टक्कर लगी। गुणात्मक परिवर्तनसे एक नया समाजवादी समाज—शोषक शोषित रहित समाज—पैदा हुआ, जिसने पहलेके प्रतिषेध (पूँजीवाद) का प्रतिषेध कर दिया।

विरोधि-समागम होनेपर ही संघर्षद्वारा गुणात्मक परिवर्तन होता है, जिसका ही परिणाम प्रतिषेधका प्रतिषेध होता है। यह विरोधि-समागममें निम्न अंश, जिस जिस रूपमें होगा, उसीके अनुसार वह अपनी असली क्रिया

[1] Capital

आगे करानेमें सफल होगा। प्रश्न हो सकता है—जिस तरह पूँजीवादको समाजवादने प्रतिषेध किया, क्या इस प्रतिषेध (समाजवाद)का भी कोई प्रतिषेध नहीं होगा, क्या यहाँ प्रतिषेध प्रतिषेधका नियम लागू नहीं है?—लेकिन यह प्रश्न गलतीसे किया गया है। प्रतिषेध प्रतिषेधके मकानको हम नीचेसे नहीं उठा सकते। हमें उसे विरोधि-समागमसे पहले शुरू करना होगा। प्रश्न होगा—समाजवादी—या उससे आगेके साम्यवादी-समाजमें क्या विरोधि समागम होगा? निश्चय ही (शोषक शोषित) वर्गहीन साम्यवादी समाजमें वर्ग-संघर्ष नहीं होगा, इसलिए वहाँ इस तरहके विरोधि-समागमकी संभावना नहीं। वहाँ विरोधि समागम उस वक्तकी साइंस-यंत्र-चातुरी तथा प्राकृतिक शक्ति और क्षमताके साथ होगा, जिसका परिणाम मानवकी क्षमताका अधिक और अधिक विकास होगा। किस तरह, किस दिशामें?—यह प्रश्न गुणात्मक-परिवर्तनवादीसे नहीं किया जा सकता, यदि आपको वैसा विश्वास है, तो इसे किसी भृगुसंहिता वालेके पास ले जाकर अपनी अकलका दिवाला खुलवाइये।

"प्रतिषेधका प्रतिषेध" कठघोड़ेके नाचकी तरह उसी चक्कर पर नहीं बल्कि चक्करदार सीढ़ीकी भाँति ऊपर और ऊपर जाते पथ पर होता है, यह बतलाते हुए मार्क्सने बतलाया[1]—

"पहिली [पूँजीवादकी सफलताकी] अवस्थामें थोड़ेसे (परस्वत्व) अपहरण करनेवालों द्वारा जनताकी एक अत्यन्त भारी संख्याको वंचित करना [हड़पना] था, दूसरी [समाजवादकी सफलताकी अवस्था] में जनताकी एक अत्यन्त भारी संख्या द्वारा चंद अपहरण करनेवालोंको वंचित करना है।"

प्रतिषेध प्रतिषेधके नियमको दर्शनके इतिहासमें देखें तो इसके बहुतसे नमूने मिलेंगे। याज्ञवल्क्य (७०० ई० पू०) से असंग (४०० ई० पू०) के ग्यारह सौ सालोंमें प्रतिषेध प्रतिषेध निम्न तौरसे चल रहा था—

[1] Capital Vol I p 289

वैदिक ब्रह्मवाद→याज्ञवल्क्य→कपिल→बुद्ध→अफलातूँ→असंग और आगे—

असंग |→दिग्नाग→धर्मकीर्ति
     |→गौड़पाद→शंकराचार्य

और भारतीय न्यायशास्त्रमें प्रतिषेधके प्रतिषेध—

नागार्जुन (१७५ ई०)
→अक्षपाद (२५० ई०)
→वात्स्यायन (४०० ई०)
दिग्नाग (४२५ ई०)
→उद्योतकर (५०० ई०)
धर्मकीर्ति (६०० ई०)
ज्ञानश्री (७२५ ई०)
वाचस्पति (८४१ ई०)
उदयन (९८४ ई०)
(वादरहस्यकार) (११०० ई०)

हाँ, यहाँ प्रतिषेध प्रतिषेधका मतलब यह न समझिये कि एकने दूसरेके सारे दर्शनका प्रतिषेध कर दिया, प्रतिषेध उसी अंशमें हुआ, जितनेमें विरोधि-समागम हुआ था।

द्वितीय अध्याय

कार्य-कारण (हेतुवाद)

द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद दर्शन नहीं, बल्कि साइंसका अधिनायकत्व है, इसीलिये यह जो भी शक्ति रखता है, वह उसे साइंससे मिली है—यह हम पहले कह चुके। किन्तु, प्रचलित दर्शनवालोंके मुकाबिलेमें हम इसे दर्शन—और उनसे कहीं बढ़ चढ़कर दर्शन—भी कह सकते हैं। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद अपनेको प्रचलित तर्कशास्त्रकी कोटिमें रखनेके लिये तैयार नहीं है, क्योंकि वह दिमागी कसरतको नहीं बल्कि प्रयोग (भौतिक जगत्में प्राप्त वस्तु स्थिति) का परम प्रमाण मानता है, यही उसके लिये सत्यकी सर्वश्रेष्ठ कसौटी है। तो भी जिस तरह प्रचलित दर्शनसे लोहा लेनेके लिये उसे दर्शन बनकर दर्शनकी भाषामें जवाब देना पड़ता है, उसी तरह तर्कके शस्त्रको कुंठित करनेके लिये उसे तर्कके जनक *प्रयोग* जैसे महाशस्त्रवाले तर्कको भी इस्तेमाल करना पड़ता है। ऐसी अवस्थामें वैज्ञानिक भौतिकवादको कार्यकारण (हेतु)-वादके बारेमें अपनी स्थितिको साफ कर देना जरूरी है।

क. कार्य-कारण या हेतु

१ व्याख्या

कार्य-कारण नियम क्या है? इसे जाननेके लिये पहले कारणको जानना जरूरी है। कारणका जो लक्षण अभी हम दे रहे हैं, उसके बारेमें यह जान लेना जरूरी है प्रकृतिको यह बिलकुल मजूर नहीं है कि उसकी वास्तविकताको परमार्थ तौर पर चित्रित या मापित किया जाये।

—वस्तुत दार्शनिकों और तान्त्रिक अर्थमें *परमार्थ* नामका ना शब्द है, वह प्रकृतिके कोशमें मौजूद ही नहीं है। वास्तविकताके निय प्रयोगकी कसौटी हाथमें ले कैसे आइन्स्टाइन[१] *सापेक्षतावाद* पर पहुँचे, इसे आपने पढ़ा होगा, उससे हमारी बात समझनेमें न दिक्कत होगी, न उसमें रहस्यवादी अर्थ खोजनेकी आप कोशिश करेंगे।

अच्छा तो *कारण* क्या है? यहाँ फिर स्मरण रखना होगा कि जब हम कहते हैं—कुछ कारण हैं, जो अमुक परिवर्तनको ला रहे हैं, तो परिवर्तन लानेमें यहां हम देश और कालको नहीं गिनते, गोया देश-काल किसी चीजके कारण नहीं हैं। आप प्रश्न कर उठेंगे—क्या देश-कालका अस्तित्व ही नहीं है? क्या आप भी वेदान्ती हो गये? नहीं, इन दोनों बातोंकी शंका आपके मनमें नहीं होनी चाहिये। हम देश-कालसे इन्कार नहीं करते, हम इन्कार करते हैं, उनके दार्शनिक अर्थमें *परमार्थ* होनेसे। देश-काल वस्तुत भूत (भौतिकतत्त्व)के अस्तित्वके ही—उससे कभी अलग नहीं रहनेवाले—पहलू हैं। जैसे गिनती प्रकृतिके यहाँ उस तरह नहीं मिलता, जैसी कि हमारी गणितकी पुस्तकोंमें, उसी तरह देश काल भी द्वंद्वात्मक प्रकृति (भूत, गति)से अलग कोई हस्ती नहीं रखते। कारणका काम है क्रिया करना। क्रिया बिना अपने या दूसरेमें कोई परिवर्तन किये नहीं हो सकती। दार्शनिकोंका देश-काल—आकाश, आत्मा (ईश्वरको भी ले लीजिये)—कोई काम नहीं करते, वह निष्क्रियतत्त्व हैं। निष्क्रिय होने पर भी वह निराकार पदार्थ हैं—यह सध्याभाषा है, जिसका समझना मर्त्योंकी शक्तिसे बाहर है, शायद इसे भाँगका गोला चढ़ाये भोला बाबा या उनका नाँदिया ही समझ पाये।

फिर यह भी स्मरण रखना है कि कारण भी कोई *परमार्थ*के अर्थमें नहीं होता—एक बार कारण है तो वह सदा कारण रहेगा, ऐसा प्रकृति

[१] देखिये "विश्वकी रूपरेखा"

में नहीं मिलता। जिस तरह हरएक पिता किसीका पुत्र भी है, उसी तरह हरएक कारण किसी (नहीं किन्हीं कहना अच्छा है, क्योंकि प्रकृति बहु पति विवाह—यूथ विवाह—को बहुत पसंद करती है। एक कारण नहीं कारण सामग्री[1]—कारण-समुदाय—कार्यको अस्तित्वमें लानेमें समर्थ होते हैं) किन्हीं पहिले कारण-समुदायोंकी प्रवृत्ति—कार्य होता है। यह ख्यालमें रखते हुए आप कारणकी परिभाषा कर सकते हैं—कारण वह वस्तु (घटना प्रवाह) है, जो कि नियमपूर्वक किसी परिवर्तनके तुरन्त पूर्व मौजूद (कार्य नियत पूर्व-वृत्ति) था, और यदि उन्हीं परिस्थितियोंमें वैसा कारण(-समुदाय) फिर मौजूद हुआ, तो उसी तरहके कार्य (घटना प्रवाह) अस्तित्वमें आयेंगे।

तब कार्य-कारण नियम होगा—यदि एक खास घटना प्रवाह (आसानीके लिये वस्तु कह लीजिये) वस्तुतः मौजूद है, तो उससे पहिले एक दूसरा अनुकूल घटना प्रवाह वहाँ अवश्य मौजूद रहा होगा। अवश्य मौजूदगी कारण होनेके लिये जरूरी है।

१ नियतिवाद

कार्य-कारण नियममें नियम—नियति = अवश्यमानिता—दुबकके बैठा हुआ है, जिससे नियतिवादका प्रसव बिल्कुल आसानीसे हो सकता है। प्रकृतिमें कार्य-कारण नियम हर जगह बराबर दिखाई पड़ता है। किन्तु इस तरहके कड़े नियमको जब हम एक मनुष्य या अनेक मनुष्यों पर लागू करना चाहते हैं, तो भारी दिक्कत ही का सामना नहीं करना पड़ता, बल्कि कितनी ही बार वह व्यक्ति या व्यक्ति-समूह उसे लागू होने नहीं देता, यही वजह है, जो कि हम प्रकृतिके बारेमें जितने इतमीनानके साथ भविष्य कथन कर सकते हैं, मनुष्यके बारेमें उतना

[1] "सहतौ हेतुता तेषाम्"—धर्मकीर्ति (प्रमाणवार्तिक २।२८)

नहीं कर सकते। आप इससे खुश न होइये—अच्छा हुआ जो मनुष्यकी (इच्छा या कर्म) स्वतन्त्रता सुरक्षित रह गई, और वह नियतिके पाशमें बँधा "मदारी" का भालू नहीं बन गया। नियतिवाद और स्वातन्त्र्यवादकी समस्या काफी गहन है—खासकर जबकि प्रकृति (प्रयोग)का सहारा छोड़ लोग इससे आकाशके सितारे तोड़ने लगते हैं।

हाँ, तो प्रश्न है—जब प्रकृतिमें सर्वत्र कार्य-कारण नियम व्याप्त हुआ है (इसे माने बिना कोई साइंस-सम्बन्धी गवेषणा संभव नहीं), तो मनुष्यको "स्वतन्त्र कर्त्ता" कैसे कह सकते हैं? कार्य-कारण-नियम एक जबर्दस्त नियति (भाग्य) है, जिसके द्वारा विश्वकी प्रत्येक वस्तु (घटना प्रवाह) नियत है, तभी तो हम प्रयोगशाला, या वेधशालामें कार्यसे कारण तक पहुँचनेका प्रयत्न करते हैं, अथवा कारणसे कार्यको सम्भव होनेका ख्याल कर उसके पानेके लिये परिश्रम करते हैं। फिर तो बेचारा मनुष्य हाथ पैरसे बँधा है, उसकी तो साँस भी इसी कार्य-कारण नियमके अधीन है। इसका अर्थ दूसरे शब्दोंमें यह हुआ कि हमारी इच्छा हमारे अन्तस्तमके विचार सभी नियति—भाग्यके हाथमें हैं। फिर तो यह भी मानना पड़ेगा कि विश्वके भीतर एक खास प्रयोजन छिपा मालूम होता है, और उसका सञ्चालक 'ईश्वर' यह सब कुछ एक खास प्रयोजनसे करता है। किन्तु अभी इतनी दूर तक जानेकी जरूरत नहीं, क्योंकि नियतिवाद दुधारी तलवार है, यदि वह मानवका हाथ पैर बाँध कर छोड़ देगा, तो ईश्वरकी दशा भी उससे बेहतर न होगी, वह भी नियतिके हाथकी कठपुतली मात्र रह जायेगा।

देखना है—क्या कार्य-कारण नियम [illegible] इतना प्रबल है।
यदि ऐसा होता तो कार्य-का[illegible] घटते देखते,
और कारणके बाद कार्य, [illegible]
कार्य फिर वही कारण [illegible]
किन्तु इतिहासमें हम [illegible]

ऐसा साबित करनेके लिये पूरी कोशिश की जाती है। अंग्रेजी कहावत है—"सूर्य (आकाश) के नीचे कोई नई चीज नहीं", जो कि सोलहों आने गलत है, और उसकी जगह कहना चाहिये—'आकाशके नीचे कोई चीज पुरानी नहीं है।" हर एक चीज हर क्षण नई है, इसे हम पहले बतला आये हैं। अंग्रेजीकी कहावतकी भाँति ही भारतकी भी पुरानी गलत कहावत है—"सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्"[1], और इसके ऊपर जो तूफाने-बदतमीजी बाँधा गया, वह तो "पत्ता भी हिलता नहीं (बिना उसकी मर्जीके)" जैसी सस्ती हजारों कहावतोंमें देखा जाता है। इसका निदर्शन राम रावणमें संबंध रखनेवाली हनूमानकी कहानीसे है।

हिंदुओंके परम देवता वानर हनूमान्, जो हैं-सो रामजीकी कृपासे, जगत्-माता जनकनन्दिनी सीताजीके पास जब जा रहे थे, तो उनके मनमें संदेह होता भया—यदि कहीं यह घटकी बात जाननहारी जनक दुलारी सीता महारानीके मनमें शंका उत्पन्न होती भई कि कौन जाने यह कलमुँहा वानर त्रैलोक्यके विधाता दाशरथी रामके पाससे आया है या और कहींसे, तो कैसे करके विश्वास दिला सकूँगा। निदान, यह सोच श्री हनूमानूजी महाराज रामजीसे बोलते भये—"हे त्रिलोकीके त्राता! हमारे मनमें यह सन्देह होती भई है, सो कृपा करिके हमको कोई चीन्हा दीजिये।"

रामजीने रामनाम-अंकित मुद्रिकाको अपनी अँगुलीसे निकालकर श्री हनूमान्जीको प्रदान कर दिया। बेचारे हनूमान्जी रास्तेमें कालनेमिसे कम न परेशान करनेवाले एक बूढ़ेके फेरमें पड़ गये। उसने धीरेसे हनूमान्की अँगूठी उड़ाई और उसे अपने कमण्डलूमें डाल दीनी। हनूमानजीकी अक्ल गुम हो गई। कौन मुख लेके रामके पास लौटें, और कौन

[1] "'सूर्य और चन्द्रमाको विधाताने पूर्वकी तरह ही बनाया'"—यजुर्वेद

नहीं कर सकते। आप इसे भूल न जाइये—अच्छा हुआ जो मनुष्यकी (इच्छा या संकल्प) स्वतंत्रता सुरक्षित रह गई, और यह नियतिके पाशमें पड़ा "मदारी"का भालू नहीं बन गया। नियतिवाद और स्वतंत्रतावादकी समस्या काफी पुरानी है—खासकर भारतमें अदृष्ट (भाग्य)का सहारा छोड़ लोग इसका आसरा लिये बैठे हैं।

हाँ, तो प्रश्न है—जब प्रकृतिमें सर्वत्र कार्य-कारण-नियम व्यापक हुआ है (इस बातसे किसी प्रकार साइंस-संबंधी गवेषणा भी इनकार नहीं), तो मनुष्यकी "स्वतंत्र इच्छा" कहाँ रह सकती है? कार्य-कारण नियम एक अटल नियति (भाग्य) है, जिसके द्वारा विश्वकी प्रत्येक वस्तु (घटना प्रवाह) नियत है, तभी तो हम प्रयोगशालाओं, या वेधशालाओंमें कार्यसे कारण तक पहुँचनेका प्रयत्न करते हैं, अथवा कारणसे कार्यके संभव होनेका पता कर उसके पानेके लिये परिश्रम करते हैं। फिर तो बेचारा मनुष्य हाथ-पैरसे बँधा है, उसकी इच्छा शक्ति भी इसी कार्य-कारण नियमके अधीन है। इसका अर्थ दूसरे शब्दोंमें यह हुआ कि हमारी इच्छा हमारे अन्तस्तम विचार सभी नियति—भाग्यके दास हैं। फिर तो यह भी मानना पड़ेगा कि विश्वके भीतर एक खास प्रयोजन छिपा मालूम होता है, और उसका संचालक 'ईश्वर' यह सब कुछ एक खास प्रयोजनसे करता है। किन्तु अभी इतनी दूर तक जानेकी जरूरत नहीं क्योंकि नियतिवाद दुधारी तलवार है, यदि यह मानवको हाथ-पैर बाँध कर छोड़ देगा, तो ईश्वरकी दशा भी उससे बेहतर न होगी, वह भी नियतिके हाथकी कठपुतली मात्र रह जायेगा।

देखना है—क्या कार्य-कारण नियम सचमुच ही इतना प्रबल है। यदि ऐसा होता तो कार्य-कारणको एक तरहके ही चक्कर काटते देखते, और कारणके बाद कार्य, उस कार्यके कारण बन जानेपर भी वही कार्य फिर वही कारण — इस तरह एक-सी आवृत्ति चलती रहती है। किन्तु इतिहासमें हम कभी इस तरहकी पूर्ण आवृत्ति नहीं देखते, यद्यपि

ऐसा साबित करनेके लिये पूरी कोशिश की जाती है। अंग्रेजी कहावत है—"सूर्य(आकाश)के नीचे कोइ नइ चीज नहीं", जो कि बोलने आने गलत है, और उसकी जगह कहना चाहिये—"आकाशके नीचे कोई चीज पुरानी नहीं है।" हर एक चीज हर क्षण नइ है, इसे हम पहले बतला आये हैं। अंग्रेजीकी कहावतकी भाँति ही भारतकी भी पुरानी गलत कहावत है—"सूर्याचन्द्रमसो धाता यथापूर्वमकल्पयत्"[1], और इसके ऊपर जो तूफाने-बदतमीजी बाँधा गया, वह तो "पत्ता भी हिलता नहीं (बिना उसकी मर्जीके)" जैसी सस्ती हमारी कहावतोंमें देखा जाता है। इसका निदर्शन राम-रावणसे संबंध रखनेवाली हनूमानकी कहानीसे है।

हिंदुओंके परम देवता वानर हनूमान, जो हैसो रामजीकी कृपासे, जगत्-माता जनकनन्दिनी सीताजीके पास जब जा रहे थे, तो उनके मनमें संदेह होता भया—यदि कहीं घट-घटकी बात जाननहारी जनक दुलारी सीता महारानीके मनमें शंका उत्पन्न होती भई कि कौन जाने यह कलमुंहा वानर त्रैलोक्यके विधाता दाशरथी रामके पाससे आया है या और कहींसे, तो कैसे करके विश्वास दिला सकूँगा। निदान, यह सोच श्री हनूमानजी महाराज रामजीसे बोलते भये—"हे त्रिलोकीके त्राता! हमारे मनमें यह सन्देह होती भई है, सो कृपा करिके हमको कोई चीन्हा दीजिये।"

रामजीने रामनाम अंकित मुद्रिकाको अपनी अंगुलीसे निकालकर श्री हनूमानजीको प्रदान कर दिया। बेचारे हनूमानजी रास्तेमें कालनेमिसे कम न परेशान करनेवाले एक बूढ़ेके फेरमें पड़ गये। उसने धीरेसे हनूमानकी अंगूठी उड़ाइ और उसे अपने कमंडलूमें डाल दीनी। हनूमानजीकी अक्ल गुम हो गइ। कौन मुख लेके रामके पास लौटें, और कौन

[1] "सूर्य और चंद्रमाको विधाताने पूर्वकी तरह ही बनाया"—यजुर्वेद

मुख लेके सीतामाताके पास जायें—मु झपर भारी कालिख सी पुतन लगी। बूढ़ेको दया आइ, उसने कमडलु सामने रखकर कहा—इसके भीतरसे अपनी अगूठी निकाल ले। हनूमान्ने झाँककर देखा, तो वहाँ अगूठियों का ठिकाना न था, और सभी एक ही तरहकी, मानो बूढ़ेने अगूठीकी एक टकसार ही खोल रखी हुयी। बूढ़ेनें थोड़ा ही देर बाद नगर जला स्त्री-बच्चोंके करुण क्रदन करानेमें कलियुगके हिटलरको भी मात करने वाले वानर पुगवकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—किस रामकी अगूठी चाहता है रे!"

"दशरथके पुत्र रामकी।"

"ये सभी दशरथके पुत्र थे, जिनकी अंगूठियाँ यहाँ पड़ी हैं।"

"पुराना नाम साकेत और हाल नाम अयोध्याके राजाकी—।"

"ये सभी अयोध्याके राजा थे।"

"रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीता राम" की। बेचारे हनूमान्ने समझा—इस बूढ़ेने भी गीताप्रेस कल्याण बक लिमिटेडमे बाबा राघवदासकी सिफारिशपर कुछ रामनामकी रकम डिपाजिट की होगी, और अब मेरा काम बन जायगा। लेकिन बूढ़ेने हनुमान्की पीठसे हाथ हटा सिरको नीचा रखे कहा—

"यह सभी 'रघुपति सीताराम'की अगूठियाँ हैं।"

"अरे किसे कलियुगके नारद विष्णु दिगंबर तबूरेपर गानेवाले हैं, उस 'रघुपति सीताराम'की।"

"कह दिया यह सभी वही अगूठियाँ हैं, जिन्हें विष्णु दिगबरके 'रघुपति सीताराम' और सेवाग्राममे गाये जानेवाले 'रघुपति सीताराम' नामक व्यक्तियोंने एकबार पहिना था। तू इस चक्करमे मत पड़, तेरे जैसे हनूमानों तथा तेरे मालिक जैसे रामोंको एक नहा छयौ छप्पन गडे मैंने देखे हैं। मैंने ये केश धूपमें नहीं सुखाये हैं। इनमसे एक अगूठी ले, और अपना रास्ता नाप।"

बूढ़ेकी बात सुनकर हनूमान्‌के उत्साहपर हजार घड़ा पानी पड़ गया। वहाँ अशोक वनमें नजरबंद सीताके अकमें अगूठी फेंकी, गई और जगन्माताने जो रोना धोना शुरू किया, उसे जानना चाहते हैं तो नक्टमोचनवाले पुराने बाबाके पास चले जायँ।

खैर! यह तो मालूम हुआ न कि बूढ़े—हिन्दू धर्म—के कहनेके अनुसार "सूर्यके नीचे कोई चीज नई नहीं।"—मालवीयजीने करोड़ों बार ऐसे हिन्दू विश्वविद्यालय बनाये हैं, सर राधाकृष्णन्‌ने अनगिनत बार उनमें सोलहो आना गलत-सलत गीतोपदेश किये हैं, और सबसे बढ़कर तो यह बात है कि राहुलने भी अरबों नीलों खर्बों महा खर्बों बार "वैज्ञानिक भौतिकवाद" ठीक इन्हा पंक्तियों, इन्हीं यथानुपूर्वी, इन्हीं हिन्दीभाषामें ऐसे ही मीठे-कड़वे शब्दोंमें लिखे हैं। हाँ, तब तो यह "वैज्ञानिक भौतिकवाद" उतना ही नित्य अपौरुषेय है, जितना कि जैमिनि शबर-कुमारिल-रामानुज चोखड़ीका अपौरुषेय वेद। मैं तो पैगंबरकी भाँति "लौहे महफूज"पर उत्कीर्ण "वैज्ञानिक भौतिकवाद"का सिर्फ पैगाम भर आपके सामने पहुँचा रहा हूँ, जैसा कि हर कलियुगके इसवी १६४२ ई०में हिटलर-मुसोलिनीके रण-ताडवके समय, मुझसे पहिलेवाले राहुलोंने किया था। यदि आप हनूमान्‌वाले बूढ़े, जैमिनि, कुमारिल के सच्चे अनुयायी हैं, तो ईमान लायेंगे कि यह "वैज्ञानिक भौतिकवाद" प्राचीनता अतएव पवित्रतामें वेद, बाइबल, जिन्दा वस्था, इंजील, कुरान किसीसे कम नहीं है, और यदि इसमें कुछ और भी बुद्धिकी बात पाते हैं, तो "आमके आम और गुठलीके दाम।"

यह बात न समझिये कि यह पाप सिर्फ हिन्दुओंने ही किया है। यूनानी और इस्लामिक दार्शनिकोंमें चोटीके विचारक नित्य ईश्वरको सिद्ध करनेके लिये जगत्‌की नित्यता (कदामत्-आलम) को मानना बहुत जरूरी समझते थे, और अपनी बुद्धि-वादिता साबित करनेके लिये कार्य-कारणके नियमको विश्वम सवदामें अटल मानते थे। "नदिया एक

मुख लेके सीतामाताके पास जायें—मुँहपर भारी कालिख-सी पुतने लगी। बूढ़ेको दया आई, उसने कमंडलु सामने रखकर कहा—इसके भीतरसे अपनी अँगूठी निकाल ले। हनूमान्‌ने झाँककर देखा, तो वहाँ अँगूठियोंका ठिकाना न था, और सभी एक ही तरहकी, मानो चूड़ेने अँगूठीकी एक टकसाल ही खोल रखी हुयी। बूढ़ेने थोड़ी ही देर बाद नगर जला स्त्री-बच्चोंके करुण-क्रंदन करानेमें कलियुगके हिट्लरको भी मात करनेवाले वानर पुंगवकी पीठपर हाथ फेरते हुए कहा—किस रामकी अँगूठी चाहता है रे।"

"दशरथके पुत्र रामकी।"

"ये सभी दशरथके पुत्र थे, जिनकी अँगूठियाँ यहाँ पड़ी हैं।"

"पुराना नाम साकेत और हाल नाम अयोध्याके राजाकी—।"

"ये सभी अयोध्याके राजा थे।"

"रघुपति राघव राजा राम। पतितपावन सीता राम" की। बेचारे हनूमान्‌ने समझा—इस बूढ़ेने भी गीताप्रेस-कल्याण बैंक लिमिटेडमें बाबा राघवदासकी सिफारिशपर कुछ रामनामकी रकम डिपाजिट की होगी, और अब मेरा काम बन जायगा। लेकिन बूढ़ेने हनूमान्‌की पीठसे हाथ हटा सिरको नीचा रखे कहा—

"यह सभी 'रघुपति सीताराम'की अँगूठियाँ हैं।"

"अरे जिसे कलियुगके नारद विष्णु दिगंबर तंबूरेपर गानेवाले हैं, उस 'रघुपति सीताराम'की।"

"कह दिया यह सभी वही अँगूठियाँ हैं, जिन्हें विष्णु दिगंबरके 'रघुपति सीताराम' और सेवाग्राममें गाये जानेवाले 'रघुपति सीताराम' नामक व्यक्तियोंने एकबार पहिना था। तू इस चक्करमें मत पड़, तेरे जैसे हनूमानों तथा तेरे मालिक जैसे रामोंको एक नहीं छसौ-छप्पन गंडे मैंने देखे हैं। मैंने ये केश धूपमें नहीं सुखाये हैं। इनमेंसे एक अँगूठी ले, और अपना रास्ता नाप।"

बूढ़ेकी बात सुनकर हनूमान्के उत्साहपर हजार घड़ा पानी पड़ गया। वहाँ अशोक वनमें नजरबंद सीताके अंकमें अगूठी फेंकी, गई और जगन्माताने जो रोना धोना शुरू किया, उसे जानना चाहते हैं तो सङ्कटमोचनवाले पुराने बाबाके पास चले जायँ।

खैर! यह तो मालूम हुआ न कि बूढ़े—हिन्दू धर्म—के कहनेके अनुसार "सूर्यके नीचे कोई चीज नई नहीं।"—मालवीयजीओंने करोड़ों बार ऐसे हिंदू विश्वविद्यालय बनाये हैं, सर राधाकृष्णन्ने अनगिनत बार उसमें सोलहो आना गलत-सलत गीतोपदेश किये हैं, और सबसे बढ़कर तो यह बात है कि राहुलाने भी अपनी लीला * सर्गों महा सभा बार "वैज्ञानिक भौतिकवाद" ठीक इन्हीं पंक्तियों, इन्हीं वर्णानुपूर्वी, इसी हिंदीभाषामें ऐसे ही मीठे-कड़वे शब्दोंमें लिखे हैं। हाँ, तब तो यह "वैज्ञानिक भौतिकवाद" उतना ही नित्य अपौरुषेय है, जितना कि जैमिनि शबर-कुमारिल-रामानुज चौकड़ीका अपौरुषेय वेद। मैं तो पैगंबरकी भाँति "लौहे महफूज"पर उत्कीर्ण "वैज्ञानिक भौतिकवाद"का सिर्फ पैगाम भर आपके सामने पहुँचा रहा हूँ, जैसा कि हर कलियुगके इसवी १९४२ ई०में हिटलर-मुसोलिनीके रण-तांडवके समय मुझसे पहिलेवाले राहुलोंने किया था। यदि आप हनूमान्वाले बूढ़े, जैमिनि, कुमारिल के सच्चे अनुयायी हैं, तो ईमान लायेंगे कि यह "वैज्ञानिक भौतिकवाद" प्राचीनता अतएव परिपक्वतामें वेद, बाइबल, जिन्दावस्था, इंजील, कुरान किसीसे कम नहीं है, और यदि इसमें कुछ और भी बुद्धिकी बात पाते हैं, तो "आमके आम और गुठलीके दाम।"

यह बात न समझिये कि यह पाप सिर्फ हिंदुओंने ही किया है। यूनानी और इस्लामिक दार्शनिकोंमें चोटीके विचारक नित्य ईश्वरको सिद्ध करनेके लिये जगत्की नित्यता (कदामत्-आलम) को मानना बहुत जरूरी समझते थे, और अपनी बुद्धि-वादिता साबित करनेके लिये कार्य कारणके नियमको निश्चय सवदासे अटल मानते थे। "नदिया एक

घाट उतेरे" की कहावतके अनुसार इस रास्ते भी हम सीधे नियतिवादके उसी दलदलमें पहुँच जायँगे। हाँ, इन लोगोंका दलदलमें पहुँचकर ही नहीं, उठनेके तड़प ही जाने पर अरस्तूने एक तिनकेका सहारा थमाना चाहा—"ईश्वर सामान्यका ज्ञान रखता है, विशेषका नहीं, जातिका ख्याल रखता है व्यक्तिका नहीं।" और इसपर भक्तजनोंमें भगवद्भक्तोंने अरस्तूकी जो गत बनाई—जो मुकरम पजाहत थी, उसे पढ़नेके लिये, उम्मीद है, आप मुझसे आग्रह नहीं करेंगे। भगवद्भक्तोंने कानमें उँगुली डाली, और अरस्तूकी बात माननेकी जगह चुल्लू भर पानीमें डूब मरना पसंद किया।

कैफियत यही है कि यह सभी बातें गलत हैं। इतिहासके पन्नोंको देखनेसे मालूम होता है कि उसका कोई व्यक्ति या घटना वही नहीं होती। कारणको आखिर जिस वक्त हम स्वीकार करते हैं, उसी वक्त कारणकी परिभाषा (परिवर्तन उपस्थित करनेवाला) भी कबूल करते हैं, और परिवर्तनके बाद फिर 'वही है' यदि कहते हैं, तो गोया परिवर्तनसे इन्कार करना चाहते हैं। फिर सिरसे कहिये, कारण ही नहीं है—"न रहे बाँस न बजे बाँसुरी!"

३ वैज्ञानिक नियम

आप फिर सवाल करेंगे—जब हम प्राकृतिक घटना प्रवाह पर गौर करते हैं, अपने आस-पासके वातावरण, परिस्थिति तथा सामाजिक जीवन पर विचार करते हैं, तो इन घटनाओंमें एक खास तौरकी नियमबद्धता देखते हैं—दिन, रात, वर्षा, वसन्त । प्रकृतिके भीतर जो कुछ है—तारा ग्रह उपग्रहसे ले, क्षुद्रतम कण तक, सबमें एक नियमबद्धता पाई जाती है, जिसे कि *प्राकृतिक* नियम कहते हैं। इन्हीं नियमोंका पता लगाना साइंसका काम है। यही कार्य-कारण नियम हैं, जो कि प्रकृति और समाजमें हर जगह कल्पनाके तौर पर नहीं, वस्तु स्थितिके तौरपर

पाया जाता है। साइंस इस कार्य-कारण नियमका पता लगाकर प्राकृतिक घटनाओंसे आकस्मिकतावाले हटा नियम नियमित साबित करता है, और उनपर विश्वास कर साइंसकी देन—रेल, तार, हवाई जहाज—को मनुष्यके उपयोग और उपभोगके लिये बनाता—चलाता है। प्रकृतिकी हरएक चीजमें नियम है। छछून्दर धरतीके भीतर रहती है, जहाँ उसे अच्छी आँखकी उतनी आवश्यकता नहीं, जितनी कि अच्छी श्रवण शक्तिकी, और इसलिये छछून्दर दिव्य श्रोत्र होनेका दावा कर सकती है। इसी तरह बहुत भारी गहराईमें रहनेवाली सामुद्रिक मछलियोंके शरीरपर अपार जल-राशिका जितना भार रहता है, उससे बचनेके लिये उनके शरीरके भीतरसे जितना दबाव बाहरकी ओर पड़ रहा है, वह, इतना अधिक है कि मछली पानीसे निकलते ही भीतरी दबावके कारण फट जाती है। इस तरह हम फिर कहते हैं—प्रकृति और समाज दोनोंमें ऐसा प्राकृतिक नियम मौजूद है, जिसे हम चाहे जानें या न जानें, वह अपना काम किये जाता है, जिसका अर्थ है प्राकृतिक घटनाओंकी भाँति सामाजिक घटनाएँ भी नियमसे बद्ध हैं।

और ! उपरोक्त प्राकृतिक नियम अथवा उनमसे ज्ञात वैज्ञानिक नियम कार्य-कारण नियम हैं। उनका काम है अतीतका अनागत (भविष्य) से सम्बन्ध जोड़ना। इसी अतीत अनागतके अटल सम्बन्धके भरोसे ही किसान कातिकमें घरकी अन्नपूर्णाको खेतकी माटीमें गाड़ आता है, और महान् समाजवादी सोवियत् सरकार पंचवार्षिक योजना बनाती है। यह कहनेका हमारा यह मतलब नहीं कि वैज्ञानिक नियम "जो चाहो सो पूछ लो" वाले जोतिषी बाबाकी अदलीमें हाजिर रहनेके लिये बनाया गया है।

उसका काम आनेवाली घटनाओंका सिर्फ भविष्य कथन ही नहीं है, बल्कि घटनाको वैसा होनेके लिये भौतिक परिस्थितिको भी बनाना है। लेकिन, भौतिक परिस्थितिके बनानेमें कार्य-कारण नियमने जहाँ हाथ

डाला, वहाँ यह नियति(भाग्य)वादके चगुलसे निकला। कारण कहते हैं, परिवर्तन-कारकको परिवर्तन नयेके पैदा होनेको कहते हैं। फिर कार्य-कारणसे नियतिवादका कोई सम्बन्ध न रहा। साथ ही कार्य-कारणके अदृष्ट सम्बन्धोंकी सहायतासे हम किसी कामके करनेमें हाथ लगा सकते हैं, यह भी ठीक है। यह दोनों परस्पर विरोधी बातें कैसे मानी जा सकती हैं—इसका उत्तर इस वक्तके लिये इतना ही है कि प्रकृति विरोध-समागमको प्राणोंसे प्यारा मानती है।

४ मनुष्यकी स्वतन्त्रता

कार्यकारण नियमका नियतिवाद, ईश्वरवादसे कितना सम्बन्ध है, इसका जिक्र हो चुका है। ईश्वरवादियोंमें कुछ भगवान्‌दास तो आत्म-समर्पण करनेके लिये तैयार हैं—ईश्वरके हाथकी कठपुतली बननेको वह दूषण नहीं भूषण मानते हैं—और, दुनियाके दुःख, अन्यायको उसका 'भेद' कहकर भुलावा देनेकी कोशिश करते हैं। यद्यपि इसका उद्देश्य कितनोंके मनमें यही होता है कि वह खुद अपने शासन-क्षेत्रमें उसी तरह के अनुत्तरदायी भगवान् बन सकें, किन्तु, सभी ईश्वरवादी इस तरह अक्लके पीछे लाठी लेकर फिरनेवाले नहीं हैं। यह ईश्वरकी वस्तु ईश्वर को, और जीवकी वस्तु जीवको देनेकी कोशिश करते हैं—अथवा दोनों पर सोचनेके लिये अपने मस्तिष्कमें काफी फासिलेके साथ उन्होंने दो कोठरियां बना रक्खी हैं, और एक समय दोनों बातोंको लेकर वह अपने तथा अपने मित्रोंके दिमागको परेशान नहीं करना चाहते। वह कहते हैं—ईश्वर सबका प्रथम कारण है, साथ ही जीवको कर्म और विचारकी स्वतंत्रता है।

लेकिन, यहाँ यह कहना पड़ेगा कि यह घमघोषणा अधिकतर 'खानेके दाँत और दिखानेके और' की सी है। आपको विचारकी पूरी स्वतंत्रता है, किन्तु जहाँ आपने ईश्वरकी सत्तापर ननुनच करना शुरू

किया कि 'तहूका मान कितना है' इसका पता लग गया। और कर्म स्वातन्त्र्यके बारेमें कुछ कहना तो और मुश्किल है। क्योंकि, वह तो उसीके लिये समर है, जो "जबरा मारे रोने न दे" का नमूना हो। ईश्वरको अन्यायी समझकर लोग उसका छोड़ न बैठें, इसीलिये इस कर्म विचार-स्वातन्त्र्यकी बात कही जाती है, अन्यथा यह तो साफ है कि घास घोड़ेका यारी नहा हो सकती। छोटी चादरम यदि सिर ढाँकते हैं तो पैर नगा, और पैर ढाँकते हैं तो सिर नगा। यदि आप जीवको स्वातन्त्र्य प्रदान करते हैं, तो उतने अशमें ईश्वरकी सर्व शक्तिमत्तामें कमी आती है, यदि ईश्वरको सर्वशक्तिमान् मानते हैं, तो जीव अकिंचन हो जाता है। और ईश्वरकी सवज्ञताकी बात तो अरस्तूके मुँहसे आप सुन चुके हैं। अरस्तू चाहता था कि ईश्वर और जीव दोनोंकी सेवा करे। उसे दो नावोंपर चढनेवालेकी बात नहीं मालूम थी। उसने कहा--ईश्वर सर्वज्ञ है, किन्तु सर्वम *सामान्य* शामिल है, विशेष नहा, जातियाँ शामिल हैं, व्यक्तियाँ नहा, ईश्वर मानवताको जानता है, गाँधी और गाँधिसुतको नहीं, गाय जाति (गोत्व) को जानता है, नये "मुसलमान" गोभक्त श्रीराम शर्माके "विशाल भारत" में छपनेवाली गायोंको नहा।--शर्माजीके साथ हमारी सहानुभूति है, ईश्वरकी इस बेकदरीपर। किन्तु, अरस्तूने यह माननेके लिये अपने तैयार किया था। वह बेचारा जानता था, मेडोंके भडकन्त स्वभावको। निकाल सकन ईश्वरके ज्ञानम अर्थात वस्तुओंके बारेम जा कुछ मौजूद है, वह होकर रहेगा, जैसी मिट्टी जैसी आग बननेवाली है, वैसी बनकर रहेगी, जैसी सींग पैर-नाक कानवाली गाय जाति बननेवाली है, वह ईश्वरके ज्ञानमें पहलेसे मौजूद है, और वह वैसा बनकर रहेगी। इसका अर्थ हुआ ईश्वर परिस्थितिको जैसा होना चाहिये, वैसा ज्ञानमें बना चुका है, और नियत समयपर वह उसी रूपमें आ मौजूद होगी। मनुष्यके स्वातन्त्र्यका कोई मूल्य नहीं यदि वह भी परिस्थितिमें परिवर्तन करनेका

उसी तरह अधिकारी न हो, जिस तरह कि परिस्थिति उसे परिवर्तित करती है। इसके बारेमें जब हम प्रकृति (प्रयोग) से पूछने जाते हैं, तो वह साफ कहती है कि परिस्थिति जिस तरह मनुष्यको बदलती है, उसी तरह मनुष्यने भी परिस्थितिको बदला है और बदल देनेमें लगा हुआ है।

५ तर्कनिर्भर नहीं, वस्तुनिर्भर हेतुवाद

प्रकृतिने जैसे दूसरे क्षेत्रोंमें कोरे तर्कको पछाड़ा है, वैसे ही स्वातंत्र्य और नियमबद्धताके संबंधमें भी वह उसके फंदेमें आनेवाली नहीं है। अपने अन्तस्तलमें अवस्थित एलेक्ट्रनके बारेमें उसने दिखलाया है कि वह कण भी है और तरंग भी। तर्क बहुत चिल्लाता रहा किन्तु प्रकृति इस चिल्लपोंको नहीं सुनती। वह तो हरएक सत्य अन्वेषकको एक बात कहती है—मेरा अनुगमन करो। "राजा करै सो न्याय" प्रकृतिमें जो देखो वही नियम है। यदि वहां नियम और अनियमका मिश्रण दिखाई पड़ता है, तो यही समझिये कि प्रकृतिके नियम वैसे ही हैं। विच्छेद-युक्त प्रवाह भी परस्पर विरोधी-सा मालूम होता है, किन्तु प्रकृतिने इसका अनुमोदन किया है। एक ही एलेक्ट्रन् कण हो और तरंग भी, यह भी परस्पर विरोधी मालूम होता है, किन्तु प्रकृति न सदा केवल सर्वगतिको पसंद करती है, न महज-खुदाओंको। प्रकाश तरंग है, किन्तु क्वन्तम् सिद्धान्त बतलाता है कि उसके वितरणमें सिर्फ अविच्छिन्न प्रवाह ही नहीं पाया जाता, बल्कि बीच-बीचमें रुक-रुककर चलनेवाले फौव्वारेकी भांति प्रकाश बंधे हुए मुट्ठे (=क्वन्तम्) में निकलता है।

इस तरहके नियम अनियम मिश्रित वादको देखकर कुछ बूढ़े लोग बुद्धके बूढ़े शिष्य सुभद्रकी तरह बोल उठते हैं—अच्छा हुआ, बूढ़ा नियमवाद मर गया, अब हम जैसा चाहेंगे वैसा करेंगे। और, यह भी कि चूँकि प्रकृतिमें नियम नहीं है, इसलिए उसके वास्ते एक नियामककी जरूरत है।—वह भगवान् है। सोचिये—यदि प्रकृतिमें नियम है, इसलिए

एक नियामक ईश्वरकी जरूरत है, प्रकृतिमें नियम नहीं है, इसलिए एक नियामककी जरूरत है। इसको कहते हैं—"गाय भी है, बच्छा भी है।"

प्रकृतिके विरोधि-समागमवाले स्वरूपको जब तक आप समझनेकी कोशिश नहीं करेंगे, तब तक बराबर ऐसी गलती करते ही रहेंगे। मनुष्यमें स्वतंत्रता भी है, किन्तु दार्शनिक परमार्थकी नाप-तोलमें नहीं। मनुष्यमें परिस्थिति, आनुवंशिकताकी परतंत्रता भी है, किन्तु दार्शनिक परमार्थके अर्थमें नहीं। मनुष्य प्रकृतिको बदलता है, परिस्थितिको बदलता है। आनुवंशिकतामें बराबर परिवर्तन होता रहता है, और कभी तो ऐसा बड़ी कुदानका परिवर्तन होता है, जिसमें वह वनमानुससे मानुषकी कोटिमें छलाँग मार देता है—इसे ही *जाति परिवर्तन* कहते हैं। हम साइंस-सम्मत भविष्य-कथन भी कर सकते हैं, और भविष्यकी कम योजना बनाकर ठीक फल पर भी पहुँच सकते हैं, किन्तु यहाँ भी प्रकृतिने अपने क्वन्तम्, अपने क्षण तरंग, अपने विच्छेद-युक्त प्रवाहकी नीतिको छोड़ा नहीं है, और गला कसकर दम घोटनेका प्रयत्न नहीं किया है। लंदनमें इस साल कितने आदमी मोटरसे दबकर मरेंगे, इसे वहाँकी कौंटी-कौंसिल (कार्पोरेशन)का दस-पंद्रह सालका हिसाब—मोटरोंकी संख्या, यातायात-संचालनमें सुधारका मृत्यु-संख्यापर प्रभाव आदि—देखकर बतलाया जा सकता है। हाँ, वह संख्या परमार्थ संख्या नहीं होगी, बल्कि व्यवहार या प्रायिक संख्या होगी। व्यवहार संख्या व्यवहार-परिमाण प्रकृति और प्रकृति पुत्रोंके लिए पर्याप्त है। हाँ, दार्शनिकोंके लिए वह पर्याप्त नहीं है, इसलिए उनका दिल छोटा रहा करता है। एक बात और, मृतकोंकी संख्याके बारेमें सच्चा भविष्य-कथन उसे माना जाता है, जो कि घटनाके बहुत नजदीक हो। और साथ ही प्रकृतिने एक और सुभीता दिया है, वह समुदायरूपेण इस संख्याके प्रकाशनको पसंद करती है। अबकी साल भगवानदास मोटरसे दबेंगे या नहीं, इसके लिए उसने ठीक अरस्तूके ईश्वरकी भाँति

अथवा तो आत्मिक स्वर है, जो कि उसके लिए गर्वकी बात है, यद्यपि यही बात ईश्वरके लिये भारी भल्ला धक्का होगा। नास्तिकी भविष्यद्वक्ताओंकी बात छोड़िये, वह तो बेचारे हैं, और भारतीय सिद्धोंको भी छोड़िये, जिनकी महत्ता सनातन धर्म मारवाड़ी सेठके "कल्याण" द्वारा गाई जा रही है, और जब तब हमारे "विशाल भारत" जैसे नागरिक भी उनमें पुण्यके भागी बननेके लिए लालायित हो जाते हैं।

प्रकृति परमार्थ नहीं प्रायिक मूल्यको पसंद करती है। क्वान्टम, सापेक्षता, कण-तरंग, विच्छेद-युक्त प्रवाह और निरवधि-समागमको अहर्निश् देखनेवाला साइंस भी उसीसे सन्तुष्ट है। वह दोनों चरम पक्षको पसन्द नहीं करता—न उसे यन्त्रवाद, अकारण कार्य कारणवाद पसंद है, और नहीं कार्य-कारण नियम मुक्त "परम स्वतंत्र न सिर पर कोई", अथवा आकस्मिक घटनाओंसे बना संसार ही।

परमार्थकी जगह यह "प्रायिक" मूल्यका सिद्धान्त आधुनिक साइंसमें भारी महत्त्व रखता है।

६ प्रायिकता[1]

परमार्थ अचल, नित्य मान, किसी मृत गतिशून्य जगत्‌में मिल सकता है, जिसकी कल्पना दार्शनिक भले ही कर सकें, किन्तु उसका अस्तित्व कहीं नहीं है। परमार्थ मानके बिना परमार्थ मूल्य भी दार्शनिकों की कल्पनामें ही स्थान पा सकता है। सारी दुनियाका व्यवहार—चाहे साधारण किसानको ले लीजिये अथवा इञ्चके लाखवें हिस्से तकको नाप लेनेवाले साइंस वेत्ताओंको ले लीजिये, सबके नाप, सबकी तोलका मूल्य प्रायिक ही हैं, परमार्थ नहीं।

आइये साकार उदाहरण लेकर देखें—

[1] Probability

हम बहुत शुद्ध मापवाली जरीब लेते हैं। जिसमें तापमान आदिका असर अत्यन्त कम पहुँचे, इसके लिये हमारी जरीब काफ़ी है। आज हम खेत नापते हैं, कल और परसों भी। मैं अपने दोस्तोंको भी कहता हूँ, कि आप भी माप लें। हम सभी पूरी सावधानी रखते हैं कि जरीब, निशान, नापी कहीं गलती न होने पाये। किन्तु, जब मैं एक दर्जन दिनोंकी अपनी नापियोंको मिलाता हूँ, तो वहाँ फर्क दिखाई पड़ता है। दोस्तोंकी नापियोंको मिलाता हूँ, तो वहाँ भी अन्तर पड़ता है। हमारे सामने मुश्किल आती है—किसको सच्चा मानें किसको नहीं। कुछ दोस्त दार्शनिकोंकी तरह राय देते हैं, जब आपकी नापियाँ आपसमें नहीं मिलती, न हम सभीकी नापियाँ आपसमें मिलती हैं, तो सब गलत है, कोई परमार्थ सत्य नहीं, इसलिये इन्हें छोड़ दें। हम सभी दार्शनिक नहीं हैं, और फिर मैं क्या इन दार्शनिकोंके कहनेसे अपने खेतको छोड़नेवाला हूँ। हम अपनी नापीके अंकोंको फिर मिलाते हैं, देखते हैं उनमें फर्क जरूर है, किन्तु उनमें कुछ संख्यायें ऐसी हैं, जो कि अकाकी एक खास सीमाके भीतर हैं—जहाँ सबसे कम और सबसे ज्यादावाली संख्या ६७ २४६ और ६७ ३८७ बिस्वासी (धूर) हैं, वहाँ अधिकांश संख्यायें ६७ ३१६२, ६७ ३१६३, ६७ ३१६४ की भाँति कुछ सीमाओंके बीच होती हैं। हजारों नापियोंके करनेपर भी हम देखेंगे कि नापीका परिमाण सभी एक नहीं होता, किन्तु वह एक खास सीमाके भीतर ही ज्यादा मिलता है। जो नापी सबसे ज्यादा इस सीमाके भीतर आती है, हम उसे ही प्रमाण मानते हैं, अथवा ६७ बिस्वासीसे ऊपरके दशमलव अंकको नगण्य समझ छोड़ देते हैं। जो बात यहाँ जमीनकी नापीके लिये है, वही दूसरी बारीक नापियोंके बारेमें भी समझें। नंगी आँखोंसे न दिखलाई देनेवाले अणुओं, परमाणुओंको जब हम अणु मापक यन्त्रसे नापते हैं, तो वहाँ भी यही बात पाते हैं, इसीलिये साइंसमें यह मानी हुई बात है कि परमार्थतया निश्चित मापपर पहुँचना असम्भव है। वाल वियरिट

मशीनमें इस्तेमाल होनेवाला रॉल—गोनिया—की नापी बहुत ठीक होनी चाहिये क्योंकि उसके ऊपर मशीनकी उपयोगितामें कमी वेशी हो सकती है, लेकिन वहां भी परमार्थ मापकी उम्मीद नहीं रखी जाती और १/१०,००० इंचकी कमी वेशीको नहीं लिया जाता, और जितनी चीजें आपसमें इतनेका अन्तर रखती हैं, उन्हें शुद्ध माना जाता है। साइंस सम्बंधी नापवाले औजारोंको और बारीकीमें जाना पड़ता है, किंतु वहां भी परमार्थ नाप नहीं मिला करता, इसलिये १/१,००,००० इंचकी कमी बेशीको नहीं लिया जाता। किसी किसी मशीनमें १/१,००० इंचकी कमी वेशी होनेपर भी उसे शुद्ध माप मानते हैं। लकड़ीकी मशीनोंमें १ ३२ इंचकी कमी-वेशीवाले माप भी शुद्ध हैं।

इतना कहनेसे स्पष्ट है, कि हमारा सारा काम प्रायिक परिमाणको शुद्ध, सत्य मान लेनेपर चल जाता है, उसे छोड़ हम किसी परमार्थके पीछे नहीं दौड़ते फिरते और न दार्शनिक दिमागके सिवाय उसका कहीं पता है। दुनियामें जितने हिसाब होते हैं, सब इसी प्रायिक मापको मानकर चलते हैं। लकड़ी लोहेके कारखानों, मोटर एरोप्लेनकी बनावट, इन्जन तथा हर किस्मके नापनेवाली दूरबीन-मानो मापक आदि यंत्र, प्राणिशास्त्र तथा रसायनशास्त्रमें व्यवहृत होते सूक्ष्म नाप तौलवाले यंत्र तथा हिसाब, कृषिकी योजनाका हिसाब, ग्रहण आदि बतानेवाले ज्योतिष गणित, दीवानी फौजदारी अदालत तथा कानूनमें व्यवहृत होनेवाले परिमाण मेंसे चाहे जिसको ले लीजिये, सभी जगह प्रायिक मापको शुद्ध माना जाता है, और परमार्थ मापको असंभव समझा जाता है। जो बात असंभव है, उसके न जाननेको अज्ञान नहीं कहा जा सकता, इसलिए ज्ञानकी सीमाको विस्तार करते करते हम परमार्थपर नहीं चरम प्रायिकता पर जब पहुँच जाते हैं, तो हम ज्ञानकी चरम सीमापर पहुँच जाते हैं। उससे आगेकी आशा रखना दुराशा मात्र है, और उसका वस्तु जगत्से कोई संबंध नहीं है, इसे हमें हमेशा ध्यानमें रखना होगा।

ख. सत्य असत्यका ज्ञान

१ सत्य

सत्यके बारेमें हलके दिलसे कह दिया जाता कि वह एक, अद्वितीय है। किन्तु क्या यह बात वास्तविकतापर निर्भर है? पूँजीपति और जमीदारके लिये यह परम सत्य है, कि मजदूर और किसान उसके लिये काम करें, और अपने हाथसे उठाकर जो उन्हें दे दे उसीपर सन्तुष्ट रहें। इस मार्गसे हटना नमकहरामी—असत्य मार्गको ग्रहण करना है। तिरुवामलेके ऋषि, पाण्डीचरीके मुनि, के जगतगुरु तथा एनीर्सेंट—'लोगो' उनकी आत्माको शान्ति प्रदान करें—के १२ अर्हत् और अर्हंतियासे लेकर गली-कूचेमें डोलनेवाले छोटे मोटे सिद्ध महात्माओं तक सभी सेठ , महाराजा ,नवाब अमीर इस सत्यकी पुष्टि अपने आशीर्वादसे करते हैं। फिर यह सत्य परम सत्य छोड़ और हो ही कैसे सकता है, क्योंकि ऐसे स्वार्थहीन त्रिकालदर्शी ब्रह्मलीन महापुरुषोंको क्या पड़ी है जो असत्यको आशीर्वाद देते फिरें। यद्यपि यहाँ हम जरूर कहेंगे कि और जगद्गुरु धर्मकीर्तिके शब्दोंमें "निर्लज्जताम जघना (व्यभिचारिणी) को भी मात करनेवाले"[१] कुमारिलका ऐसे सिद्ध-ब्रह्मलीन महात्माओंके बारेमें वह घोषणा करना, सत्यसे बहुत दूर नहीं है।—

"वाणीकी अप्रमाणताके हेतु (राग, द्वेष, मोह) दोष पुरुषोंमें मौजूद रहते हैं।"[२]

भारतके किसानों, मजदूरोंके लिये सत्य यही है, कि जो कमाये उसको पहले खानेका हक उन्हें होना चाहिये , जो नहीं कमाता उसे या तो भूखा मरनेके लिये तैयार रहना चाहिये, अथवा कमानेवालोंके सामने दीन

---

१ "जयेद् धाष्ट्र्येन वधूनीम्"—प्रमाणवार्तिक १।६६७

२ "गिरा मिथ्यात्वहेतूनां दोषाणां पुरुषाश्रयात्।"—वहीं १।२२७

निराकारपर हाथ पसारनेके लिये। ईश्वरेच्छा क्याइ भाग्य भगवान्‌की देनके नाममें यदि टाली न सकती, तो सभी चोरों डकैतोंको जेलोंसे बाहर निकाल देना चाहिये।

सत्य ज्ञान

वैज्ञानिक भौतिकवाद मानता है, कि वास्तविक ज्ञान आदमीकी पहुँचके भीतर है। वास्तविक ज्ञान हम उसे ही मानते हैं, जिसका आधार विद्यमान भौतिक वस्तु है—ऐसी वस्तु जिसकी सत्ता मनुष्यके ज्ञान या कल्पनापर निर्भर नहीं है। सक्रिय, सजीव, वास्तविक मनुष्य और वस्तुगत भौतिक (मानव मस्तिष्क) बाह्य अर्थों (पदार्थों)के संबंध तथा उनकी एक दूसरेपर होनेवाली क्रिया प्रतिक्रियाओंको ज्ञान कहते हैं। जब तक बाह्य पदार्थोंके वस्तु सत्ता होनेका स्वीकार नहीं करते, तब तक उसके संबंध तथा क्रिया प्रतिक्रियाकी संभावना नहीं, फिर ऐसी अवस्थामें जो ज्ञान होगा वह वास्तविक नहीं अवास्तविक होगा, अतएव वह ज्ञान नहीं, अज्ञान मात्र होगा।

फिर दार्शनिक कहेंगे, वस्तु निर्भर ज्ञान कभी पूर्ण नहीं होता, वह हमेशा अपूर्ण रहता है, अपूर्ण ज्ञानको प्रमाण नहीं माना जा सकता; प्रमाण उसी ज्ञानको ही सकता है, जो पूर्ण है। इसका उत्तर यह है कि पूर्ण ज्ञान या आपकी परिभाषामें जिसे *परमार्थ ज्ञान* कहते हैं, उसका कहीं पता नहीं, क्योंकि आपके ही कथनानुसार न वहाँ इंद्रियाँ पहुँच सकती हैं, न बुद्धि। ऐसा परमार्थ ज्ञान सिर्फ श्रद्धावश ही माना जा सकता है। सत्य ज्ञान वही है, जो कि वास्तविक—वस्तु निर्भर—है। सभी सत्य सापेक्ष हैं। साइंस और सभी मानवीय ज्ञान लगातार बदलता रहता है, इसलिये ऐसे सत्यसे बे-सत्यका ही रहना अच्छा है—यह संदेहवाद, निराकारवाद, विज्ञानवाद, शून्यवादकी ओरसे कहा जाता है, और उनमेंसे कितने तो यहाँ तक कह जाते हैं कि 'सत्य'को वस्तु ही नहीं है। ये सभी वाद कभी सत्यको नहीं पा सकते, अथवा हाथमें आये हीरेको परखनेकी उनमें शक्ति

ही नहीं है। यह वैज्ञानिक भौतिकवाद ही है, जो जानता है कि सापेक्षम कैसे परमार्थ और परमार्थमें कैसे सापेक्ष सत्यको पाया जा सकता है। लेनिन्‌का कहना है;—

"आप कहेंगे, सापेक्ष और परमार्थ सत्यका यह (आपका बतलाया) भेद स्पष्ट नहीं है। मैं उत्तर दूँगा कि काफी स्पष्ट न होने पर भी, वह साइंस का मुर्दा, सुन्न, काठमारा मतवाद बननेसे बचा सकता है। लेकिन साथ ही यह इतना स्पष्ट है कि श्रद्धावाद, अज्ञेयवादके किसी छापेको (साइंसके तौर पर) रखने, और उसे ह्यूम तथा कांटके (—शंकराचार्य, विवेकानन्द, रामतीर्थको भी शामिल कर लीजिये) के चेलोंके दार्शनिक विज्ञानवाद तथा बाजीगरी बननेसे रोक सकता है। यहाँ (दोनोंके बीच) सीमा मौजूद है, किन्तु उसे आपने नहीं देखा। और न देखनेके कारण प्रतिगामी दर्शनके कीचड़में गिरनेसे अपनेको नहीं बचा पाया—यह (सीमा) है वैज्ञानिक भौतिकवाद और (शून्यवादी) सापेक्षतावादकी सीमा।"[1]

और एन्गेल्सके शब्दोंमें—

"इस बातसे घबड़ानेकी जरूरत नहीं कि आज जिस ज्ञानकी अवस्थामें हम पहुँचे हैं, वह उससे ज्यादा पूर्णताको नहीं पहुँची है, जो कि इससे पहिले थी। अभी ही बहुतविस्तृत (ज्ञान) सामग्री जमा हो गई है, और कोई आदमी जो किसी एक साइंसमें विशेषज्ञ बनना चाहता है, उसके लिये इनका अध्ययन बहुत ही श्रमसाध्य कार्य है।"

हर शास्त्र शाखामें मनुष्यका ज्ञान कितना बढ़ चुका है, और हर रोज कितनी तेजीसे बढ़ता जा रहा है, यह हमारे भारी सन्तोषकी बात है। चूँकि ज्ञान पूर्ण नहीं है, उसमें वृद्धिकी बराबर गुंजाइश है, इसलिये उसकी वृद्धिको हम जहाँ छोड़ रहे हैं, हमारी अगली पीढ़ी उसे वहाँसे आगे ले जायेगी। यह देखकर हाथ पर सिर धरकर रोना बुद्धिमानोंका काम

[1] Materialism p 107

रहा है। ज्ञानमें यदि पूर्णता—जिससे आगे और कोई वृद्धि नहीं—हो जाय, तो विश्वकी गति बेकार [redacted] जायगी, गुणात्मक-परिवर्तनमें नये-नये गुणों, नई नई वस्तुओंका उत्पन्न होना बन्द हो जायगा, और प्रगतिशील, सजीव, नव-नव विकसित विश्वकी जगह पर अचल, मुर्दा, फॉसील-सा रह जायगा।

ज्ञानकी प्रामाणिकता—बदलते रहते ज्ञानकी प्रामाणिकता क्या होगी, यह शंका फजूल है। सारे विश्व ब्रह्मांडमें बदलती चीजों ही नाग काम कर रहा है। यदि आप बढ़नेवाले न होते तो माता या पिताके रज अंड तथा वीर्य-कीट ही रह जाते। किसी भी अवस्थामें इस परिवर्तन, इस वृद्धिको रोककर देखिये। वीर्यकीट सिर्फ [illegible] इंच बड़ा होता है, माताका रज अंड [illegible] इंच, दोनों मिलनेपर भी मानव प्राणी सिर्फ [illegible] इंच का होगा, वजन कितना होगा, यह इससे जानिये—सप्ताह भरका मानव-गर्भ सिर्फ [illegible] रत्तीका होता है। छै मासका १ सेरके करीब। पैदा होनेपर स्वस्थ बच्चा २० इंच (डेढ़ हाथसे थोड़ा ऊपर) बड़ा और ३॥ सेर भारी होता है, जो बढ़ते-बढ़ते पंद्रह वर्षकी आयुमें ६२½ इंच (३॥ हाथ) लंबा और १ मन ८½ सेर भारी हो जाता है। आप सोच सकते हैं, जिस तरह शरीरकी वृद्धि रोकनेकी कामना शुभ कामना नहीं कही जा सकती, वैसे ही ज्ञानकी वृद्धिको रोकनेकी कामना भी वही कर सकते हैं, जिन्हें मानव जातिका हितैषी नहीं कहा जा सकता। ज्ञानको दिनपर दिन बढ़ने दो, अगली पीढ़ीको पिछली पीढ़ी द्वारा खूब पराजित होने दो—"पुत्रादिच्छेत् पराजयम्।"

"सोचनेकी शक्ति रखनेवाले कितने ही अत्यन्त अपूर्ण मनुष्यों द्वारा विचारकी पूर्णता प्राप्त होती है। असीम सत्यको द्वारा रखनेवाला ज्ञान कितनी ही सापेक्ष भूलें करके प्राप्त होता है।"[1]

[1] Materialism (by Lenin)

"मनुष्यका ज्ञान (अपनी वृद्धिमें) सरल रेखाका अनुगमन नहीं करता, बल्कि वह एक ऐसी वक्र-रेखाका अनुसरण करता है जो कि सदा वृत्तके बननेकी कोशिशमें रहती है—अर्थात् घूमघुमौआ चक्करमें। इस वक्र रेखा (घूमघुमौने चक्कर)की हर एक टुकड़ी—हर एक खंड-को (एक छोरसे) एक स्वतंत्र, पूर्ण सरल-रेखामें बदला जा सकता है, जो कि सावधान न रहनेपर 'दलदल' (शासक वर्गके वर्गस्वार्थ द्वारा दृढ़ बनाये भ्रमवाद में) गिरा देता है[1]।"

इसलिये सापेक्ष सत्यसे बाहर जाना, आँख बंदकर जंगलमें टहलने जाना है। वस्तुतः जो कुछ परमार्थ सत्य है, वह सापेक्षके भीतर ही है।

३ प्रयोग और सिद्धान्तकी एकता

दूसरे दर्शनों और वैज्ञानिक भौतिकवाद (साइंसके अधिनायकत्व) में सबसे बड़ा अन्तर यह है कि वैज्ञानिक भौतिकवाद एकमात्र प्रयोगको ही सत्यकी कसौटी मानता है, उसके लिये कोई ज्ञान तब तक सत्य नहीं है, जब तक कि वह प्रयोगकी कसौटीपर पक्का नहीं उतरता। इसीलिये स्तालिनका कहना—"सिद्धान्त प्रयोगके बिना बाँझ है।" भगवद्‌गीताको किसी समय कर्मयोगकी कुंजी माना जाता था। तिलकने जेलमें बंद रहते वक्त गीतापर अपनी प्रसिद्ध पुस्तकको इसी मतलबसे लिखा था।—कितना ही आगे बढ़ने पर भी तिलक योगसे आगे नहीं जा सके। और वस्तुतः किसीकी तारीफसे नहीं बल्कि वृक्ष अपने फलसे पहिचाना जाता है। गीताने कर्म-युद्धके लिये तो लोगोंको उतना तैयार नहीं किया, जितना कि उस युद्धसे पलायनके लिये। वैज्ञानिक भौतिकवाद वास्तविक अर्थमें कर्मका दर्शन है। "दार्शनिकोंने सिर्फ जगत्‌की व्याख्याको परिवर्तित किया, किंतु हमारा काम है खुद जगत्‌को

[1] Lenin On Dialectics

परिवर्तित करना।"— मार्क्सने इस मतमें वैज्ञानिक भौतिकवादके मगज़को निकाल कर रख दिया है।

मार्क्सने वैज्ञानिक भौतिकवादको कैसी अवस्थामें विकसित किया, उससे साफ हो जाता है कि मार्क्सवाद और प्रयोगवाद द्वारा ज्यादा करीब है। कितने ही लोगोंने यह धारणा बना रखा है, कि मार्क्स पुस्तकोंमें डूबा रहता था, इसीलिये उसके विचार पुस्तकीय कोरी बातें होंगी। इसमें शक नहीं मार्क्स लन्दनमें ब्रिटिश म्यूजियमके पुस्तकालयमें भारी समय देता था, उसने पहले पेरिस विब्लियोथिक नासिनल, तथा बर्लिन, हाइडेलबर्ग, और दूसरे विश्वविद्यालयोंके पुस्तकालयोंमें भी यह पुस्तकाध्ययन जारी रखा था। किन्तु, यह समझना कि मार्क्स अपने क्रान्तिकारी सिद्धान्तपर सिर्फ पुस्तकोंको पढ़कर पहुँच गया, बिल्कुल गलत ख्याल है। मार्क्सवाद न १९१७ ई० की रूसी क्रान्तिमें पैदा हुआ, और न ही १८६७ ई०में कापिटलके लिखे जानेके बाद उसका जन्म १८४८ ई० से पहिले हुआ था। कापिटलके रूपमें मार्क्सवादका जन्म नहीं हुआ, बल्कि उसके रूपमें यह प्रौढ़ताको प्राप्त हुआ। मार्क्सवाद (वैज्ञानिक भौतिकवाद) का जन्म उन संघर्षोंमें हुआ जिनमें मार्क्स और एंगेल्सने जवाबदेहीके साथ स्वयं क्रियात्मक रूपसे भाग लिया। १८४८ ई०की फ्रेंच-क्रान्तिमें, पहिलेके क्रान्तिकारी आन्दोलनोंमें ही नहीं बल्कि खुद उस क्रान्तिमें, उन्होंने भाग लिया था। एंगेल्सने जर्मनीके मजदूरोंके सशस्त्र विद्रोहमें क्रान्तिके हथियारबन्द सिपाहीके तौरपर भाग लिया था, और मार्क्सने उसके गढ़ कोलोनमें रहते अखबार-संचालनमें ऐसा जबर्दस्त भाग लिया, कि गवर्नमेंटने दो बार उनपर फाँसीकी सजावाले देशद्रोहका मुकदमा चलाया। यूरोपमें सबसे पहले फैलनेवाले मजदूर-विद्रोहका आरंभ मार्क्स एंगेल्सने अपनी "कम्युनिस्ट घोषणा"से किया था, और इस विद्रोहकी समाप्तिका अन्त मार्क्स सम्पादित जर्मन दैनिकपत्र "नोये राइनिश् जाइटुङ्" (हामबुर्ग) के अन्तिम अंकके साथ १८५०में हुआ। १८५०-६४ ई० का समय है, जिसका बहुत

सा हिस्सा मार्क्सने बृटिश म्यूजियमकी पुस्तकोंके अवलोकनमें लगाया। किन्तु यह वह समय था, जब कि युरोपमें किसी जगह खुले तौरसे क्रान्तिकारी आन्दोलन चलाया नहा जा सकता था, और मार्क्सको वहाँ पैर रखनेकी जगह नहीं मिल रही थी। इन चौदह वर्षोंमें भी मार्क्स सिर्फ बृटिश म्यूजियमकी पुरानी जिल्दोंकी धूल ही नहीं चाटता रहा, बल्कि उस समय भी उसकी कलम क्रान्तिकारी शक्तिको अधिक दृढ और बहु देशव्यापी बनानेमें लगी हुई थी। अमेरिकन दैनिकपत्र "न्युयार्क ट्रिब्यून"में भारतकी राजनीतिक-सामाजिक अवस्था तथा क्रान्तिकी सम्भावनाके बारेमें मार्क्सने जो लेख लिखे थे, वे इसी समय (१८५२-५३ ई०)में लिखे गये थे।

१८६४ ई०के बाद हम मार्क्सको फिर संघर्ष-क्षेत्रमें देखते हैं, और तबसे १८७२ ई० तक वह अन्तर्राष्ट्रीय मजदूर आन्दोलनका नेतृत्व करता है। उसके बाद अपने जीवनके अन्तिम समय (१८८३ ई०) तक मार्क्स फिर कलमके कामम लगता है, लेकिन साथ ही उसकी नजर उस समयके मजदूर आन्दोलनसे नहीं हटती और भविष्यकी मजदूर-क्रांति तथा मजदूर शासनकी गहरी नाव रखना तो उसका एकमात्र काम हो जाता है।

इतना कहनेसे साफ है, कि वैज्ञानिक भौतिकवादका रास्ता गीता या वेदान्तके पलायनवादसे बिल्कुल अलग है। वह जगत्को छोड़ भागना नहीं चाहता, बल्कि जगत्को बदलना चाहता है। जगत्के बदलनेमें कर्म—संघर्ष—की जरूरत है, उसमें मुँदी आँखों नहीं, खुली आँखोंकी जरूरत है।

वैज्ञानिक भौतिकवाद किन वाद-प्रतिवादोंका संवाद है, यदि इस बात पर हम ध्यान देंगे, तो मालूम होगा कि वह क्यों इस प्रयोग और सिद्धान्तके समन्वयको चाहता है। वैज्ञानिक भौतिकवादमें दो अंश हैं एक द्वंद्ववाद, दूसरा भौतिकवाद। द्वंद्ववाद हेगेलके विज्ञानवादमें था, और भौतिकवाद सत्रहवीं अठारहवीं सदीके यांत्रिक भौतिकवादमें। यांत्रिक भौतिकवाद भौतिकवादकी भौतिकता—वास्तविकताको स्वीकार करता था, यह उसका मजबूत पहलू था। किन्तु उसमें किसी गुणात्मक-

परिवर्तन, किसी विच्छेदयुक्त प्रवाहकी आशा न थी, इसलिये वह विश्व की पूरी व्याख्या नहीं कर सकता था, न विच्छेदयुक्त-परिवर्तन—क्रान्ति—के लिये वह चतुर पथ प्रदर्शक हो सकता था। इस भौतिकवादसे बिल्कुल उलटा हेगेल्का द्वन्द्वात्मक विज्ञानवाद बर्कले और शंकर जैसा ठूँठा, कूटस्थ, एकरस विज्ञानवाद (विज्ञान=ब्रह्म सत्य और सब झूठा) नहीं था। हेगेल् उसे क्षण-क्षण परिवर्तनशील, वृद्धिपरायण मानता था। विश्व उसके लिये हर क्षण "है" नहीं, "हो रहा है" है। यह हेगेल्के द्वन्द्वात्मक विज्ञानवादका मजबूत पहलू था। किन्तु, दूसरी ओर वह विश्वकी भौतिक सत्ता—वास्तविकता—को इन्कार कर अपनेको अवस्तुवादी साबित करता था। ऐसा वाद न वस्तु-सत् सिद्ध हो सकता है, न जीवनके किसी काममें आ सकता है। मार्क्स एंगेल्सने अपने वैज्ञानिक भौतिकवादमें पुराने भौतिकवादकी भौतिकता और हेगेल्के द्वन्द्वात्मक विज्ञानवादकी द्वन्द्वात्मकताको लेकर अपने दर्शनका विकास किया।

वैज्ञानिक भौतिकवादके अनुसार, विज्ञानवादी गलत रास्ते पर है, जब कि वह समझता है कि सत्यको हम सिर्फ अपने मस्तिष्क—मन—के भानमतीके पिटारेसे निकालकर रख सकते हैं। भौतिकवादी भी गलती करता है, यदि वह इस बातको नहीं समझता, कि सत्यको हम अपने मस्तिष्ककी सहायतासे प्राप्त करते हैं। मस्तिष्क हमें सिद्धान्त तक पहुँचाता है, भौतिकता हमें प्रयोग पर नजर रखनेके लिये मजबूर करती है। यही नहीं, जिस तरह भौतिकता मस्तिष्ककी जननी है, उसी तरह सिद्धान्तकी प्रसवभूमि प्रयोग है। बल्कि यह कहना चाहिये कि सिद्धान्त प्रयोगका सार-संग्रह है। आखिर सिद्धान्त हैं क्या? अनेक व्यक्तियों, अनेक पीढ़ियोंके लाखों प्रयोगों-तजर्बोंका ही परिणाम। इसीलिये सिद्धान्त को अपने जीवनदायक प्रयोगके विरुद्ध जाना नहीं चाहिये। प्रयोगसे विरुद्ध सिद्धान्त सिद्ध अन्त (सिद्ध परिणाम) ही नहीं रह जाता। बिना पिताके पुत्रकी भांति उसे पहिले अपने पिताको ढूँढ़नेकी जरूरत पड़ेगी।

इसलिये जिस वक्त हम यह कहते हैं, कि सिद्धान्त और वादकी एकता आवश्यक है, उस वक्त यह भी ख्याल रखना चाहिये कि प्रयोग मूल है, सिद्धान्त उसकी शाखा है।

वैज्ञानिक भौतिकवादी दृष्टिसे प्रयोग और सिद्धान्तको किस तरह लेना चाहिये, इसे हमने बतलाया, यहाँ यह भी देखना है कि प्रयोग और सिद्धान्तके आपसी सिद्धान्तको दूसरे किस तरह मानते हैं।

१ कुछ लोग कहते हैं—प्रयोग और सिद्धान्तमें कोई समन्वय नहीं हो सकता। प्रयोग इस गंदी, स्थूल, असत्य मायावाली दुनियाकी चीज है, सिद्धान्त चिर सत्य शिव सुन्दर है, दोनोंका क्या वास्ता! ये आकाशचारी हारिल हैं, जो "अज्ञेय"के हारिलकी तरह भी हार माननेके लिये तैयार नहीं, और उन्होंने सदाके लिये भू परित्यागकी कसम खा रखी है।—हाँ, लेकिन मानसिक तौर ही से, इसकी परीक्षा लेनी हो, तो ऐसे किसी हारिल—हंस—परमहंस—तत्त्वज्ञानी—ब्रह्मलीन—महात्मा—को एक रसगुल्लेके बाद कीनेसे लिपटे दूसरे रसगुल्लेको दिखलाकर देख लीजिये। सिद्धान्त—दर्शन—ज्ञान ही सब कुछ है, उससे अतिरिक्त कुछ है ही नहीं, इस तरहके विचार रखनेवाले लोग, मकड़ीकी भाँति अपने भीतरसे (किन्तु अपने भीतरको भी स्वीकार करना तो उनके लिये मुश्किल है, इसलिये शून्यसे) सिद्धान्तको निकालते हैं।

२ दूसरे लोग हैं, जो प्रयोगसे एकदम इन्कार तो नहीं करते, किन्तु वह सिद्धान्तको ही प्रधान मानते हैं। उनकी दृष्टि (=दर्शन)में सिद्धान्त प्रयोगकी सन्तान नहीं है, वह एक स्वयंभू तत्त्व है। इनके लिये साइंस का सारा परिश्रम, सारी सफलता कोई महत्त्व नहीं रखती, क्योंकि वह स्वयंभू होनेका दावा नहीं कर सकती। ऐसे मतवालोंके लिये प्रयोगका आश्रित होना निम्न कोटिके लोगोंके लिये छाजता है, सिद्ध, महर्षि इससे ऊपर हैं। गाँधी जैसे विश्वके प्रति अपार करुणा दिखलानेवाले,

गया आत्माकी आवाज सुननेके लिये कान लगाये रहनेवाले महात्मा इसी कोटिमें हैं।

३ तीसरी तरहके लोग प्रयोग और सिद्धान्त किसीको प्रधानता नहीं देते। वह तटस्थ, न्यायवादी बनना चाहते हैं।—भौतिक विश्व असत्य है, इसलिये प्रयोगको प्रधानता कैसे दी जा सकती है! सिद्धान्त और प्रयोग दोनों ही कल्पना हैं, इसलिये उनमें किसीको प्रधानता नहीं देनी चाहिये।

इसमें शक नहीं, इन तीनों तरहके विचार-धाराओंमें देखनेमें अन्तर है, किन्तु वस्तु-सत्की दृष्टिसे देखनेपर मालूम होगा, कि सबका उद्देश्य है भौतिकता—वास्तविकता—का विरोध करना, और मनुष्यको जगत्-परिवर्तनके कामसे हटाकर ज्ञानकी ख्याली व्यायाममें लगाना। इन सिद्धान्तोंमें प्रभु, शोषक-वर्ग क्यों इतना आनंद अनुभव करता है, इसके बारेमें ज्यादा कहनेकी जरूरत नहीं,—"जान न जाइ निशाचर माया" कहना काफी नहीं है, क्योंकि निशाचर-मायाका समझना उतना मुश्किल नहीं है, यदि आपके पास आँख-कान मौजूद हों।

सिद्धान्तकी कसौटी प्रयोग है, इसे सारे साइंस मानते हैं। वस्तुतः साइंस और अ-साइंसका भेद ही इसीमें है कि साइंस किसी वक्त भी अपने सिद्धान्तको प्रयोगकी कसौटी पर कसनेमें गफलत नहीं करता। प्रयोगके दौरानमें साइंसवेत्ता एक सिद्धान्तकी झलक पाता है, किन्तु उसे 'इल्हाम", "दैवी वाक्" "आकाश-वाणी" "आत्माकी आवाज" कह कर अपनेको और दुनियाको वह धोखा देना नहीं चाहता। वह प्रयोगशालामें उसकी बड़ी बारीकीके साथ और अनेक बार परीक्षा करता है। सभी परीक्षाओंमें एक-सा ठीक उतरनेके बाद वह या तो उसे इस तरह सप्रमाण स-आकार लेखके रूपमें लिखता है, जिसमें दूसरे भी प्रयोग करके उसकी सत्यताको जान सकें, अथवा अपने सिद्धान्तकी सच्चाईको रेडियो, हवाई जहाज, दूरदर्शनके यंत्रोंके साकार रूपमें उपस्थित करता है।

वस्तुतः, प्रयोग और सिद्धान्तके समन्वयके बिना कोई साइस-सम्बन्धी आविष्कार नहीं हो सकता। साधारण प्रयोगोंसे सीखते तथा मानसिक तौरसे निरूपित करते भारतीय विद्वान् ईसाकी पाँचवीं छठी सदीमें वहाँ पहुँच गये थे, जहाँ आधुनिक-वैज्ञानिक-युग आरंभ होनेकी काफी कारण सामग्री मौजूद थी, किन्तु भारतीयोंने अलबरूनी-द्वारा उद्धृत आर्यभट्ट (४७६ ई०) के निम्न सूत्रको भुला दिया और वह पिछड़ गये—

"सूर्यकी किरणें जो कुछ प्रकाशित करती हैं, वही हमारे लिये पर्याप्त है। उनसे परे जो कुछ है, और वह अनन्त दूरतक फैला हो सकता है, लेकिन उसका हम प्रयोग नहीं कर सकते। जहाँ सूर्यकी किरणें नहीं पहुँचती, वहाँ इन्द्रियोंकी गति नहीं, और जहाँ इन्द्रियोंकी गति नहीं उसे हम जान नहीं सकते[1]।"

साइसके क्षेत्रमें तो इस तरह प्रयोगकी प्रधानता न समझ भारतीय आगे ही नहीं बढ़ सके, बल्कि आर्यभट्टके युक्ति प्रमाण द्वारा सिद्ध भू-भ्रमणको न पतिया फिर वही पुराना चर्खा—तालमीके भूकेन्द्रक सौरमण्डलके विश्वासको—चलाते रहे। दर्शन और मनोविज्ञानके क्षेत्रमें धर्मकीर्ति (६०० ई०)के बाद कोई प्रगति नहीं हुई। धर्मकीर्तिके तीक्ष्ण विश्लेषण शक्तिका रहस्य भी उसकी प्रयोगवादितामें है।—यद्यपि धर्मकीर्ति योगाचारके विज्ञानवादके सिद्धान्तको पुष्ट करनेकी भी कोशिश करता है, किन्तु वह बेगारकी टाली बात मालूम होती है, क्योंकि वैसा होनेपर "अर्थ-क्रियामें जो समर्थ है वही परमार्थ सत् है[2]" इस तरह सक्रियताको परम सत्यका मुख्य लक्षण न बनाता। सिद्धि, समाधि, परचित्त ज्ञानकी बातें पिछले महायुद्धके बादसे भारतमें फिर उसी तरह जोर पकड़ने लगी है, जिस तरह यूरोपमें इसी समय प्रेत विद्या, किन्तु भारतीय सिद्ध-योगी लोग

[1] "अल् हिन्द"

[2] "अर्थक्रियासमर्थं यत् तदत्र परमार्थसत्"—प्रमाणवार्तिक

इन बातोंका अपनी कसौटी, या कुछ मत कि जामा ही दिखलाना चाहते हैं। जब तक उन बातोंका उस तरह प्रयोगकी कसौटीपर कसा नहीं गया, तब तक उनकी भौतिक व्याख्या नहीं हो पाती, तब तक उनका बहुत एक चतुर बाजीगरके 'आर्ट' से बढ़कर नहीं है। किन्तु जो सिद्धान्त प्रयोग सिद्ध हैं, उनसे वैज्ञानिक भौतिकवादी इन्कार कैसे कर सकते हैं? वैज्ञानिक भौतिकवादी यह भी मानते हैं, कि हमारे ज्ञानकी सीमा जो आज है, भी कल बाद इससे ज्यादा बढ़ी रहेगी, हजार वर्ष बादके ज्ञानके सामने आजका ज्ञान बहुत पुराना मालूम होगा। मस्तिष्कके अंदर निहित शक्तियोंकी साइंसके तरीके पर खास तौरसे इस शताब्दीमें मानसिक के अनुसार उपस्थित करनेवाले प्रयोगोंसे शुरू हुए हैं। किन्तु इनका इस्तेमाल यदि कर करके पीरी-मुरीदी और भी यदि आप सिद्धान्तोंको बनाना चाहें, तो यह उनकी स्वार्थपरता होगी। यदि आप समझते हैं, कि आप या आपके मित्र पास कोई ऐसी अद्भुत मनोवैज्ञानिक शक्ति है, तो उसकी परीक्षा प्रयोगशालाओंमें हर तरहके मिथ्या विश्वास रहित साइंस-वेत्ताओंके सामने कराइये, एक्सरे, फोटो, कैमरा, नाप-तोल किसी कलसे पड़तलाइये यहाँ—साँचको आँच क्या? यह कह कर आप पैसोंकी कोशिश मत कीजिये, कि हम प्रसिद्धि नहीं चाहते। आपके चेले-चाँटे कान-कान जिस तरहका प्रोपेगंडा आपके नाम कर रहे हैं, वह मानवताके लिये अत्यन्त अहित है। इसलिये, यदि आप इस शक्तिको "रोजगार"का एक जरिया नहीं बनाना चाहते हैं, तो अच्छा है, आप या तो उसकी गलती समझें अथवा उसे साइंस सम्मत एक तत्त्व—सिद्धान्त—साबित करें।

(१) करनी और कथनी—सिद्धान्त और प्रयोगकी एकताका मतलब यह भी है कि आपकी कथनी जैसी है, यदि करनी वैसी नहीं है, तो वह कौड़ीकी चीज है। यदि ब्रह्मज्ञानी वेदान्ती एक शिवालय बनाते हैं, तो इसका मतलब है कि सर्वव्यापी, सर्वान्तर्यामी, ब्रह्मके स्वरूप पर उनका विश्वास नहीं है। और फिर जब उस शिवालेके ऊपर बिजली

गिरनेसे बचानेके लिये लोहा गाड़ते हैं, तो इसका अभिप्राय यही है कि यदि मनुष्यने पहिलेसे सावधानी नहीं की, तो शिवके शासनमें रहनेवाली बिजली अपने मालिकके ही घरको नष्ट कर देगी। फिर तो बल्कसे ज्यादा सर्वशक्तिमान् आपका साइंस है, जो कि बिजलीको ऐसी नाजायज हरकत से रोक सकता है। यहाँ करनी साफ कथनीके विरुद्ध जाती है।

यूरोप—विशेषकर अमेरिका—में कुछ दार्शनिक ऐसे हुए हैं, जो अपनेको उपयोगितावादी कहते हैं, और प्रयोगको भी मानते हैं। वस्तुतः साइंसके युगमें—जब कि सभी जगह प्रयोगों और प्रयोगशालाओंकी जयदुन्दुभी बज रही है, यह हो नहीं सकता था कि दार्शनिक-क्षेत्रमें उसकी गूँज न पहुँचती। किन्तु इन उपयोगितावादी दार्शनिकोंकी यही मिसाल है—जो चमकता है, सभी सोना नहीं होता। उनका सिद्धान्त है "वह सिद्धान्त या विश्वास ठीक है, जो काम करनेवाला (उपयोगी) होता है।" किन्तु इसकी मददसे धर्म, और भूत प्रेत, जादू मंतरको भी आप ठीक साबित कर सकते हैं। कुमारी मरियम् माईके चमत्कारोंके बहुत-से साकार उदाहरण मार्सेइ (फ्रान्स) के पहाड़ीवाले गिर्जेमें रक्खे हुए हैं—लगड़े बैसाखी लेकर आये थे, माईकी कृपासे चंगे हो गये, उनकी बैसाखी टँगी हुई है, समुद्रमें जहाज डूब रहा था, माईके भक्तोंने "त्राहि माई! त्राहि माई!" की, जहाज सही-सलामत किनारे पहुँच गया, उन्होंने कृतज्ञतासूचक लेख माईके मकान (गिर्जे) में खुदवा दिया आदि आदि। उपयोगितावादी दार्शनिक कहते हैं, चूँकि इससे आदमीके निर्बल हृदयको दृढ़ता मिलती है—यह ठीक काम करता है—इसलिये यह विश्वास (सिद्धान्त) ठीक है। उनके सिद्धान्तके अनुसार यदि चोरका सिद्धान्त ठीकसे काम करता है, तो वह भी ठीक है—और इसीलिये तो उनके दिलमें पूँजीवादी लूटके लिये "साधु-साधु" के शब्द हैं। इन "प्रयोगवादियों" के दर्शनके दो मुख्य उद्देश्य हैं, एक तो प्रचलित वैयक्तिक या सामाजिक आचार नियमोंके दोषोंकी ओरसे आँख मूँदकर

दर्शन, युक्ति, प्रयोगके नामपर उनका समर्थन करना, और इस प्रकार अपनेको धर्माचार्यों तथा शोषकोंका दुमछल्ला बनाना, दूसरे पद बरता या प्रयोगका अर्थ करते हैं—जिसे आप अपनी गुर्राहट धरने लग पड़े। "उपयोगितावादी" प्रत्येक आदमीके लिये "सत्य", "शिव", "बाल निरता" का अलग अलग मानता है, यह उपयोगितावाद प्रयोगवादके नामपर अराजक विचारवादको छोड़कर और क्या है? यह बात अफलातूँ जैसे घोर विज्ञानवादीके वादसे परे नहीं रहता। उसने भी अपने प्रजातन्त्र[1] में मनुष्यकी मनमानी तीन जातियाँ बनाई थीं। उनके बारेमें जब यह सवाल हुआ, कि लोग क्यों किसीको दार्शनिक समझ उसके समाजका हुक्म तो मान लेंगे। अफलातूँने कहा—उन्हें बतलाना होगा कि मनुष्योंमेंसे कुछ सोनेकी धातुके बने हैं, कुछ पीतलके, कुछ लोहेके। लेकिन सब तो मिट्टीके बने हैं, फिर उन्हें सोनेका माननेवाला कौन आँखोंका अन्धा मिलेगा?—बचपनसे ही ऐसा प्रोपेगेंडा करते रहनेसे लोग इसे मान लेंगे। यह मानकर जब उसके अनुसार अफलातूँका प्रजातन्त्र काम करने लग पड़ेगा, तो सोने-पीतलके आदमीवाला सिद्धान्त सच्चा साबित हो जायगा। निश्चय इस तरहके "प्रयोगवाद" को भारतमें तो बहुत जोरसे बरता गया है। अफलातूँके सोने-पीतलवाले आदमियोंका प्रजातन्त्र तो धरतीपर कभी कायम नहीं हुआ, किन्तु हिन्दुओंके ब्रह्माके मुँह-बाहु-उरु-पैरसे पैदा होनेवाली वर्ण-व्यवस्था या "मरण-व्यवस्था" का राज्य तो अब भी हमारे सिरपर सवार है। यह व्यवस्था (सिद्धान्त) काम कर रही है, इसमें सन्देह करनेकी गुंजाइश कहाँसे हो सकती है, जब कि आप हर स्टेशनपर हिन्दू-पानी, मुसलमान-पानी देखते, हर ब्याह-शादीमें श्रीवास्तव-वरके-कन्या श्रीवास्तव-वरके-वरको ठीक किये जाते पाते हैं। चूँकि यह "मरण-व्यवस्था" साढ़े तीन हजार वर्षसे जोर शोरसे काम कर रही है, इसलिये यह गोलमाल पुराना नहीं, बल्कि

[1] देखो "मानव समाज" पृष्ठ ११७

[illegible] हुआ [illegible] है। इसकी और [illegible] [illegible] चाहते हैं, [illegible] [illegible]के पास [illegible] [illegible] "[illegible]" ने आप [illegible] [illegible] की है, उनसे [illegible] पूछ लें।

(३) गाँधीवादी 'प्रयोग' – हाँ, [illegible] "प्रयोगवादी" भारतमें [illegible] और [illegible]—[illegible]। यहाँ "[illegible] प्रयोग"-का [illegible] हुआ ऐसा भारी [illegible] जाती। [illegible] उपवासकी खबर [illegible] [illegible] [illegible] दौड़ जाती है, [illegible] [illegible] नेता [illegible] घेरते हैं, और कभी कभी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जाता है (यदि वहाँ एक छोटे [illegible] वाला भी नहीं [illegible] तो उसकी परवाह नहीं) इसलिये उपवास महासिद्धान्त है। और [illegible] [illegible] !— उसके महासिद्धान्त होनेमें किसको सन्देह हो सकता है !—जहाँ हजारों [illegible] गद्गद हो "रघुपति राघव राजाराम। पतितपावन सीताराम" कर रहे हों, शहरमें प्रार्थनाकी [illegible] [illegible] ही [illegible] [illegible] [illegible], [illegible] [illegible] पीटे, हजारों आदमी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] जमा हो जाते हों, उस प्रार्थनाको [illegible] [illegible] कौन कहेगा ? [illegible] [illegible] [illegible] अच्छी तरह काम कर रही है — [illegible] [illegible]—[illegible] [illegible]—[illegible] [illegible] यही कर सकता है, [illegible] [illegible] गई है। और [illegible] प्रचार ! इसके सिद्धान्त [illegible]—[illegible] काम कर [illegible] ([illegible]) होने—के बारेमें [illegible] [illegible] हो, तो सेठ [illegible] [illegible] से पूछ लीजिये। [illegible] [illegible] [illegible] भारी काम हुआ विदेशी कपड़ा-वस्तुओं—[illegible] [illegible] जिन्होंने स्वराज्य तो सारा भरम नहीं टपका, [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]। मिल मालिकोंने भी अपनी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] खादी भेजकर देना चाहा [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] ही हो, पर उन्होंने महात्माओं [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]—एक बार कुछ समयके लिये [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

महात्माओंके चरणोंमें बैठनेका सौभाग्य मिला होता, तो निश्चय ही उनकी यह संकीर्णता दूर हो गई होती। हाँ, मगर चर्खा अभी वहीं टिमटिमा रहा है, जहाँ कि १९२२ ई० में था—आज युद्धके दौरान चर्खेमें फौजके कपड़ेके लिये चर्खा-संघसे भी यदि टेंडर माँगा गया हो, तो उम्मीद है गाँधीजी युद्धकी सहायताका वास्तविक मूल्य समझते हुए इसे सफलता नहीं ख्याल करेंगे। लेकिन चर्खेको भारत और दुनियाके निंदा करनेवाली मिलें आज भारतमें एकच्छत्र राज्य कर रही हैं। चर्खा ही क्या! खद्दर भी गाँधीजीने अपने प्रयोगका एक अंग बना रखा है। गाँधीजी एक महान् शुद्ध यज्ञ करना चाहते हैं, किन्तु "डूबा वंश कबीरका उपजे पूत कमाल", यदि चेलोंके मारे यह यज्ञ पूरा होने पाये तब न? अपने कपड़ेको खादीसे भी सस्ता कर मिलवालोंने उधर खादीकी रेढ़ मार दी थी, और अब पिछले दस वर्षोंमें शुद्ध यज्ञके लिये उससे भी बुरा काम बिड़ला डालमिया साराभाइ-बजाजकी चीनी मिलोंने कर दिखलाया। बेचारे गाँधीजी डाल डाल चलना चाहते हैं, किन्तु चेले पात-पातपर उड़ रहे हैं, करें तो क्या करें!

गाँधीजीके और प्रयोगों—ब्रह्मचर्य, बकरीके दूध, मिट्टीकी चिकित्सा हाथका कुटा पिसा चावल आटा, मशीन-बायकाट आदि पर भी सुनना चाहते हैं? यह सारे प्रयोग पूरी तौरसे सफल हुए हैं, किन्तु ठीक उससे उलटे अर्थमें, जिसमें कि गाँधीजीने उनका प्रयोग करना चाहा। ब्रह्मचर्यके नाम पर चिराग तले इतना भारी अँधेरा है, कि आँखें फाड़-फाड़कर देखने पर भी कुछ पल्ले पड़नेवाला नहीं। बकरीके दूधका प्रयोग गोसेवा प्रयोगका एक अभिन्न अंश है, यद्यपि इसके समझनेमें मेरे मित्र श्रीराम शर्माको कुछ देर लगी थी, और उन्होंने इस प्रयोगके इनचार्ज सेठ जमुनालालकी प्रार्थनाको पहिले ठुकरा दिया, लेकिन सवेरेका भूला शामको यदि घर लौट आये, तो उसे भूला नहीं कहते। फिर शर्माजीका भी तो अपना प्रयोग है—उन्होंने सैकड़ों सूअरों और हिरनोंका शिकार किया है,

किन्तु अपने रामको भी शर्म न की, और शिकारी रामके सारे प्रयोगोंको ताक पर रख, शूकर या मृगके मधुर मासकी कभी एक पट्टी भी दाँतके नीचे नहीं दबाई, आखिर रामका निशान कभी चूक सकता है—"सकल पदारथ एहि जगमाँहा। करमहीन नर पावत नाहीं।" अपने रामने तो जिस दिन मनुस्मृतिमें पढ़ा कि शूकर मासके पिंडसे पितर वर्षों तृप्त रहते हैं, उसी दिन निश्चय कर डाला कि पितृ-ऋणसे उऋण होना होगा, और "जो इच्छा करिहौ मनमाँही। हरिप्रताप कछु दुलभ नाहीं" घरैल-बनैल दोनोंसे अनेक बार तर्पण हो चुका है।

हाँ, तो गो-सेवाके बेड़ेको बीच हीमें छोड़ना अच्छा नहीं है। इस सेवाके प्रयोगमें नियम हैं—भैंसका कम्प्लीट (सोलहो आना) बायकाट करना होगा, मारी गायका चमड़ा नहीं इस्तेमाल करना होगा, दूध घी आदि सिर्फ गोरस होना चाहिये, भैंसरस नहीं, अज-रसमें शायद महान् प्रयोगशास्त्रीको कोई एतराज नहीं है। बापूजी पहले भड़के, पीछे ठीक हो गये यह बतला चुका हूँ, किन्तु अपने रामकी भड़क अभी तक बदस्तूर कायम बनी है। बकरीके बायकाट न करनेसे मुझे तो बहुत खुशी हुई। बकरीके दूध घी से तो अपने रामका इतना ही वास्ता है कि यदि एक बूँद भी अजा दुग्ध जिह्वा पर पड़ जाय, तो छै महीनेका खाना भी हजम न रह सके, इस बारेमें मैं गाँधीजीकी हिम्मतकी सराहना करता हूँ। खुशी मुझे इसलिये हुई, कि भारतमें मांसके नाम पर जो मांस हर जगह सुलभ है, वह बकरीका ही है। अच्छा ही हुआ जो यहाँ हमारा गाँधीजीका समझौता हो सकता है। किन्तु, खुदाकी कसम, भैंसका बाय काट मुझे पसंद नहीं आया। यह नहीं कि लंकाके बौद्ध-गृहस्थोंके घरका बना लका(मिर्चे)-परिपूर्ण महिष मांस मुझे याद आता है, बल्कि इसकी तहमें मैं दूध घी जैसे प्राणिज आहारका भी बायकाट कर "लौटा घासपातकी ओर" के नारेको छिपा हुआ समझता हूँ। हाँ गो-सेवा यदि और व्यापक बनाई जाय और उसमें साम्प्रदायिकता या हिंदुत्वकी संकीर्ण दृष्टि हटाकर

हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, बौद्ध, नास्तिक (कम्युनिस्ट) तथा भारतीय, चीनी, युरोपीयजनको अपने अपने धर्म, अपने अपने विचार, अपनी अपनी रुचिके अनुसार भाग लेने दिया जाय, तो गाँधीजी, प्यारा बच्चा जी, हम सभी तो सेनाकी रखनेके लिये तैयार हैं।

(*गुहा-मानवका नारा*)— गाँधीजीके प्रयोगवादनसे मिट्टी-पानी चिकित्साके बारेमें दो शब्द जरूर कहने हैं, मेरे मित्र आनन्द कौसल्यायनने अपने पत्र (५ मार्च १९४२ ई०) में लिखा है "(वह) २८,२५ इन्जेक्शन ले लेकर थक गये। अब मेरे कहनेसे प्राकृतिक चिकित्सा (मिट्टी पानी)के प्रयोगोंका परीक्षण करने जा रहे हैं। आप तो आपरेशन इन्जेक्शनवादी हैं।" गाँधीजीका जादू बुद्धके एक बागी शिष्यपर भी चल गया। कैसा रमणीय विरोधि-समागम है—कहाँ बुद्ध और उनका शिष्य जो भक्तिकी परछाईं भी छूना नहीं चाहता और सिर्फ बोध—ज्ञान—को अपना पथ प्रदर्शक बनाता है, और कहाँ गाँधीजी जिनका भगवान्की भक्ति ही जीवनमें सबसे बड़ा सम्बल है! कहाँ बुद्ध और उनका शिष्य जो क्षणिकवाद—पिछली दुनियाको सदाके लिये नष्ट हो जाने पर हर वक्त बिल्कुल नई दुनियाके बनने—को मानते हुए, पुरानीको बुद्धके शब्दोंमें "तं कुतेत्थ लब्भा"[1] कह उसे उसके भाग्य पर छोड़, नवीन उत्साहसे नवीन पथपर चलनेके लिये तैयार, और कहाँ गाँधीजीकी सनातन चिरस्थिरता दुनिया, जिसमें लौट जानेके लिये उनका पुराना नारा "लौटो गुहा मानवकी ओर[2]"। खैर! हम वैज्ञानिक भौतिकवादियोंके लिये *विरोधि-समागम* बिल्कुल स्वाभाविक बात है। हाँ, हम इतना जरूर कहेंगे कि क्षणिकवादी अन् आत्मवादका महान् आचार्य बुद्ध,

---

[1] "वह यहाँ (फिर) कहाँ मिलनेवाला है।"

[2] Back to cave man

द्वन्द्वादी भौतिकवादके महान् आचार्य मार्क्सकी भाँति ही सैकड़ों बातों-में अपने समयसे बहुत दूरतक देखता था। मिट्टी पानीकी गाँधी आनन्द शाही चिकित्साको जरा ढाइ हजार वर्षके इस बूढेके सामने ले चलिये तो। "अमृत सुकुमार" होनेपर भी वह मार्क्सकी भाँति लदन नगरीमें नहीं रहता था, जिससे कि उसपर 'नागरिकताका भूत सवार' कहा जा सके। साथ ही वह गाँधी और आनन्दसे चिकित्सा शास्त्रपर कम अधिकार नहीं रखता था, यह उसके उन नुस्खोंसे सिद्ध है, जो महावग्ग (विनयपिटक)के भैषज्य-स्कंधकके बड़े साइजके ४१ पृष्ठों[1]में लिखे हुए हैं, और जिसके कारण ही बुद्धका दूसरा नाम भैषज्य-गुरु पड़ा। इसी भैषज्य गुरुकी प्रेरणासे अशोकने अपने ही राज्यमें चिकित्सालय नहीं बनवाये, बल्कि यूनानी राजाओंके राज्य (मिस्र, सीरिया आदि)में भी औषधियोंके बगीचे लगवाये, और उसके कुछ शताब्दियाँ पीछे हिन्दी-चीनमें तो बाकायदा सार्वजनिक दातव्य औषधालयोंका ताँता बँधा हुआ था। निश्चय ही भैषज्य-गुरुके इन चिकित्सालयोंमें वैद्य लोग सिर्फ मिट्टी पानी लेकर नहीं बैठे रहते थे, बल्कि यदि उन्होंने शब्दवादके घोर विरोधी प्रयोगवादी बुद्धके आदेशके अनुसार बीचकी शताब्दियोंमें और तरक्की न की हो, तो भी वहाँ "भैषज्य स्कंधक" की निम्न औषधियाँ तो जरूर थीं— रीछ-मछली-सोंस-सूअर-गदहेकी चर्बीवाली दवाइयाँ[2], हल्दी अदरक, बच, अतीस, खस, नागरमोथा और दूसरी जड़ (मूल) वाली दवाइयाँ, नीम, कुट, पटोल आदि कषायवाली दवाइयाँ, नीम, कुट, तुलसी, कपासी आदि पत्तेकी दवाइयाँ, विडग, पीपर, मिर्च, हर्रा-बहेरा आँवला आदि फलोंकी दवाइयाँ, हींग, लख आदि गोंदवाली दवाइयाँ, सामुद्रिक, काला, सेंधा, वानस्पतिक आदि नमकवाली दवाइयाँ और चूर्ण

[1] देखो "विनयपिटक" (मेरा अनुवाद) पृष्ठ २१४ २५५

की दवाइयाँ[1]। सूअर आदिकी चर्बी सिर्फ मालिशके लिये ही नहीं खाने के लिये विधान की गई है, इसका भी ख्याल रखिये, और बुद्धकी इस बातको देखिये—किसी खास रोगसे पीड़ित एक शिष्यने "सूअर मारनेके स्थान पर जाकर कच्चे मांसको खाया, कच्चे खूनको पिया, और उसका वह रोग शान्त हो गया[2]।" यह बात मालूम होने पर बीसवीं सदी ईसवी के गाँधी बाबा और उनके समर्थक आनन्दबाबा क्या उपदेश देते, यह आप सुन चुके हैं। और आजसे पच्चीस सौ वर्ष पहिले बुद्धने इसी पुण्य भूमि भारतकी पुनीत पुरी श्रावस्ती[3]में क्या कहा था[4]—"भिक्षुओ! अनुमति देता हूँ रोगमें कच्चे मांस और कच्चे खूनकी।"

बुद्धकी औषधि-सूचीमें मिट्टी-पानीका नाम नहीं पायेंगे, बल्कि वहाँ उपरोक्त औषधियोंके अलावा मिलेंगी—अंजन (सुर्मा), अंजनदानी, सलाई, सिरका तेल, तथा नाकमें नस डालनेकी नली (इंजेक्शन नहीं, यह बात ठीक है!), सिगरेटकी भाँति पीनेकी धूमवत्ती ("अनुमति देता हूँ धूयेंके पीनेकी[1]"), धूम-चोंगी (पाइप), वातका तेल, दवामें मद्य। जो कुछ आपरेशन इंजेक्शन उस समय था, उसे मिट्टी-पानीवाले दादाके गुरु (बुद्ध) लोककल्याणके लिये स्वीकार करते थे, इसीलिये तो उन्होंने निम्न चिकित्साओंका भी समर्थन किया—स्वेदकर्म (पसीना निकालना), सींगसे खून निकलवाना, मालिश और दवा, मलहम-पट्टी, सर्प चिकित्सा, विष चिकित्सा। और आपरेशन? सुनिये शाक्यसिंह के सिंहनादको—"अनुमति देता हूँ शस्त्रकर्म (आपरेशन) की।"[3] बोलो "गाँधी बाबाकी जय!" बोलो "भदन्त आनन्द कौसल्यायनकी

[1]"विनय पिटक" (हिन्दी) पृष्ठ २२६ २१७। [2]वहीं पृष्ठ २१९।

[3] वर्तमान सहेट महेट, जिला गोंडा-बहराइच।

[4]देखो "विनय पिटक" पृष्ठ २२१।

जय", और इसीलिये बोलो "शाक्यसिंहकी जय", और उसके दिखलाये रास्तेसे सीधे वैज्ञानिक भौतिकवाद तक पहुँच जानेवाले "महानास्तिक राहुल सांकृत्यायनकी जय।"

हाँ, तो गाँधीजीके "लौटो गुहा-मानवकी ओर"के नारेमें फसकर भोले भाले आनंदजीकी क्या गत हुई, यह तो आपने देख लिया, अब इस नारेके बारेमें एक बात जरूर कहनी है। बुद्ध कालवादी थे—देश-काल व्यक्ति देखकर वह अपनी सम्मति देते थे। वह हवामें तलवार चलाना पसंद नहीं करते थे, वही बातें उनके इस छोटेसे शिष्य राहुलकी भी है—हाँ, शिष्यताका अधिकार मैंने छोड़ा नहीं है, बल्कि "मेरे उपदेशित धर्मको बेड़ेकी तरह जानो, वह पार उतरनेके लिए है, ढोकर ले चलनेके लिए नहीं"[1]—उनके इस उपदेशका पालन करते हुए ही मैं क्षणिक (=द्वंद्वात्मक) अन-आत्मवादसे द्वंद्वात्मक भौतिकवादपर पहुँचा। हाँ, तो यदि आप गुहा-मानवकी ओर लौटना चाहते हैं, तो पहले गुहा मानव बनिये। कपड़ोंको दूर फेंकिये, नाई अस्तुरेको पास फटकने न दीजिये, ऐसे जंगलमें जाइये जहाँ सेठ सेठानियाँ क्या, आजकी सभ्यताका जरा भी चिन्ह न हो—लोहेका चाकू फल तक भी जिनमें पाया जाय, ऐसे आदमियोंकी छायाको भी पासमें फटकने न दीजिये।—गोया पहले अपने साथ गुहा-मानवका वातावरण बनाइये। स्वास्थ्यपर वातावरणका भारी असर होता है—गुहा मानववाले किसी घोर जंगलमें जानेसे आपके बहुतसे रोग स्वयं मिट जायेंगे, यह मैं मानता हूँ। लेकिन आहार? मैं अपने मित्र आनंदजीके बारेमें तो अच्छी तरह जानता हूँ, कि वह मेरी तरह अकान्न कासुरको हजम कर जानेकी क्षमता नहीं रखते। और प्राकृतिक चिकित्सार्थ गुहा-मानवका आहार सबसे ज्यादा जरूरी चीज है। आहारके लिये गुहा मानवके नुस्खेको बतलानेका मतलब है, अपने एक ऐसे मित्रसे हाथ धोना, जिसके बिना दुनिया जीवन भरके लिये नीरस हो जायगी। फिर

[1] "मज्झिमनिकाय"

ऐसे नुस्खेका बताना तो दूर, उसे यदि वह दूसरेसे लेकर भी प्रयोग करना चाहेंगे, तो मैं उनकी नाराजगीकी पर्वाह न कर सारी सामग्रीको नजदीकके नापदानमें फेंक दूँगा। मुझे विश्वास है, मैं अपने भूले मित्रको रास्तेपर लानेमें सफल हो जाऊँगा। हाँ, यदि गांधीजीकी फलाहार मंडली—जिनमें रोगियोंकी संख्या भी सबसे ज्यादा है—चाहे, तो वह नुस्खा हर वक्त हाजिर है। उसके तजरबेसे उन्हें मालूम हो जायगा कि वह सचमुच आदमीको उस जगह पहुँचा देगा, जहाँ कि आज यह शुद्ध मानवकी दुनिया पहुँची हुई है।

तृतीय अध्याय

मूढ़ विश्वास

"वेद-प्रामाण्य कस्यचित् कर्तृवाद स्नाने धर्मेच्छा जातिवादावलेप ।
सन्तापारम्भ पापहानाय चेति ध्वस्तप्रज्ञाना पच लिंगानि जाड्ये॥"
—धर्मकीर्ति[1]

वैज्ञानिक भौतिकवाद एक प्रकाश है, जिसके आ जानेपर मूढ़ विश्वासोंका परसना मुश्किल नहीं है। लेकिन, यह भी ख्याल रखना चाहिये कि उपरोक्त पंक्तियाँ आजसे साढ़े तेरह सौ वर्ष पहले नालन्दाके एक महान् प्रोफेसरने इसी ख्यालसे लिखी थीं कि उसके देश भाई "अकल-मारे हुओंकी जड़ताके" इन पाँच चिह्नोंको अपने ऊपर न लगने देंगे। किन्तु, परिणाम क्या हुआ? जड़ताके पाँचों चिह्न पैर तोड़कर भारतके कोने-कोनेमें बैठ गये, और धर्मकीर्तिके ही शब्दोंमें "मि व्यापक तम" का राज्य हो गया। यह भारतीय कान्ट+हेगेल अपने लिये उस समयको अनुकूल नहीं समझता था, तभी तो उसने अपने महान् ग्रंथ (प्रमाण-वार्तिक)को समाप्त करते हुए लिखा था—

"मत्त मम जगत्यलब्धसदृशप्रतिग्राहक,
प्रयास्यति पयोनिधे पय इव स्वदेहे जराम्।"

---

[1] प्रमाण-वार्तिक १।३४२ "(१) वेदको प्रमाण मानना, (२) किसी (ईश्वर) को कर्ता कहना (३) (गंगादिमें) स्नानसे धर्म चाहना (४) (छोटी-बड़ी) जातिकी बातका अभिमान (५) पाप नष्ट करनेके लिये संताप (उपवास आदि) करना—ये पाँच अकल-मारे हुओंकी जड़ताके चिह्न हैं।"

(यह विचार जगत्‌में 'अपने' लायक ग्राहकको न पा समुद्रके जलकी भाँति अपने गात्रमें ही जीर्ण हो जायेंगे ।) और सचमुच भारतमें धर्म कीर्तिका अन्तिम संस्मरण आजसे साढ़े सातसौ वर्ष पहले उनके विरोधी श्रीहर्षके मुखसे सुना गया था—

"दुराग्रह इव धर्मकीर्तेः पन्था तदवहितेन भाव्यमिति" [1]

किन्तु, आज भारतके मार्क्सवादी धर्मकीर्तिका स्वागत करनेके लिये तैयार हैं, और वह अपनी मातृभूमिको एक नहीं, हजार गाधियों, राधा कृष्णोंके होते भी ध्वस्त प्रज्ञोंके पाखण्डके पाँचों चिह्नोंसे मुक्त करनेके लिये कटिबद्ध हो गये हैं। इस काममें वह अकेले नहीं हैं, बल्कि सारे विश्वकी एक जबर्दस्त कमठ सेना उनके साथ है।

क. धर्म और धार्मिक तत्त्व

मनुष्यके मूढ विश्वासों—जड़ता चिह्नों—को धर्मकीर्तिने पाँच भागोंमें बाँटा है, किंतु आज अब विश्वासोंकी नई फसलें भी तैयार हुई हैं। इन सारे मूढ विश्वासोंका खंडन करना न इस छोटी-सी तीन अध्यायकी पुस्तिकामें मुमकिन ही है और न उसकी जरूरत ही है। नालंदाके एक दूसरे प्रोफेसर (शांतिदेव)के शब्दोंमें काँटोंसे बचनेके लिये सारी धरतीको चमड़ेसे ढँकनेकी जगह अपने दोनों पैरोंको ढाँक लेना काफी है। [2]

१ धर्म बेकार

धर्मके लिये ईश्वर अनिवार्य सहचर नहीं है, क्योंकि हम जानते हैं बौद्धधर्म धर्म होते भी ईश्वरको नहीं मानता, एक हद तक जैन भी इस बातमें बौद्धोंका साथ देते हैं। किन्तु, हिंदुओं, ईसाइयों, यहूदियों, पार

[1] "खण्डनखण्डखाद्य"—"धर्मकीर्तिका मार्ग दुराग्रह जैसा है सो यहाँ सावधान रहना चाहिये।" [2] बोधिचर्यावतार १।

सियों और मुसल्मानोंके लिये ईश्वरके बिना मजहबका ख्याल भी मुश्किल मालूम होता है, जैसा कि विदेशमें एक मुसल्मान सज्जनके इस उद्गारसे पता लगता है, जिन्होंने कि जिंदगीमें पहले-पहल बौद्धधर्मकी इस विशेषता को सुनकर कह डाला था—'या अल्लाह, यह भी कोई मजहब है, जिस में अल्लाह ही केलिये जगह न हो!"

हेगेलके शिष्य फ्वेरबाखकी पुस्तक "ईसाइयत-सार"[1] का जिक्र पहले हो चुका है। इसमें उसने ईसाइयतको नमूनेके तौरपर रख उसके द्वारा एक तरह सारे ईश्वरवादी और कुछ हद तक दूसरे धर्मोंका भी विश्लेषण किया है। फ्वेरबाख एक जगह लिखता है[1]—

"धर्म मानवको अपने आपसे विलग करता है। वह (मनुष्य, धर्म द्वारा) ईश्वरको अपने प्रतिद्वंद्वीके तौरपर अपने सामने रखता है। —ईश्वर वह है, जो कि मानव नहीं है, मानव वह है जो कि ईश्वर नहीं है। ईश्वर और मानव दो (परस्पर विरोधी) छोर हैं, ईश्वर पूर्णतया भावरूप है, (वह) सभी वास्तविकताओंका योग है, मानव पूर्णतया अभावरूप है, (वह) सभी अभावोंका योग है।"

आगे फ्वेरबाख फिर कहता है[2]—

" धर्म पवित्र है, क्योंकि वह (मानवकी) आदिम आत्म-चेतना की गाथाय हैं। किन्तु धर्मोंमें जिस ईश्वरका स्थान प्रथम है—वह खत सचमुच देखने पर द्वितीय (स्थानके योग्य) है, क्योंकि मनुष्यके (उच्च) स्वभावको साकार तौर पर सोचनेके अतिरिक्त वह और कुछ नहीं है, और जो धर्ममें मानव द्वितीय स्थान पर रखा गया है"

[1] Essence of Christianity p 33

उसे प्रथम *बनाना और घोषित* करना चाहिये। मानवके लिये प्रेम किसी दूसरे (ईश्वर)के सम्बधसे नहीं बल्कि स्वत होना चाहिये। यदि मानवके वास्ते मनुष्यका स्वभाव सर्वोच्च है, तो *मानवके लिये मानवका प्रेम* ही सर्वोच्च तथा प्रथम कानून भी होना चाहिये। *मानव मानवके लिये ईश्वर है*, यह एक महान् क्रियात्मक सिद्धान्त है, यही वह धुरी है, जिसपर जगत्का इतिहास चक्कर काटता है।"

जर्मन दार्शनिक फ्वेरबाखको ईश्वरका मानवके स्थान पर बैठना पसंद न आया, इसलिये यद्यपि वह इसका विरोध करता है, तो भी उसकी नम्रता स्वय धार्मिक भावुकतामे पली हुई है। फ्वेरबाखकी भावुकताको उसके समकालीन मार्क्सवादी किन अर्थोंमे लेते थे, उसके लिये एन्गेल्सके इन वाक्योंको देखिये[1]—

"वह (फ्वेरबाख) कभी धर्मको खतम नही करना चाहता, बल्कि वह उसे पूर्ण करना चाहता है। (उसके मतसे) खुद दर्शनको धर्ममे मिला लेना चाहिये।"

फ्वेरबाख (१८०४-७२ ई०)से वोल्तेर (१६९४-१७७८ ई०)का भाव इस विषयमे ज्यादा साफ है, जो होना भी चाहिये था, क्योंकि फ्वेरबाख जहाँ कोरा दार्शनिक था वहाँ वोल्तेर उन चिनगारियोंका बोनेवाला था, जो कि उसकी मृत्युके दस ही साल बाद उस प्रचड फ्रेंच-क्रान्तिको लानेमें सफल हुईं, जिसने दुनियामे स्वतन्त्रता—भ्रातृता—समानताका नारा पहिले-पहिल बुलद किया। वोल्तेर कहता है—[1]

"ईश्वरका ज्ञान हमारे भीतर प्रकृतिके हाथों द्वारा नहीं डाला गया है, ऐसा होता तो सारे मनुष्योंको इसका एक ही समय विचार होता, किन्तु हम ऐसे किसी विचारके साथ नहीं पैदा हुए हैं।"

[1] Ludwig Feuerbach p 43

[1] Philosophical Dictionary (God) 1765

वोल्तेरके शब्दोंको क्रान्तिका आवाहन करना था, इसलिये वह उन चिनगारियोंसे ही लिख सकता था, वोल्तेरको दाद देनी चाहिये कि इकहत्तर वर्षकी आयुमें भी वह इन चिनगारियोंसे खेल सकता था, जिस अवस्थामें कि हमारे देशके कितने ही राजनीतिज्ञ तपोवनकी तैयारी करने लगते हैं—गाँधी-युगके राजनीतिज्ञोंके बारेमें मत पूछिये, उनके लिये घर और तपोवन दोनों बराबर हैं, जब वह सिर्फ अनासक्ति योगपर ध्यान रखते हैं। लेकिन २६ वर्षका मार्क्स धर्मपर कैसे अंगारे फेंक रहा था, उसे भी देखिये—

"मनुष्य धर्मको बनाता है, धर्म मनुष्यको नहीं बनाता। यह राज्य और समाज है जो कि धर्मको पैदा करता है। इसलिये धर्मके विरुद्ध लड़ना अप्रत्यक्ष-रूपेण, उस दुनियाके विरुद्ध लड़ना है, जिसका आध्यात्मिक प्रभा-मंडल धर्म है।

"धर्म(पुस्तकों)में कथित दुःख (नर्क आदि) बिल्कुल वास्तविक दुःखका प्रकाशन और उस वास्तविक दुःखके प्रति विरोध प्रकट करना है। धर्म विपत्में फँसे प्राणीकी आह, हृदयहीन जगत्‌का हार्द (भाव) है, वह आत्महीन परिस्थितियोंके आत्मा जैसा है। वह जनताके लिये अफीम है।[1]"

हेगेल्‌ने विज्ञानवादमें द्वन्द्वात्मकता (क्षणिकता) जोड़ नित्य एक-रस विज्ञान (ब्रह्म)की महिमाको कम कर दिया। उसके शिष्य फ्वेरबाख़ने "इसाइयत-सार" लिख धर्मपर हमला शुरू किया—यद्यपि यह काफी सहृदयता लिये ही। दर्शनमें फ्वेरबाख़के उत्तराधिकारी मार्क्सने सीधे तौरसे धर्मके किलेपर गोलाबारी शुरू की। धर्मके नकली मुलम्मेको खोलते हुए उसी लेखमें मार्क्स फिर लिखता है[2]—

[1] On Hegels Philosophy of Law (Marx 1844)
[2] वही।

"धर्म एक भ्रमात्मक सूर्य है, जो कि मनुष्यके गिर्द तबतक घूमता रहता है, जबतक कि मनुष्य अपने [मनुष्यताके] गिर्द नहीं घूमता। इसलिए [नये जगत्की सृष्टि करनेवाले] इतिहासका यह काम है, कि परलोकके सत्यके लुप्त हो जानेपर इस जीवनके सत्यको स्थापित करे।

इस तरह करनेसे स्वर्गका खंडन पृथ्वीके खंडनके रूपमें, धर्मका खंडन कानूनके खंडनके रूपमें, देववादका खंडन राजनीतिके खंडनके रूपमें बदल जाता है।"

खंडनके महत्त्व और सीमाको मार्क्स कभी हल्की रखना नहीं चाहता था, जैसाकि वह वहीं आगे लिखता है—[1]

"किसी तरह भी खंडनका हथियार हथियारों द्वारा होनेवाले खंडनका स्थान ग्रहण नहीं कर सकता। [हम] भौतिक बलका उलटना होगा, किन्तु सिद्धान्त स्वयं भौतिक बल बन जाता है, जब वह जनताको पकड़ लेता है।

"धर्मके खंडनका अन्तिम पाठ यह है, कि मानवजातिके लिये मानव सर्वश्रेष्ठ सत्य है—(अतएव) उन सभी परिस्थितियोंको खतम कर दिया जाय, जिन्होंने कि मानवको एक पतित, दास, उपेक्षित, घृणास्पद प्राणी (बना दिया) है।"

सभी देशोंका इतिहास, और भारतका खास तौरसे, इस बातका साक्षी है, कि धर्मसे बढ़कर मनुष्यको पतित, दास, उपेक्षित, घृणास्पद बनानेवाला दूसरा कारण नहीं हो सकता। भारतीय मानवताको छिन्न भिन्न करनेमें सबसे जबर्दस्त हाथ धर्मका रहा है। कहा जाता है, धर्मका कोई कसूर नहीं, कसूर है स्वार्थी लोगोंका जो कि उसे अपने फायदेके लिए गलत तौरसे इस्तेमाल करते हैं। इसका मतलब यह हुआ, कि कोई ऐसा भी जमाना था, जब कि धर्मकी धरोहर रखनेवाले सिर्फ नि

[1] वहीं

स्वार्थी व्यक्ति होते थे। लेकिन इसका पता इतिहाससे तो नहीं मिलता, ऋग्वेदके ऋषियोंसे लेकर अन्तिम ऋषि तुलसीदास तक चले आइये। बाबाके शब्दोंमें इतिहासका फैसला है—

'सुरनर मुनिकी येही रीती।
स्वारथ लाइ करहिं सब पूती।"

कितने ही लोग मनुष्यताके लक्षणके बारेमें कहते हैं—

"आहार निद्रा भय मैथुन च
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धर्मो हि तेषामधिको विशेषो
धर्मेण हीना पशुभि समाना।"

[आहार, निद्रा, भय और मैथुन यह (चार बातें) पशुओं तथा मनुष्योंमें समान हैं। इनमें धर्मही (एक) अधिक विशेष है (और) जो धर्मसे हीन हैं, वह पशुओंके समान हैं।]

धर्म के ठीकेदारोंसे ऐसे ही शब्द सुननेकी आशा थी। किन्तु यह भी याद रखना चाहिये कि यह नारा सिर्फ भारतके हिन्दुओंका ही नहीं है। सारी दुनियाके धर्मवाले श्र धर्मवादियोंका पशु-पदवी देनेमें एकमत हैं। हाँ, लूटके मालको बाँटने वक्त आपसम वह लट जरूर पड़त हैं—एक धर्मका माननेवाला दूसरेको नास्तिक, काफिर कहता तथा दिलसे मानता है। यद्यपि दार्शनिक लोग सदियोंसे अपने मुवक्किलों—धर्मों—का इनसे महान् अनिष्ट देख समन्वयकी कोशिश करते आ रहे हैं, किन्तु धर्म आखिर जिन स्वार्थोंकी रक्षाके लिये बनाया गया है, वह जब एक हों तब न एकताकी बात चल सके। धर्मको मनुष्यका लक्षण माननेवालोंका जवाब देते हुए मार्क्सने कहा था—

"चेतना, धर्म या आप जिससे चाहें, उससे मानव-जातिका पशुओं से भेद कर। लेकिन (मनुष्योंने) स्वय पशुओंसे उसी वक्त अपना भेद

करना शुरू किया, जबकि उन्होंने अपने जीवन-निर्वाहके साधनोंको पैदा करना शुरू किया—अपनी शारीरिक बनावटके कारण उनका यह कदम उठाना आवश्यक था"[1]।

धर्म और ईश्वरके ख्यालको जन्मजात कहनेवाले कूपमंडूक ही हो सकते हैं। आज सभ्य मानवताका अधिकांश ईश्वरको नहीं मानता; अत्यन्त प्राकृतिक अवस्थामें रहनेवाले गुहा मानव भी अपने गुहा चित्रोंमें किसी प्रकार के धर्म चिह्नको नहीं छोड़ गये हैं। धर्मका प्रारम्भ मानवके जीविकोत्पादनार्थ समाज बना लेने, तथा भाषाके कुछ विकसित हो जाने पर हुआ, और इसका पूरा विकास तो दासता युग और सामन्त-युगके समय प्रभुवर्गने किया। वस्तुतः धर्मकी सारी कल्पना, उसके देवताओंका निर्माण उसी दासता तथा सामन्त-युगके मानव-समाजकी नकल है।

२. धर्मके नये व्याख्याकार

(१) *हिन्दू धर्मकी विशेषता*—धर्मकी नई व्याख्या कोई नई बात नहीं है। धर्मात्माओंने "पंचोंकी बात सर आँख पर रखकर भी अपना पनाला" वहीं रखा है, तो भी परिवर्तनशील दुनियाके साथ समन्वय करना भी जरूरी था, इसलिये नये व्याख्याकार जरूरी ठहरे। इसी बातको गीताके चालाक लेखकने इन शब्दोंमें अदा किया है—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।"[2]

ये सारे नये व्याख्याकार—नई बोतलमें पुरानी शराब भरनेवाले मद्य-वणिक् (अथवा अफीम—अहि फेन—व्यवसायी) यही काम करते

[1] German Ideology (by Marx and Engels)

[2] "जब जब धर्मकी ग्लानि और अधर्मका अभ्युत्थान होता है, तब-तब मैं अपनेको सिर्जता हूँ।"

हैं, और बचपनमें दी गई मानव-समाजकी हथकडियों-बेडियाको उसकी आयुके अनुसार बढाते रहना। किन्तु अभी इसपर कुछ ते करनेके पहले चलिये काशीमें विराजनेवाले हिन्दू धर्मके अभिनव व्यासके पास।– यह मानना पडेगा कि उक्त गीता-वाक्यके अनुसार वर्तमान समयमें सबसे जबर्दस्त गोलफेरी—तुम्बाफेरी—करनेवाले हिन्दू दो ही हैं, भक्ति जगत्में महात्मा मोहनदास कर्मचंद गाँधी (सेठ जमुनालाल बजाज लेन, सेवा ग्राम) और दर्शन-मार्गमें सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (सकटमोचनके पास, हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी)। देखिये सर राधाकृष्णन् क्या फर्मा रहे हैं—

"हर एक जाति अपनी अपनी विशेषता, मानसिक भाव, अपनी खास बौद्धिक रुझान रखती है।"[1]

मशाल लेकर ढूँढिये तो पिछले हजार वर्षोंके इतिहासमें दुनियाकी और जातियासे भारतीय जातिमें क्या विशेषता पाई जाती है—आखिर "वृथा न होहिं देव-ऋषि-वानी", कृष्णके अवतार हमारे राधा + कृष्ण कोई बात अकल्याणकी नहीं कह सकते। और इस ढूँढनेमें आपको सफल होनेकी जबर्दस्त संभावना हो सकती है, यदि दुनियाकी और जातियोंके ज्ञानके बारेमें आप बिल्कुल कोरे हों। 'विशेषता, मानसिक भाव, बौद्धिक रुझान", सावधान, इन शब्दोंका दूसरे अर्थोंमें मनमें रखियेगा, आप्तोपदेश वेदके शब्द सभी रूढि-अर्थवाले होते हैं, उन्हें उन्हीं अर्थोंमें लेना चाहिये जिनमें ऋषि महाशय लेते हैं। अथवा कहीं इस फेरमें पडेंगे, "संशयात्मा विनश्यति"के डरसे यही समझ लीजिये कि "भारतीय दर्शन" के लेखक जैसा अद्भुत–हाँ, पुस्तक लिखते वक्त तक अभी वह सर और अद्भुत नहीं हो पाये थे–लेखक क्यों गलत बोलने लगा, जब वह कहता है कि भारतीय दूसरी जातियासे इतना भेद रखते हैं, जितना कि अद्वैत

[1]Indian Philosophy vol I 33

भोलाराय से उनका नाँदिया, फिर तो उसे सत्य वचन कह गाये चलाना ही चाहिये।

और उनकी बहुश्रुततामें आपको सन्देह कैसे हो सकता है, भारतकी महिमामें उनके मुँहसे उद्‌गार (उदार) निकला है[1]—

"गौतमकी तुलना है अरस्तूसे, कणादकी थेलससे, जैमिनिकी सुकरात से, व्यासकी अफलातूँसे, कपिलकी पिथागोरससे और पतञ्जलिकी ज़ेनोसे।"

धन्य है भारतमाता, त्रैलोक्यजननी, त्रैलोक्य दमनी, भगवान् रामा कृष्णकी एकलौती सुपुत्री, जिसने दार्शनिकोंको पैदा करनेमें यूनानको मात कर दिया। बोलो "भारत माताकी जै"। लेकिन आप लोगोंके चेहरा के देखनेसे दो तरहके भाव प्रकट हो रहे हैं। महामहोपाध्याय बालकृष्ण मिश्रकी शिष्य मंडलीकी तो भौंहें तनी हुई हैं, और गुरुजाका ख्याल न हो, तो न जानें वह क्या कर गुजरें। उनका कहना है—इस ब्राह्मण वंश-कलंकको तनिक भी लज्जा नहीं आई, जो सोलह कला-पूर्ण हमारे षट्शास्त्री ऋषियोंको इन गोमक्षक नीच म्लेच्छोंके बराबर बना रहा है। किन्तु थार्ट-कालेजके जितने ही छात्र बहुत खुश हैं—(१) पहिले वह हैं जिन्हें पूर्व या पश्चिमके किसी दार्शनिकसे कभी पाला नहीं पडा और भगवान्‌की कृपा बनी रही तो उनकी यह जीवन-नैया अछूती ही पार निकल जायेगी। (२) दूसरे वह जो मादाम ब्लैवत्स्कीके देवभाषी समाजकी मार खाये हुए हैं, उनके लिये महा तामिल चाहे पूर्वका हो या पश्चिमका, सब एक-बराबर है। ये सारे पूर्व पश्चिमके "महात्मा" (MAHATMA) गण तो हिमालयके उस पारवाले तिब्बतके टशील्हुंपो मठके पास अवस्थित श्वेत परिषद्[2]के अपने सदस्य हैं—उसी परिषद्‌के, जिसके कूटहूमी और लालसिंह जैसे महात्मा सदस्यों का जयजयकार आज सातों महाद्वीपों और सातों जातियाममें हो रहा है।

---

[1] वहीं p.291 ■ [2] White Lodge

(३) तीसरे वह विद्यार्थी जो बेचारे साथियोंके डरके मारे गो-खुरके बराबर चुटिया नहीं रखने पाते। इनके कानमें काफी दिनोंसे भन भन करके समझाया गया है कि चारों वेदोंको बिल्कुल कुरानकी तरह ही इस्लामके द्वारा अल्लाह मियाँ—नहीं नहीं, ओम् महाराज—ने अपने चार ऋषियों—अग्नि, वायु, आदित्य, अंगिरा—के पास आजसे १ अरब ६५ करोड़ ५८ लाख ५० हजार ४३ वर्ष ३ मास दिन घंटे मिनट सेकंड पहिले भेजा (नाजिल किया)। फिर हमारे वैदिक धर्मके सामने इस्लाम बपुरा कौन होता है? उसके पास एक कुरान है, हमारे पास चार कुरान (कुरानकी भाँति वेद मूर्ति-पूजा, और नाना देववादसे मुक्त हैं), उसके पास एक पैगम्बर मुहम्मद, हमारे पास चार पैगम्बर, कुरान १३ सौ वर्षसे दुनियामें आया, हमारे वेद दो अरब वर्ष पुराने—वे उस वक्त आये जब कि शायद पृथिवी भी अभी सूर्यसे बाहर नहीं आई थी। बेचारे ये "वैदिक धर्मकी जय"वाले छात्र सबसे ज्यादा खुश थे, क्योंकि ऋषि दयानन्दने सारी साइंस विद्याओंको वेदसे निकालकर रख दिया था, किन्तु एक साथ उनकी मनके माँह रही—सारे पश्चिमी दार्शनिकोंको यह भारतीय ऋषियोंके चरणोंमें नतमस्तक न कर सके थे। वह काम जिस महापुरुषने कर दिखाया, उसे ऋषि-महर्षि छोड़ दूसरा क्या कहा जा सकता है? (४) और अन्तमें उस छात्रवर्गकी "विशेषता, मानसिक भाव, अपनी खास बौद्धिक रुझान"की ओर भी एक नजर डालनी है, जो कि सर राधाकृष्णन्को अपना हाड़-मांस समझते हैं। वह अपने गुरुके इन सूत्ररूपी वाक्योंमें "गागरमें सागर"की कहावत चरितार्थ होते देखते हैं! आज ऋषियोंकी दूर-दर्शिताका उनके ऊपर जबर्दस्त सिक्का बैठ रहा है, ऐसा सिक्का जो कमसे कम सृष्टिके बाकी दो अरब वर्षों तक तो ब्रह्माके मिटानेसे भी मिटनेवाला नहीं है। व्यास (बादरायण)को अफलातूँके समकक्ष बनाना उन्हें भी कुछ खटकता जरूर है, किन्तु वह समझते हैं—गुरुके मुँहसे ये शब्द

खास अभिप्रायसे लिखे हैं। साथ ही अफलातूनकी प्रतिभावाले व्यास बादरायण (जो सरासर गलत है। बादरायणमें अफलातूनकी दार्शनिक प्रतिभाका शतांश भी नहीं था, कहाँ मौलिक विचारक अफलातून और कहाँ उपनिषद्-कथाधारी बादरायण!) की महिमा वह अब समझ सकते हैं, और जब कोई ब्रह्मसूत्रसे निकालकर वेदके पढ़ने और सुननेवाले शूद्रके जीभ छेदने तथा पिघले शीशे-रांगेमें कान भरनेकी बात दिखलायेगा, तो वह झट कह सकते हैं कि त्रिकालज्ञ ऋषि ने किसी महान् अभिप्रायसे इसे लिखा होगा। और इस तुलनासे कमसे कम अठारह पुराणों, अठारह उपपुराणोंका दर्जा तो अफलातूनके "सनातन"के बराबर हो ही जायेगा। एक बार अपने ऋषियोंको उनके बराबर "शाश्वत" कर देनेपर अपनी कौनसी बात रहती है, जिसे "दिन दोपहर" हम सभ्य संसारके सामने सिद्ध न कर दिखायेंगे। ऋषियोंने श्राद्धका विधान किया—हाँ ठीक, ब्राह्मणोंके पेटमें डाला अन्न मृतकोंके पास जाता है, वैसे ही जैसे तार, जैसे चिट्ठी। दुर्गाकुण्डके हनुमानों और ज्ञानवापीके नांदियोंकी पूजा सर्वश्रेष्ठ मानवके लिये जरूरी है क्योंकि इष्ट स्वरूप पानेके लिये इष्टकी उपासना आवश्यक है। यमपुर यात्रामें, क्या पता है, वैतरणीके अलावा काँटे (असिपत्र) विद्ध पथपर शर्कटक वृक्षोंकी छाया भी पड़ी मिले। और पुण्यार्थ गंगा-स्नान तो हमारे ईसा तुल्य आम्नाय स्वयं करके पथप्रदर्शन कर रहे हैं। अजी! क्या क्या नहीं है, जो हम इस सूत्रसे नहीं निकाल सकते—और भई! भारतकी "विशेषता" कहकर तो आचार्यने कलमको लिखने लायक न रख छोड़ी। राम दुहाई! इस शब्दमें जबर्दस्त विशेषता कूट कूटकर भरी हुई है।

जानते हैं भारतकी सबसे बड़ी विशेषता—जिसका दुनियाके पर्देपर कहीं पता नहीं लगेगा क्या है?—वर्ण-व्यवस्था, जाति भेद। यह भारतकी "अपनी खास बौद्धिक रुझान" है, जिस तक दुनियाके किसी दूसरे देशका कैसे बड़ा मस्तिष्क भी आज तक नहीं पहुँचा, और यदि

भगवान्‌को अपनी अवतार भूमिकी लाज रखनी है, तो इन् शा-अल्लाह यह विशेषता यहाँसे बाहर नहीं जाने पायेगी।

देखिये कैसी सुंदर व्याख्या, कैसा नई बोतलमें पुरानी शराबका व्यापार !! आज राधाकृष्णन् साकाकी बोतलोंको आप राजपूताना‌के राजाओंके महलोंमें गीताकी भाँति पूजी जाते देखेंगे। अजमेरसे अजमेरके निकला सारा राजकुमारवर्ग उसे गलेकी तावीज बनाकर रखना चाहता है। गाँधीने भी एक आँख बेकार कर सिर्फ एक आँखसे राजा रंकोंको देखना चाहा था, किन्तु इन असलके पुतलोंने अपने आदमीको नहीं पहिचाना। वह भड़क गये कि गाँधी हमेशा समाजके कोढ़ (दरिद्रता) को लोगोंको दिखलाता फिरता है, जो जेठकी दुपहरीमें नारूहके टेरने नंगे करनेसे कम खतरनाक नहीं है। हीरा-मोतीकी भालर लटकानेवाली यह सारी गुड़ियाँ आखिर गुड़ियाँ ही रह गई। यदि इनके दिमागमें जरा भी पीली मज्जा काम करती होती, तो समझ लेते कि समाजमें सरक्षक और सरक्षितका भेद "दार्शनिक" तौरसे कायम रखनेवाले गाँधीसे बढ़कर उनका हितैषी कोई नहीं हो सकता। सेठोंकी मोटी तोदें चाहे ज्यादा चर्बीसे भले ही भरी हों, किन्तु उनके मस्तिष्कमें काफी मात्रामें पीली मज्जा है—उन्होंने गाँधीके गुरको समझा। आज यह खादी फंड, गुड फंड, गाँधी-सेवा-फंड, हिंदुस्तानी-फंड, हरिजन फंड सभी फंडोंमें अपने दशांशकी कुछ रूपल्लियोंको फेंकते राम-राज्य कर रहे हैं।

अजमेरके चहबच्चेके कुमार आज राधाकृष्णन्‌की व्याख्याको पढ़ कर फूले नहीं समा रहे हैं। क्या दार्शनिक उड़ान है ! क्या ऋषि जैसी भ्रान्तदर्शिता (क्रान्तिदर्शिता नहीं, भगवान् उससे बचावे !) है !! भारत की अपनी "विशेषता" ! "विशेषता" ! "अपनी अपनी विशेषता !!!" महामहोपाध्याय महिषासुरानंदजी ! आप कोरे भोंदा ही रह गये, "सर्बस खाइ भोग करि नाना। समर-भूमि" में कोई काम नहीं आये। इस ब्राह्मणकी अक्लका हम लोहा मानते हैं। आज इसने हमारी जातिके

पुश्तोंसे रखे नमकका हक अदा कर दिया। यह भारतकी विशेषता ही है, जो कि हम सात सौ छत्रधारी यहाँ निरंकुश शासन कर रहे हैं। दुनियामें क्रान्तियोंका बाजार गर्म है, बड़े-बड़े भारी भरकम ताज म्युजियमकी हाटमें जाकर बिक गये, खुद हमारा सरताज सिर्फ एक अधेड़ औरतके साथ प्रेम दिखलानेके दंडमें दूधकी मक्खीकी तरह निकाल बाहर फेंक दिया गया। किन्तु, हम देखिये, भारतकी छातीपर कोदो दल रहे हैं, एक एक चुम्बन पर बीस-बीस लाखके चेक काट रहे हैं। किन्तु मजाल है कि कोई चूँ करे। अब समझा, यह सब भारतकी "अपनी विशेषता" का प्रताप है। इस विशेषताको हाथसे जाने नहीं देना होगा, जब तक यह विशेषता है, तब तक हम हैं। "जौ लौं गंग जमुन-जल धारा", तब तक इस विशेषताको कायम रखना है। आज यह विशेषता न होती, तो न जाने हम और हमारा रनिवास कहाँ होता! हाँ, रनिवासकी बातका ख्याल करके एक और बात याद आ गई। अनभ्यारे अष्टम एडवर्ड एक तिलाकशुदा स्त्रीसे शादी करना चाहते थे, जिसपर कन्टरबरीके शंकराचार्यका प्रासन इतना गर्म हुआ, कि बेचारे एडवर्डको देश छोड़ भागना पड़ा। लेकिन भारतकी विशेषता देखो—हमारे रनिवासकी चन्द्रमुखियोंकी देखा है—अभी सिर्फ पंद्रहसे ही बाकायदा भाँवर फिरी है, इन्शाअल्लाह, इरादा है, प्रति वर्ष उनकी संख्या जरूर बढ़ानेकी और वे भाँवर ही। मैंने भी अपने दिवंगत नेताके कदमों पर चलना तै कर लिया है—अभी सिर्फ दस ही साथ दे अल्मोड़ासे काश्मीर तककी पहाड़ियाँमें सुन्दरियोंको हेरनेके लिये छोड़ रखे हैं—मैं महसूस करता हूँ, यह संख्या बहुत कम है।—नित्य वही थाल, वही लोटा, वही गिलास, वही बोतल, वही शराब! छी छी यह आदमीका जीवन है, या पशु का!! "गाव तृणमिवारण्ये प्रार्थयामि नवां नवाम् ।"[१] यह भारतकी "अपनी विशेषता"

[१] "जैसे गाय जंगलमें तिनकेको उसी तरह मैं नई-नईयोंको चाहता हूँ।"

है, जो कुमार-कालेजकी पढाई, हरसाल विलायतकी यात्रा, चिकने घड़े पर पानीकी भाँति कोइ असर नहा रखती, और हम निष्कटक अपने रनिवासको सुन्दरियोंकी प्रदर्शिनी बनाते चले जा रहे। इस दीवान साहेब को कहना होगा कि दो लाखका चेक सकटमोचन भेज दिया जाये। "अग्रेजी राज जिन्दाबाद" "भारतकी अपनी विशेषता जिन्दाबाद।"

हाँ, तो यूनानी और भारतीय दार्शनिक-ऋषियोंकी बात बीचम ही रह गई—सिर्फ दोनोंकी शाब्दिक तुलनापर ही जो करतल ध्वनि हुई, उसने मारे हम कहाँसे कहाँ बहक गये। आइये जरा तुलनाके भीतर चलें। इस भूल-भुलैयोंम दूर तक जानेका अवसर नहीं है, इसपर हम दोनों सहमत हैं, और यह खुशीकी बात है। पहिले कालको लीजिये—

भारतीय	काल	यूनानी	काल
गोतम (अक्षपाद)	२५० ई०	अरस्तू	३८४ ३२२ ई० पू०
कणाद	१५० ई०	थेल	६४० ५५० ई० पू०
जैमिनि	३०० ई०	सुकात	४६६ ३६६ ई० पू०
व्यास (बादरायण)	३०० ई०	अफलातूँ	४२७ ३४७ ई० पू०
कपिल	४०० ई० पू०	पिथागोर	५७० ५०० ई० पू०
पतजलि	४०० ई०	ज़ेनो	३३६ २४६ ई० पू०

इस प्रकार कालकी समानतामे कपिल ही पिथागोरके नजदीक हैं, बाकी बेचारे भारतीय दार्शनिक अपने यूनानी तुल्य-बन्धोंके सरनाती भी होने लायक नहा हैं। मेरे लिखे कालके बारेम सदेह हो सकता है, और मैं भी उसे स्वीकार करता हूँ, कि कमसे कम भारतीय दार्शनिकोंके कालम सुधारकी गु जाइश है। आप इस विषयमें स्वय कोशिश कर सकते हैं। यदि ऐतिहासिककी तुला लेकर आप वैसा करना चाहेंगे, तो मेरे बतलाये समयके ही पास पहुँचेंगे। किन्तु यदि आप तुले हुये हैं, भारतको सब विषयोंमें दुनियाका गुरु बनानेके लिये, तब तो आप पाँच

हजार वर्षसे कम पीछे उतरनेवाले हमें, और फिर "अँधेरे सामने रोना अपना दीदा खोना" है। मैं इसका आग्रह नहीं करता, कि सर राधाकृष्णन्‌ने तुलना करनेमें कालका विशेष ख्याल किया होगा, आखिर मैंने भी धर्मकीर्तिकी तुलना कान्ट-हेगेल्से की है, जो कि उनसे १२ सदियों पीछे हुये। अच्छा तो सिद्धान्तकी तुलना कीजिये।

यूनानी	सिद्धान्त	भारतीय	सिद्धान्त
१ थेल (६४० ५२५ ई० पू०)	पानी मूलतत्त्व	कणाद (१५० ई०)	परमाणुवाद
			सामान्य
			विशेष
			समवाय
२ पिथागोर (५७० ५००ई०पू०)	गणित	कपिल (४००ई०पू०)	
	ब्रह्मवाद		अनीश्वरवाद
	आकृतिवाद		प्रकृतिवाद
	संख्या-ब्रह्म		
३ सुक्रात (४६९ ३९९ ई० पू०)	रूढ़िवादविरोधी	जैमिनि (३०० ई०)	घोर रूढ़िवाद
	ज्ञानवाद		कर्मवाद
	देव 'वेद'-निन्दक		वेद-दास
४ अफलातूँ (४२७-३४७ई० पू०)	अनेक विज्ञानवाद	व्यास (बादरायण ३०० ई०)	एक ब्रह्मवाद
	बुद्धिसे ज्ञान		श्रुतिसे ज्ञान
	मौलिक विचारक		उपनिषत् समन्वय

यूनानी	सिद्धान्त	भारतीय	सिद्धान्त
५. अरस्तू (३८४ ३२२ ई० पू०)	केवल तर्कवाद	गौतम अक्षपाद (२५० ई०)	शब्द और समाधि
	ईश्वर सृष्टिकारण		ईश्वर कर्मफल कारण
	जीव एकदेशी		जीव सर्वव्यापक
६ ज़ेनो (स्तोइक) (३३६ २६४ ई०पू०)	तर्क काटेकी झाड़ जैसा, वस्तुवाद अद्वैत अन्तर्यामिवाद अवयव अवयवी वाद	पतञ्जलि (४०० ई०)	सिद्धि समाधिवाद द्वैतवाद

यदि ज़ेनोसे सर राधाकृष्णनका अभिप्राय इस स्तोइक (संयमवादी) ज़ेनोसे नहीं, बल्कि एलियाटिक ज़ेनो (४९० ४३० ई० पू०) से है, तो वह अद्वैतवादी था, जब कि पतञ्जलि द्वैतवादी।

इस प्रकार सर राधाकृष्णनने समकक्षता स्थापित करनेमें दोनों देशोंके दार्शनिकोंके काल और विचारकी पूरी अवहेलना की है। नामोंमें अनुप्रासका ख्याल किया हो, यह भी बात नहीं है। ज़ेनोको उन्होंने पतञ्जलिके जूएमें रखा है, हालाँकि अनुप्रास मिलानेके लिये ठीक था—"ज़ेनो जैमिनि जोड़ी, एक अंधा एक कोढ़ी।"—स्तोइक (संयमी योगी) ज़ेनोको कोढ़ी कह लीजिये और ज्ञान विरोधी घोर कर्मवादी जैमिनिको अंधा। हाँ, शायद दोनों देशोंके दार्शनिकोंकी शकलमें समानता हो सकती है, जिसके बारेमें मैं अपने भारी अज्ञानको स्वीकार करता हूँ, मुमकिन है, सर्वपल्लीके पास १ दर्जन फोटो अदियारसे पहुँच गये हों।

(२) धर्म सर्वोपरि—सर राधाकृष्णनको 'सारी' दुनिया भारतके महा
दार्शनिकके तौरपर मान करती है। किन्तु, आक्सफोर्डने एक छोटी-मोटी
धर्मकी गद्दीपर बैठानेका निश्चय जब बुढ़िया पूँजीवादीने किया, तो कुछ
लोगोंको सन्देह हुआ कि दार्शनिकको धर्मकी गद्दी देना अन्याय है—
यूरोपमें धर्मको दर्शनसे उसी तरह छोटे दर्जेका समझा जाता है, जिस तरह
दर्शनको साइंससे। सर राधाकृष्णनको भी, हो सकता है, यह बात खटकी
हो। यह भी मुमकिन है अंग्रेजी थैलीशाहोंको भारतमें किसी भी दर्शनके
होनेका पता ही न हो, या हो सकता है, उनकी खोपड़ीमें भर गया हो कि
भारतीय दिमाग उनकी दी हुई पदवियों और टुकड़ोंके लिये सिर्फ दुम
हिलाना जानता है। हम अफसोस है, हमारे देशकी इस छोटी कोठरीके
आँगनके ऊपर जितना आसमान खुला हुआ है, उससे झाँकनेवाले
चेहरोंमें ज्यादातर ऐसे ही हैं। पूँजीवादोंने चाहे किसी तरहसे भी हमारे
दार्शनिकको धर्म-चर्चाके लिये बुलाया हो, किन्तु वह है धर्म चर्चा करने
ही योग्य। इसके लिये हम अभी सबूत पेश करनेवाले हैं, लेकिन उससे
पहले एक और बात याद आ गई। कितने ही लोग—हाँ, भारतके
अंग्रेजी शिक्षितोंमें ही—यह समझनेकी बहुत भारी गलती करते हैं कि
सर राधाकृष्णन जबर्दस्त दार्शनिक हैं। इस बातमें एक तरुण हिन्दी
लेखक बुरी तरहसे फँस गया। इस लेखककी कलम और प्रतिभा दोनों
की मैं दाद देता हूँ, भाषापर उसका अधिकार है। वह इतना साधन
सम्पन्न है कि भविष्यके लिये हम यदि उसपर ज्यादा आशा बाँधें, तो
अनुचित न होगा। उसने दर्शनके इतिहासपर जो पुस्तक लिखी है, उसमें
२३ २४ पृष्ठोंके अतिरिक्त, बाकी चार सौ पृष्ठ इतने अच्छे लिखे हैं कि
उन्हें पढ़कर बड़ी खुशी हुई—वर्तमानको ही देखकर नहीं, भविष्यका भी
ख्याल करके। लेकिन, वह २३ २४ पृष्ठ कैसे लिखे गये हैं, इसके बारेमें
मैंने उसी पुस्तक पर नीली पेंसिलसे लिखा—"अयशस्कलक"। उन
२३ २४ पृष्ठोंसे गुजरना मेरे लिये उतना ही मुश्किल हो गया, जितना

कि गोपरके रयावामें नंगे पैर आदमीके लिये चलना। और फिर यह भी ख्याल रखिये, पैरसे सिरकी पीड़ा ज्यादा दुस्सह होती है। आप समझते होंगे, मैं उस तरुण पर जल रहा हूँ। नहीं, मैं तो समझता हूँ, एक दिन उन पृष्ठोंको पढ़ने हुए उसे भी वैसी ही पीड़ा होगी—मैं आशा करता हूँ, तरुणने इस पुस्तकसे अपने दार्शनिक अध्ययनके जीवनका आरंभ किया है, और वह अपनेको अधिक साधन सम्पन्न बनानेकी कोशिश करता रहेगा। जानते हैं वह पृष्ठ किस दर्शनपर है? बौद्ध दर्शन पर, और बौद्ध दर्शनके भी उस कालपर जो कि बौद्ध ही नहीं, भारतीय दर्शनका भी सुनहला काल है—यानी, नागार्जुन (१७५ ई०) से शान्तरक्षित (७४०-८४० ई०) तकका काल। भारतीय दर्शनमें जो बौद्ध दर्शनके भारी महत्त्वको नहीं समझता, उसे दर्शनको दूरसे प्रणाम कर लेना चाहिये। उस दर्शनको समझनेकी जो कोशिश नहीं करता, और भारतीय दर्शनपर पोथे लिखना चाहता है, उसके लिये क्या कहना चाहिये? मैं यह नहीं कहता कि उसे छोड़कर आपको कलम ही नहीं उठानी चाहिये, कलम उठाइये, किन्तु सारे भारतीय दर्शनको मत समेटनेकी कोशिश कीजिये। तरुणने जो गलती की वह अपने दोषसे नहीं, यह सबसे आश्चर्यकी बात है। मुझे उम्मीद है, यदि उसने स्वयं जो कुछ संस्कृतके मूल ग्रंथों और उद्धरणोंमें पढ़ा था, उतने ही पर इन २४ पृष्ठोंको लिख डाला होता, तो पुस्तकमें यह कलंक न आने पाता। किन्तु, अफसोस है, अंधा न होते भी उसने अपनी आँखें बंद कर लीं और दूसरे अंधेकी अंगुली पकड़ ली। आप खुद समझ सकते हैं, ऐसे आदमीकी क्या गति होनी चाहिये।

सर राधाकृष्णन्के "भारतीय दर्शन" के दोनों पोथों पर जगह जगह बौद्ध-दर्शनसे कोरे होनेकी छापोंकी भरमार है। साथ ही मालूम होता है, लेखकके दिलसे "दैव राजा" का डर बिलकुल उठ गया था, और उसे ख्याल नहीं आया कि "कालो ह्ययं निरवधिर्विपुला च पृथिवी।" मुझे

उम्मीद है यदि सर राधाकृष्णन्‌के दिलमें यह ख्याल आया होता, कि उनकी पुस्तक सिर्फ आपकी ही पीढ़ीके सामने नहीं जा रही है, बल्कि आगेवाली पीढ़ियोंके हाथमें भी उसकी कोई न कोई जिल्द पहुँच जायगी; तो फिर वह इस लीपा-पोती, इस दर्शनके विवरणके नामपर सत्यका नहीं सम्प्रदाय और स्वार्थका प्रोपेगेंडा करनेकी कोशिश न करते।

लेकिन, एक बातमें मालूम होता है—हम दोनों एक ही मर्जके मरीज हैं। जैसे "होस-पोटपर वैदराज" बन मैंने दर्शन पर कलम फेरनी चाही है, वैसे ही राधाकृष्णन् भी परम पड़ गये—फर्क इतना ही है कि मेरी नगी अल्पज्ञता किसीको गढ़ेमें नहीं गिरा सकती, और जब तक हिन्दीके अधिकारी लेखक स्वयं इस तरफ ध्यान नहीं देते, तबतक यह पंक्तियाँ पाठकोंको कुछ बातोंके समझनेमें सहायता पहुँचा सकती हैं, किन्तु, सर राधाकृष्णनकी सर्वज्ञता कितनी खतरनाक है, इसका उदाहरण अभी यह तरुण लेखक आपकी आँखोंसे ओझल नहीं हो पाया है।

वस्तुत, सेवाग्राम और सकटमोचनम इतना भद हम गलतीसे कर रहे थे, आक्सफर्डवालोंने सही परख की, इसके सबूतके लिये पढ़िये—

"(चारों ओरसे) मार पड़ने पर बुद्धि भक्ति (की गोद) में शरण ले सकती है। उपनिषदोंके ऋषि पवित्र आत्माकी पाठशालाके महान् अध्यापक हैं। वह हमें ईश्वर और आत्मिक जीवनके ज्ञानके बारेमें बतलाते हैं[1]।"

दो मोटी-मोटी जिल्दोंको लिखनेमें उनकी लेखनीने फजूल ही परिश्रम किया, असल तत्त्व तो इस एक पंक्तिमें है—"मार पड़ने पर बुद्धि भक्ति[2] म शरण ले सकती है।" सकटमोचनके वाबाने ही अनपढ़का ठीका थोड़े ही ले लिया है? काशीके दूसरे छोर पर भी एक अनपढ़ पंडित रहता था, जिसका कहना है—

"पोथी पढ़ि-पढ़ि जग मुआ, हुआ न पंडित कोय।
ढाई अच्छर प्रेमका, पढ़े सो पंडित होय॥"

---

[1] Indian Philosophy vol II p 19 [2] Faith

राधाकृष्णन् यथा नाम तथा गुण भक्तिमार्गी हैं। ठीक संकट-मोचनके पुराने बाबाके हम् पियाला हम् निवाला—वही उसीको मिलती है, जो कि उसके लायक होता है।

आप गुस्सा होकर कहेंगे—तर्क वितर्क छोड़िये, आपही बतलाइये, मार पड़ने पर बुद्धि कहाँ शरण लेने जाय? मैं कहूँगा—शरण लेना कायरोंका काम है, उसे जूझ मरना चाहिये। बुद्धिपर मार पड़ रही है, आगे बढ़नेके लिये, और जो बुद्धि ज्यादा अग्रसर है उसपर मार पड़ती भी नहीं। सिकरौलसे कितनी ही बार आप एक्केपर गये होंगे। आपही बताइये, मार किसपर पड़ती है? आप नाम नहीं लेंगे, मैं भी नहीं लूँगा, किन्तु, यह बात साफ है कि तेज रफ्तार बुद्धि पर कभी मार नहीं पड़ती, और न उसे किसीके पास शरण लेनेकी जरूरत होती है। वैसी बुद्धिके लिये प्रयोगका राजपथ सदा मौजूद है, इसे हम बतला आये हैं। रही, "पवित्र ज्ञान-पाठशाला"के महान् अध्यापकोंके ज्ञानकी बात। उसके बारेमें हम दूसरी जगह कह आये हैं[1], जिसे यहाँ फिर दुहराना नहीं चाहते, हाँ, ऋषियोंके बारेमें अनन्त निद्रा विलीन अपने चिरसंगी जायसवालकी एक कथा जरूर याद आती है, जो आपकी सेवामें अर्पित है।—

सत्यव्रत सामाश्रमी कलकत्तामें संस्कृतके एक अच्छे पंडित थे—खासकर वेदकी संस्कृत (छन्दस्)में उनकी योग्यता बहुत ऊँची मानी जाती थी। गुरुकुल काँगड़ीवालोंने एक बार अपने जलसेमें उन्हें किसी परिषद्का सभापति बनाकर बुलाया। सामाश्रमीजीने वेदार्थपर स्वामी दयानन्द और 'निरुक्त' की प्रशंसा करते हुए एक सारगर्भित भाषण दिया। आर्य समाजके उस वक्तके टुटपुँजिये विद्वानोंपर उसका क्या प्रभाव पड़ा, यह तो नहीं कहा जा सकता, किन्तु, तीन तरुण संस्कृतज्ञोंपर उसका इतना असर पड़ा कि वह सामाश्रमीके गिर्द गुड़की मक्खी बन गये। सामाश्रमी अपनी वेदज्ञताको आर्य-समाजके वातावरणमें लिए

[1] "दर्शन दिग्दर्शन"

तल तक पहुँचा चुके थे, उससे पीछे उतारना वापके लिये मुश्किल था। तलसे उतारनेका सवाल तो दूर, वहाँ 'हाँ' 'हाँ' में वह कुछ सीढ़ी और ऊपर टँग गये। तीनों तरुणोंने आग्रहपूर्वक कहा—"गुरुजी इस ज्ञानको फैलाइए।"

—"फैलानेकी तो मुझे भी अत्यन्त इच्छा है। मैं भी रात दिन चिन्तामें पड़ जाता हूँ, कि कहीं इतने परिश्रमसे उपार्जित यह वेद विद्या मेरे साथ ही न चली जाय। लेकिन, अधिकारी शिष्य मिलें तब न!" ठीक उपनिषद्के ऋषियोंके स्वरमें इन वाक्यों—शब्द नहीं, भाव ही कहूँगा, क्योंकि वहाँ भाषण सारा अंग्रेजीमें हो रहा था—सुनकर तीनों शिष्य गद्गद हो गये, और उन्होंने भारी प्रतिज्ञायें दे, गुरुको अपनी सेवासे प्रसन्न कर, भगवती वेद विद्याके ग्रहण करनेका पक्का इरादा प्रकट किया। सामाश्रमीजी तीनों नये रँगरूटोंको ले कलकत्ता पहुँचे। कुछ दिन-सप्ताह—तो ऐसे ही बातचीत, सत्संग होनेमें चले गये। फिर पढ़ाई शुरू हुई। आर्य-समाजी शिष्योंने समझा था कि गुरुजी ऐसी कुञ्जी बतलायेंगे, जिससे यदि सारे साइंस वेदमें न समाने लगें, तो कमसे कम जगह जगह जो वेदोंमें इतिहास—देशों, नदियों, राजाओं, रानियों, ऋषियों, ऋषिकाओंके नाम तथा वृत्त—मिलते हैं, और जिनकी वजहसे वेदको दो अरब वर्ष पहले हो जाना सम्भव नहीं, इसका तो कोई समाधान निकल आयेगा। सामाश्रमीजी शिष्योंके अभिप्रायको समझते थे, इसलिये पहले बचते हुए उन्होंने पाठ पढ़ाना शुरू किया, किन्तु शिष्य कोई दुधमुँहे बच्चे न थे। अन्तमें उन्होंने यह कहकर पाठ कुछ दिनोंके लिये बंद रखा कि इस तरहके गहन वेदार्थके लिये गुरुको भी कुछ साधना करनी पड़ती है। एक दिन गुरुने जोर शोरसे आसनपर पद्मासन मार शिष्योंका आवाहन किया। शिष्य प्रसन्न हो सामने जा मौजूद हुए। वेदार्थ शुरू हुआ। एक मन्त्रपर पहुँचे, अर्थ कुछ इस तरहका हुआ, जिससे वेदकी अनित्यताका ही डर नहीं हो गया, बल्कि

वैदिक ऋषिके मुँहसे निकली ऊट पटाँग बात पकड़ी गई। शिष्याने अहस करते हुए कहा—"ऋषि होकर ऐसी गलत बात क्या कही !"

सामाश्रमीजीने चट अपनी तोंदपर हाथ फेरते हुए कहा—"इसीके लिये, उनके पास भी यह (पेट) मौजूद था।"

तीनों शिष्योंके दिलको भारी धक्का लगा, इसमें शक नहीं, किन्तु सामाश्रमीजीकी बात सोलहों आना सच थी, इसमें राधाकृष्णन्को छोड़ किसीको भी सन्देह नहीं हो सकता। सामाश्रमीजीमें वह योग्यता थी, जिससे वह हारिद्रुमत गौतम, सत्यकाम जाबालकी पंक्तिमें जा जूठन गिरा सकते थे, जबकि राधाकृष्णन् गरीबसे वे ऋषि अपने जूतेका तसमा भी नहीं खुलवाते।

३ धर्मसार

(१) आत्मा और दिव्य शक्तिकी कल्पना—धर्मका सार है, किसी अलौकिक शक्तिमें विश्वास। यह विश्वास या भक्ति किसी ऐसी एक शक्ति (ईश्वर)में भी हो सकती है, और अनेकोंमें भी, वह भक्ति अधिक स्थूल—आरण्यक मानव जैसी—भी हो सकती है, और सर राधाकृष्णन् या गाँधीजीकी जैसी सत्य शिव-सुन्दरसे अनुप्राणित भी। शक्ति, आत्मा, देवताका यह ख्याल न आस्मानसे टपका, न आत्माकी आवाजसे। इसकी उत्पत्तिका कारण उस समयके समाजका आर्थिक ढाँचा था, जिसमें कि वंश-गोत्रका महापितर (दादा) या महामाता (महामाई) जीवन-सामग्रीके उत्पादन, आत्मरक्षा तथा परलुंठनमें वंशका नेतृत्व करते थे। आरंभिक समाजमें जो श्रम विभाग हुआ था - पत्थर, लकड़ी, हड्डीके हथियारोंकी सहायता प्राप्त होनेपर वैसा होना जरूरी थी। उस समय इस श्रमके सञ्चालनके लिये जो व्यक्ति सबसे आगे था, वह वही हो सकता था, जो कि उत्पादक श्रम—जानवर, मछलीके शिकार, जाल बुनना, हथियार बनाना आदि—में सिद्धहस्त था, जो शाखा, युद्ध-सञ्चालन कर सकता था, जो परिवारके कामकी योजना आगेसे बना

उसे प्राय सफल करा सकता था। ऐसे व्यक्तिका समाजमें सबसे ऊँचा स्थान होना जरूरी था, क्योंकि वह उन वस्तुओंको पहले अपने दिमागमें तैयार कर लिये रहता था, जिन्हें कि दूसरे उसकी देखरेखमें सिर्फ साकार रूप देते थे।—वह विधाता था, दूसरे उसके आज्ञाकारी अनुचर। वह इच्छा करता था, और दूसरे उसकी इच्छाके अनुसार चलनेवाले। श्रमका यह सफल विभाग आदिम मानवोंके मनमें इतना गड़ गया था, कि हर जगह उन्हें यह रूप दिखलाई पड़ता था—आखिर आजकल हिन्दुओंके राम-नाम बैंकको भी वणिकोंने अपने कारबारके तजर्बेसे ही धर्म खातेमें दाखिल किया है। और हम उन्हें एक वर्गके भीतर बहुत सफलतासे चलते भी देखते हैं। आदिम समाजके इस रूपने स्वयं मानवका आत्मा और शरीर दो भागोंमें बाँटा—आत्मा शरीरका संचालक है, और इसीलिये वह शरीरसे श्रेष्ठ तथा उसका स्वामी है। इसी ख्यालको लेकर मांडूक्य उपनिषद् और गीतामें शरीरको रथ तथा आत्माको रथी (योद्धा) की उपमा दी गई है। अरस्तूने आत्माको स्वामी और शरीरको दासोंसे उपमा दी है—अरस्तूके समय यूनानमें स्त्री पुरुषोंकी बेंच-खरीद आम थी, और दासोंका काम सिर्फ मालिककी आज्ञाको पालन करना, उसकी सेवा करना था।

जिस तरह श्रम विभागके देखनेसे लेकर चलते फिरते काम करते शरीरके संचालनके लिये उससे पृथक् एक आत्माकी कल्पना की गई, उसी तरह उन्हें विश्वमें हरएक वस्तुके पीछे आत्मा दिखाई पड़ने लगा, जिसे कि उस वस्तुका आत्मा—अभिमानी देवता—कहा जाने लगा। वेदके देवता इसी प्रकारके अभिमानी देवता हैं, और वह सूर्य, चन्द्र, आकाश, द्युलोक, जल,थल सबमें अलग अलग अपना आसन जमाये उनका संचालन कर रहे हैं। [यही आदिम-मानवकी कल्पना याज्ञवल्क्य (६०० ई० पू०) के सामने थी, जिसे कि उसने अलग-अलग अभिमानियोंको मिलाकर एक अन्तर्यामी ब्रह्मके रूपमें परिणत कर दिया]

उस समयके मानव अथवा आज भी जो जातियाँ उस अवस्थामें हैं—के भीतर कोने-कोनेमें भूत प्रेत देवताका विश्वास जो इतना ज्यादा पाया जाता है, उसकी वजह यही थी।—यह है वह कारण-सामग्री जिसने धर्मको पैदा किया। महापितर या महामाताका ख्याल इस सबकी जड़में था। इसलिये अलौकिक शक्तिकी कल्पना भी इन्हीं दो रूपोंमें की गई। मातृसत्ताक समाजके सबसे पुराने होनेसे मातादाईका धर्म ही सबसे पहिले अस्तित्वमें आया—जिसके कि प्रमाण सिन्धु, नील, दजला फ़ुरातकी उपत्यकाओंके प्राचीन धर्मोंमें बहुत ज्यादा पाये जाते हैं। हिन्दुओंकी काली-दुर्गा उसी मातृसत्ताक नमूनेपर बने धर्मके अवशेष हैं, ईसाइयोंमें माता मरियम्, महायान बौद्धमें तारा, जैनोंमें चक्रेश्वरी सभी आद्यामाता (मातृसत्ताक परिवारकी सचालिका माता) की प्रतीकें हैं।

मातृ-सत्ताक या पितृसत्ताक समाजमें जीते-जी जो नेतृत्व कर रहे थे, मरनेके बाद भूत प्रेत देवतासे भरे जगतमें, विशेषकर रातके अँधेरेमें, इन मृत नेताओंका "दर्शन" होना स्वाभाविक था। फिर उनके लिये चौतरे तथा बलिका प्रबन्ध लाजिमी ही था।—आखिर, जीवनमें जिस तरह वह गाढ़े वक्तमें काम आते थे, अपनी बुद्धिमत्ता, वत्सलतासे अपने बाल गुपालोंको वह अब भी उतना ही फायदा पहुँचा सकते तथा पहुँचाना चाहते थे, जरूरत इतनी ही थी, कि जीवनमें उनके लिये जो प्रिय वस्तुयें थीं, अब भी वह उनके सामने बलिके तौर पर पेश की जायें। महापितर और महामाताकी प्रेतात्माओं—दिव्यात्माओं—के साथ ही लोग उनके सहायकों—सेनाओं—को भूल नहीं सकते थे, आखिर मरनेके बाद भी तो यह दिव्यात्मायें अकेली सोम या सुरा पीनेमें आनंद अनुभव नहीं कर सकती थीं, न अकेली नाच-गा सकती थीं, फिर चाहे सन्तान अनुसन्तान न भी पैदा करें, किन्तु सभोगके आनंदसे तो वह अपनेको वंचित न कर सकती थीं। इन सबके लिये पृथिवीपर मौजूद मानव-समाजकी एक पूरी नक़ल दिव्यात्मा-समाजके रूपमें तैयार की गई। इस पुराने

मिस्र, बाबुल, यूनान और भारतके ग्रन्थोंके पढ़नेसे जानते हैं, कि एक समय था, जब कि मनुष्य-लोककी भाँति देव-लोक भी पृथिवी पर ही—बल्कि उसके पड़ोसमें था, और अक्सर दोनों लोकोंके स्त्री पुरुष देव ही आपसमें रामा-राम करते थे, जैसे किसी दो ग्रामोंके लोग। यही नहीं हर देशके पुराने वीरोंमें, महापुरुषोंमें, ऐसोंकी संख्या काफी पाते हैं, जो कि देव-कन्या या देव पुत्रको बताते थे। उस वक्त अभी मानवकी संख्या कम थी, पृथिवीका बहुत अधिक हिस्सा जंगल, गैर आबाद और अज्ञात था, वहाँ दिव्यात्मायें भी वास कर सकती थीं, किन्तु जैसे जैसे मनुष्यकी संख्या और ज्ञान बढ़ता गया, वैसे ही वैसे देवताओंको पृथिवी छोड़नेपर मजबूर होना पड़ा।

(२) *थ्योसोफी और सती-समाज*—तिब्बत अभी तक बिल्कुल दुनियाके सबसे अज्ञात देशोंमें था, इसीलिए देववादियोंने वहाँ देवनगर बसाये, श्वेत परिषदें[1] कायम कीं, दुनियाके लोगोंको दैवयिक तौरसे पथ प्रदर्शन करनेवाले महात्माओंके लिये अनेक हेड-क्वार्टर या छावनियाँ बनाईं।—आपको यह सुनकर ताज्जुब होगा, मगर कितनोंहीं शिक्षितों ने मुझसे बड़ी गम्भीरताके साथ पूछा था, कि इन देव-परिषदों और महात्माओंके बारेमें आपने तिब्बतवालोंसे क्या सुना? जब मैंने रोषको भीतर ही दबाकर कहा कि वहाँके लोगोंको इन देव-परिषदों तथा महात्माओंका कुछ भी पता नहीं है, तो एकाधने यहाँ तक कहनेकी धृष्टता की कि तब आप उस इलाकेमें नहीं गये होंगे। उन सज्जनोंको यह विश्वास दिलाना मुश्किल था कि मैं "महात्मा" कुत्-हूमी (कोयूमी) और लालसिंहके केन्द्र तथा 'महाचोहान'के इलाके शिगर्चे और टशील्हुन्पो में अनेक बार पड़ा और महीनों तक रहा हूँ—यह वही जगह है, जहाँसे उक्त महात्मागणने सिनेट और दूसरे थ्योसोफिस्टोंको कितने ही पत्र और संदेश भेजे थे। एक शब्द थ्योसोफी शब्दके बारेमें भी—थ्यो देवका ही

1 White Lodge

दूसरो पयाय है । सोर्डाको पॉपी कहनेवाला आपके मित्रोंमें कोइ मिल सकता, इस प्रकार आप समझ सकते हैं कि "साइंस समाश्रित इस नान् धर्मका" यह नया नामकरण नहीं, बल्कि सिर्फ हिन्दीकरण मात्र है। मुझे उम्मीद है, थ्योसोफिस्ट सज्जन इसका प्रचार कर पुण्यके भागी नेंगे। ■ उन आदमियोंमें हूँ, जो कि देवपाँपी समाजको धर्मका चरम रूप मानते हैं। धर्मने यहाँ आकर अपनी पूर्णता प्राप्त की, धर्मके लिये इससे आगे बढ़नेके वास्ते अब एक सीढ़ी भी नहीं रह गई। कृष्ण "शब्दों" में धर्मका इस गाढ़े वक्तमें यह स्वयं इस समाजके रूपमें अवतीर्ण हुए।" इस समाजने अपने थोड़ेसे समयके जीवनमें जितने लोगोंको "गुमराह" होनेसे बचाया, उतना किसीने नहीं किया होगा। और पूर्व-पश्चिम, उत्तर-दक्षिणके धार्मिक विचारोंका जो गंगा-सागर संगम इसने रचाया, उसे देखकर तो तबीयत अश् अश् करने लग जाती है। सबसे बड़ी "सेवा" जो देवपापी समाजने की है, वह है देवताओंको फिरसे मर्त्यलोकमें लाना ही नहीं, बल्कि उनका दर्शन कराना, उनका शब्द सुनाना, उनका गंध सुँघाना, उनका रस चखाना, उनका स्पर्श कराना।—देवगण बिलकुल इन्द्रियगोचर हैं, इसे उसने सैकड़ों देव-फोटो चित्रोंसे साबित कर दिया। आज इस समाजके प्रतापसे आप देवताओं, दिव्यात्माओं, प्रेतात्माओंसे उसी तरह बातचीत कर सकते हैं, जैसे मुझसे। और फिर "नदिया एक घाट बहुतेरे" के महामन्त्रको इसीने वस्तुतः पूरी तौरसे कार्यरूपमें परिणत कर दिखाया।

(*सखी-समाज*)—सखी-समाजमें आप लोगोंको नाना भाँतिसे भगवत्-उपासना करते पायेंगे। कोइ पुरुष होते भी अपनेको भगवान्की पत्नी समझता है, परिणीता नहीं तो रखेली होने पर भी वह सन्तोष करनेके लिये तैयार है। हर मास उसे मासिक धर्म होता है, और वह नियमपूर्वक तीन दिन तक "कपड़ेसे" रहता है। हर रात भगवानको "लेकर" सोता है, इस लालसासे कि भगवान् अपने जैसी एक मेघश्याम सन्तान

प्रदान करें, किंतु प्रकृति भगवान् तथा भक्तिनजीके काममें भारी बाधक है, और दोनों उसका कुछ कर नहीं सकते। इन "तरुणी" तथा "वृद्धा" "सखियों" के फोटोचित्रोंको देखकर आप अपनी आँखोंको तृप्त कर सकते हैं, लेकिन अब जमाना फोटोका नहीं चल चित्रोंका है, मैं देवफोंफीकी शाखा, इस सखी समाज—जिसकी संस्था बिहारमें कायम है—से निम्न प्रार्थना करूँगा कि समयकी गतिसे चलें, और चल चित्र—सिनेमा—द्वारा अपने ही प्रान्तकी नहीं अपने गुरुद्वारों—अयोध्या, वृन्दावन—की बड़ी बूढ़ी "सखियों" तथा उनकी "तरुण परिचारिकाओं" का भी उनके स्वाभाविक पोज—भावभंगी—हाव भाव-कटाक्ष—तथा स्त्रैण मृदुभाषणके साथ फिल्म उतरवायें। ऐसे फिल्मसे भारी लोक-कल्याण होगा। नवधा भक्तिका फौव्वारा घर-घरमें फूट निकलेगा, जिसमें डर इतना ही मालूम होता है, कि वास्तविक स्त्रियाँ कहीं कुयें में कूदकर आत्महत्या न कर डालें।

हाँ, मैं यहाँ इतना जरूर कहूँगा कि सखी-समाज देवफोंफी समाज का न अभिन्न अंग है, न उससे सम्बद्ध है, उसने परीक्षक विश्वविद्यालयों की भाँति उसे स्वीकृति भर दी है, किन्तु सैकड़ा सखी-समाजी देवफोंफीके सरगर्म सदस्य तथा नेता हैं, इससे वह इनकार नहीं कर सकती।

देवफोंफीका विस्तार सारी पृथिवीपर है, इसके विशाल साम्राज्यमें "सूर्य कभी नहीं डूबता" की कहावत चरितार्थ होती है। उसके सारे सदस्य "आँखके अंधे गाँठके पूरे" नहीं हैं, और न सभी चतुर शिरोमणि हैं, यह मैं मानता हूँ, किन्तु उसके नटनागरों और [illegible]की कलायें दर्शनीय होती हैं, इसमें सन्देह नहीं। लेकिन, आप मुझसे आशा न रखिये कि मैं इन कलानिधियों तथा उनके अड्डोंकी सैरके लिये आपका पथ प्रदर्शक बनने जा रहा हूँ। एक वाक्यमें मैं कहना चाहता हूँ—कि देवफोंफीके रूपमें भगवान् धर्म अपनी सोलह कलामें अवतीर्ण हुए हैं।

(३) दुनियामें देव-कल्पना (१) बाबुल—एक जर्मन प्रोफ़ेसर लिखता है— "(धार्मिक कल्पनायें) सामाजिक राजनीतिक कल्पनाओं तथा संस्थाओंके सिर्फ़ दर्पण (प्रतिबिंब) मात्र हैं।"[1] प्राचीन बाबुलमें अनु, एनलिल्, एआ, सिन्, शम्श (सूर्य) आदि देवता पूजे जाते थे। इन बड़े देवताओंके साथ कितनी ही दिव्य (इगीगी) तथा भौम आत्मायें (अनुनाकी) भी थीं, जिस तरह हिन्दुओंमें बड़े देवताओंके साथ लाखों देव-परिवार, ग्राम देवता और कुल देवता। बाबुलमें जिस तरहका राजतंत्र उस वक्त प्रचलित था, उसीकी नकलपर देव-समाजमें भी राजतंत्र कायम था। जैसे-जैसे बाबुलके पार्थिव मानव-समाजमें परिवर्तन होता गया, उसी तरह वहाँके देव समाजमें भी परिवर्तन करना पड़ा। सामन्तोंमें जिस तरह बाबुलका महासामन्त या बादशाह प्रधान और सर्वशक्तिमान् माना जाता था, उसी तरह बाबुलका देवता मर्दुक सर्वशक्तिमान देवातिदेव बना। मर्दुक देवातिदेव बननेसे पहिले सुमेरीय जातिका जातीय देवता था, जिसे वे लोग वसन्तका अधिष्ठाता मानते थे। हम्मूरब्बीके राजशासने अपनी प्रधानताके समय मर्दुकको महा देव बनाया। इससे पहिले एनलिल् पृथिवी और आकाश (धारा पृथिवी) का स्वामी था, जिसे कि मर्दुकके लिये अपना सिंहासन छोड़ना पड़ा। एआ सृष्टिकर्त्ता (ब्रह्मा) था, उसका अधिकार मर्दकको कैसे दिलाया जाय, इसके लिये एक पौराणिक कथा गढ़ी गयी, जिसमें साबित किया गया कि सुमेरीय मर्दुक बाबुली एआका ज्येष्ठ पुत्र है। राजाका पुत्र उत्तराधिकारी होता है। बाबुलकी राज्य-व्यवस्थाके पूर्णतया एक राजाके हाथमें आ जानेपर उसका प्रभाव वहाँकी देव मण्डलीपर जो पड़ा, उसे ही हम मर्दुककी सर्वेश्वरता तथा सर्वदेवमयतामें देखते हैं। इसीलिये बाबुली पुराणमें मिलता है—"निनिब् बलका मर्दुक है, नेर्गल युद्ध का मर्दुक,

[1] Professor Achelis (Soziologie in Sammlung Goschen Leipzig 1899 p 85)

एनिल् प्रभुताका मर्दुक।" मर्दुककी निम्न स्तुतिको देखनेसे मालूम हो जायगा कि उसकी कल्पनामें बाबुलके राजाकी कितनी नकल है—

"ईश्वर, देवताओंके शासक! द्यावा पृथिवीके अकेले महान् राजा! आपने पृथिवीको सिरजा, मदिरोंकी प्रतिष्ठा की, और नामकरण किया। पिता! आप देवों मनुष्योंके जनक हैं। महान् नेता! जिसकी रहस्यपूर्ण गहराईका पता किसी देवताको नहीं लगा। पिता! (आप) सभी सरोंके स्रष्टा हैं। शासक! आप ही हैं जो कि द्यावा-पृथिवीके भाग्य के प्रेरक हैं, जिसका शासन अलंघ्य है, जो सर्दी गर्मी प्रदान करता है, प्राणियोंपर राज्य करता है। कौन देवता है आपके जैसा दूसरा? द्यु (नक्षत्र) लोकमें कौन महान् है? सिर्फ आप ही। और पृथिवीमें कौन महान् है[2]? (आपही)। जब देवलोकमें आपका शब्द प्रतिध्वनित होता है, तो इहीही (सुरगण) धरती पर पड़ जाते हैं, जब वह पृथिवीपर प्रतिध्वनित होता है, तो अनुनाकी (भौम देव) धरतीको चूमते हैं। ईश्वर! पृथिवी और देवलोकके तुम्हारे राज्यमें तुम्हारे भाई देवताओंके बीच कोई ऐसा नहीं है, जो कि तुम्हारे समान हो।"[3]

(ग) *यूनान*—पुराने यूनानियोंकी सारी शासन तथा समाज-सबधी व्यवस्थायें एवं आचार विचार उनके देवताओंमें मौजूद थे। जेउस् (द्यौ) देवताओंका देवपितर था, देमेतेर (द्विमातर?) कृषिकी देवी, हेर्मस् व्यापारका देवता, और हेलियोस् (सूर्य) उदार व्यवसायोंका अधिष्ठाता था। ईसा पूर्व पाँचवीं सदी अथेन्स (यूनानकी प्रधान नगरी) के वैभवका मध्याह्न काल था, अथेन्स दुनियाके व्यापारकी रानी थी, और वहाका शासन व्यापारियोंके प्रजातंत्रके हाथमें था, जिसमें स्त्री पुरुषोंका क्रय विक्रय कानूनन् विहित ही नहीं, बल्कि अथेन्सके वैभवका

[1] "प्राचीन प्राचीका इतिहास" (रूसीभाषा,) प्रोफ़ेसर तुरायेफ़ (जिल्द १ पृष्ठ १२७) [2] फारसीका शाह और संस्कृत शास एक ही शब्द है। [3]वहीं पृष्ठ १८४।

बहुत दारमदार दास प्रथा पर था। इस ढाँचेको धारण करनेके लिये धर्मकी कितनी जरूरत थी, यह उस समयके कवि सापोक्लस्की इस सम्मतिसे मालूम होगा, जिसके अनुसार "सारा जगत् ध्वस्त हो जायगा यदि धर्म उठ गया, क्योंकि सभी आचार और राज्य-संबंधी व्यवस्थायें देवताओंकी इच्छापर निर्भर हैं"[1] उस वक्तके शासनच्युत सामन्तवंशज तथा उनके अनुयायी यूनानकी तत्कालीन धर्म-व्यवस्थाका विरोध करते थे, क्योंकि इस विरोध द्वारा वह शासकवर्गका विरोध कर सकते थे। सुक्रात देवताओंका विरोध करके यही कसूर कर रहा था, जिसके लिये अथेन्सके व्यापारी शासकोंने उसे जहरका प्याला पीनेके लिये मजबूर किया।

(iii) *प्राचीन स्लाव*--रूसी, बुल्गर आदि जातियोंके पूर्वज--प्राचीन स्लाव लोगों-में देवकल्पना उनके अपने ही समाजकी प्रतिच्छायाके तौर पर देखी जाती है। पितृपूजा, जातीय देवताओं, गृह देवताओं, व्यवसाय संबंधी देवताओंकी पूजा उनके धर्मका स्वरूप था। योद्धा और व्यापारियोंका इष्ट तथा बिजली(अशनि)का देवता पेरुन वैदिक इन्द्रकी भांति बहुत ऊँचा स्थान रखता था। उनके देवलोकके सभी बँगले मृत सामन्तों तथा उनके दबारियोंके लिये रिजर्व थे। वहाँ पृथिवीके सामन्त प्रासादोंकी भाँति साधारण जनताको एक नजर झाँकनेका भी अधिकार न था। हिन्दुओंके पुराणों तथा दूसरे धर्मग्रंथोंमें भी जो देवलोक मिलता है, उसमें भी इस बातका पूरा ध्यान किया गया है। पीछे स्लाव लोगोंके पुराने धर्मकी जगहको जब ईसाई धर्मने लिया, जिसके प्रचारमें स्लाव सामन्तोंने बहुत उत्साह दिखाया और जिसके फलस्वरूप वह और उनके वंशजोंने पीछे ज़ारकी शाहंशाहत कायम की। अब रूसी चर्च (धर्म) ने ज़ारके दर्बार पर ही अपनी देवावलीकी रचना की, जिसमें

[1] Geschiste des altertums (Fdward Meyer) IV p 140 में उद्धृत।

जार था ईश्वर, जारीना थी ईश्वरकी माता मरियम्, सन्त निकोला जैसे सिद्ध पुरुष ज़ारके दर्बारी और मन्त्री और सन्त मिखाइल (फरिश्ता) देव सेनानी ज़ारका कमांडर इन चीफ था। रूसी भाषामें ईश्वरको गॅस्पद् कहते हैं, और स्वामी (सर्) को भी गॅस्पदिन्, भगवान्को बॅग (संस्कृत, भग) कहते हैं और ऐश्वर्यको बॅगस्त्व। संस्कृत तथा हिन्दू देवशास्त्रके जाननेवालोंको इसके लिये आश्चर्य करनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि वैदिक आर्योंके सबसे नजदीकके युरोपीय भाई जब यही प्राचीन स्लाव थे, जिनके ही वंशज आजके रूसी हैं। पाणिनिके वक्त (४००ई० पू०) ईश्वर शब्द राजाका वाचक था, गुप्तकाल(४०० ६००ई०) में तो राजाकी उपाधियोंमें "परमेश्वर" आम तौरसे ताम्रपत्रों और शिलालेखोंमें उत्कीर्ण पाया जाता है। ऐश्वर्य (ईश्वरता) तो आज भी देवलोक और मनुष्य लोकमें उसी अर्थमें विराज रहा है भगको ऐश्वर्यके अर्थमें हमने धातुपाठमें पढ़ा ही है।

आदिम मानव-समाजके देवता मांस रुधिर खाते, सुरा पीते नाचते गाते—सब कुछ मनुष्यकी तरह करते थे। यह ठीक भी है—"यदन्न पुरुषो भवति तदन्न तस्य देवता।"[1] यदि वैदिक कालमें आर्य लोग गायको मारकर उसके मांसको आगमें "स्वाहा" "स्वाहा" करते थे, तो यह उस गायको जिलानेके अभिप्रायसे नहीं, बल्कि अपने आहारको देवताओंतक पहुँचानेके लिये। अस्तु, देवता खाने-पीने, नाचने गाने ही नहीं, सदाचार दुराचारमें भी मानवकी ही प्रतिकृति थे, और किसी जातिकी देव-गाथासे हम उसके तत्कालीन समाजका चित्र बहुत कुछ खींच सकते हैं। भारतमें इन्द्रके द्वारा गौतम ऋषिकी स्त्रीका सतीत्व अपहरण एक प्रसिद्ध बात है, जिसमें जान पड़ता है, अहल्याका भी कुछ हाथ था, नहीं तो ऋषि उसे शाप न देते। इन्द्र हमारे लिये आज

[1] "जो भोजन पुरुष खाता है वही उसका देवता भी"।—जातक १०६

निस्पृत-सा देवता है, इसलिये इस दुराचारको वह महत्त्व नहीं दिया जाता, किन्तु हमें स्मरण रहना चाहिये कि जिस समयकी यह बात है, उस समय इन्द्र सर्वोपरि देवता—देवाधिदेव—था, विष्णु और शिव ही नहीं, ब्रह्माकी भी उस समय कोई पूछ नहीं थी। हमारे इन्द्रदेवता तो अहल्याके ही जार बन हीनकर रह गये, किन्तु यूनानियोंके देव पितर—जेउस्‌ने तो गजब ढाया! वह गनिमेदे नामक एक बालकपर मुग्ध हो, उसके साथ अप्राकृतिक व्यभिचार करता था। उस वक्त यूनानी भद्र समाजमें यह रोग बहुत बढ़ा हुआ था, जिसके छींटेसे बेचारा जेउस्‌ भी बच नहीं सका। आज भारतमें रामजी-कृष्णजीको भी वैसा बनानेकी चेष्टा, उसी दूषित मनोवृत्तिको प्रकट कर रही है।

व्यापारियोंकी प्रधानताम देवशास्त्रमें एक कल्पनाका और आविष्कार हुआ, और यह है निराकार ईश्वर-कल्पना। इस कल्पनाके स्रोतको ढूँढते हम सिक्केपर पहुँचते हैं। सिक्केके रूपमें एक सर्व शक्तिमती सत्ता विराज रही है, जिससे मनोवाञ्छित फल प्राप्त किया जा सकता है। इस टकसालने आज राम-नामके नव ही जारी नहीं किये, बल्कि खुद निराकार ईश्वरके ख्यालको दृढ़ करनेमें भी इसका सबसे बड़ा हाथ है।

(IV) *भारत*—भारतके धर्म तथा देवताओंका खास तौरसे जिक्र करनेकी जरूरत नहीं, क्योंकि उनकी कुछ बातें पहिले आगई हैं, सिर्फ देव-कल्पनाम परिवर्तन होनेके दो-एक दृष्टान्त दे देते हैं। बुद्धके वक्तमें राजतन्त्र तथा प्रजातन्त्र दोनों तरहके शासन मौजूद थे, जिनमें स्वयं प्रजातन्त्रमें उत्पन्न तथा साम्यवादी जीवनके प्रशंसक होनेसे वह प्रजातन्त्रवादके प्रति ज्यादा पक्षपात रखते थे। यह उस बातसे साफ हो जाती है, जो कि उन्होंने लिच्छवि प्रजातन्त्रसे अनेक बार हारे, किन्तु फिरसे आक्रमणकी तैयारी करते मगधराज अजातशत्रुके मन्त्रीके प्रश्नके उत्तरमें कही थी। यह वार्तालाप महापरिनिर्वाण सूत्रमें मौजूद है। इसमें बुद्धने लिच्छवियोंको अपराजेय कहना चाहा है—हाँ, कुछ शर्तोंके साथ। मानव

समाज और देव-समाज एक दूसरेसे कितना सादृश्य रखते थे, यह बुद्धके इस वाक्यसे भी मालूम होता है, जिसे कि "दूरसे ही लिच्छवियोंको आते" देखकर उन्होंने कहा था—[1]

"अवलोकन करो, भिक्षुओ ! लिच्छवियोंकी परिषद्को। अवलोकन करो, भिक्षुओ ! लिच्छवियोंकी परिषद्को। भिक्षुओ ! लिच्छवि-परिषद्को त्रायस्त्रिंश (देव)-परिषद् समझो।"

उस वक्त लिच्छवि जिस वेष-भूषामें थे, उसके बारेमें वहां कहा गया है—"सुन्दर यानोंपर आरूढ़ नीले=नीलवर्ण नीलवस्त्र नीलअलंकार वाले, पीले=पीतवर्ण पीतवस्त्र पीतअलंकारवाले, लाल=लोहित वर्ण लोहितवस्त्र लोहितअलंकारवाले, श्वेत=श्वेतवर्ण श्वेतवस्त्र श्वेत अलंकारवाले।"[2]

हिन्दुओंमें इन्द्र, वरुण जैसे देवताओंके प्रभाव कम होनेका कारण सबसे बड़ा यह था कि इन देव-परिषदोंमें लोकतंत्रता जरूरतसे ज्यादा थी, जिसके कारण हिन्दू निरंकुश शासक उसको पसंद नहीं कर सकते थे। पुरानी देवावली तथा पुराने प्रजातंत्रोंके ध्वंसके बाद जब तीसरी-चौथी शताब्दी ईसवीमें भारशिव, गुप्त जैसे नये हिन्दू राजवंशोंके समय नये देवशास्त्रों—पुराणों—का निर्माण होने लगता है, तो बेचारे ऋग्वेद तथा कुछ तो उससे भी पहिलेसे चले आते देवता जाति-बहिष्कृत किये जाते हैं, और उनकी जगह शिव (भारशिवोंके इष्ट) और विष्णु (गुप्तोंके इष्ट) देव सर्वेसर्वा बना दिये जाते हैं। इस नई व्यवस्थाकी पुष्टिके लिये यहाँ भी वैसी ही कथायें गढ़ी जाती हैं, जिनका जिक्र हम बाबुलके मर्दुकके बारेमें कह आये हैं। हिन्दू धर्मका नाम यदि खोजकी राहमें

---

[1] देखो, "दीघ निकाय" (हिन्दी) पृष्ठ २१३ तथा "बुद्धचर्या" पृष्ठ ५२० ४७ [2] वहीं पृष्ठ ५३५

खोदकर देखें, तो वहाँ हमें बहुतसे देवता फोसीलके रूपमें मिलेंगे। इन देवताओंमें मणिभद्र यक्षकी करुण कहानी सुनकर किसके दिलमें चोट न पहुँचेगी। मणिभद्र बुद्धकालीन उत्तरी भारतके अत्यन्त प्रतापी देवताओंमें था। अभी उस समय (५०० ई० पू०) तक शिव और विष्णु किसी गिनतीमें न थे। दक्खिनी युक्त-प्रान्तमें ईसापूर्व द्वितीय शताब्दीकी एक पाषाण मूर्तिका आसन मिला है, जिसपर भगवान् मणिभद्रका नाम खुदा है। फिर दण्डी (६०० ई०)ने दशकुमार-चरितम मणिभद्र यक्षकी कन्याका जिक्र किया है—यक्ष कहनेसे नाक भौं न सिकोड़िये, पालीमें इन्द्रको भी यक्ष कहा है, और उससे पहिले उपनिषद्में भी यक्ष उसी अर्थमें व्यवहृत होता था। सबसे पीछे मणिभद्र का नाम नवी-दसवीं सदीमें कलिंजरके राजाओंके समयमें लिखे नाटकों में मिलता है। दसवीं सदीके बाद भारतमें तो मणिभद्रका पता नहीं मिलता, हालाँकि ल्हासा (तिब्बत)में मैंने साधुनियोंको गृहस्थोंकी रक्षाके लिये मणिभद्रको गुहार करते देखा है।[1]

(४) *पूर्व और पश्चिममें धार्मिक प्रतिक्रिया*—कितने ही भारतीय इस गलतीमें हैं कि उनका ही देश एक मात्र धर्मप्राण है, और यूरोप सारा नास्तिक हो गया है—इस गलत धारणाको स्पिङ्लिङ् और सर राधाकृष्णन् जैसे लेखक मजबूत करते हैं। सर राधाकृष्णन्का कहना है—[2]

"पश्चिमी सभ्यताकी मुख्य प्रवृत्ति है मानव और ईश्वरके बीच विरोध—वहाँ मानव ईश्वरकी प्रभुतासे मुकाबिला करता है, मानवताके लाभके लिये उसी ईश्वरसे *अग्नि* [शक्ति] चुराता है। भारतमें मानव भगवान्की उपज है।"

[1] दीघनिकायके "आटानाटिय सुत्त"में ऐसे बहुतसे देवता मिलेंगे, जो बुद्धके समयमें जीवित थे, किन्तु आज मर गये, या निर्वासित हैं।

[2] Indian Philosophy Vol II Pt 41

मानवकी उपज भगवान् है, यह मुँहसे तब न निकलता, जब कि पूरे वेदान्ती होते। दो नावोंपर चढ़ना इसीको कहते हैं। खैर, आगे सुनिये—

"भारतीय संस्कृति तथा सभ्यताकी सफलताका रहस्य है (उसका) अनुदारात्मक उदारवाद।"[1]

भारतीय सभ्यता और संस्कृतिने हिन्दुओंमेंसे एक तिहाईको अछूत बनानेमें किस तरह सफलता पाई! किस तरह जाति भेदको ब्रह्माके मुखसे निकली व्यवस्थापर आधारित कर जातीय एकताको कभी बनने नहीं दिया? किस तरह "सर्वश्रेष्ठ मानवको कपिला गाय और वानर हनुमान्" के सामने घुटने टेकनेके लिये तैयार किया! किस तरह पाप दूर करने के नामपर गोबर और गोमूत्र पिलाये! किस तरह मैथार पाखाना तकको भक्ष्य बना सिद्ध बननेका रास्ता साफ किया! किस तरह अपनी आधी संख्या—स्त्रियों—को मनुष्यके प्रारम्भिक अधिकारोंसे भी वंचित कर उन्हें पुरुषोंके पैरोंकी जूती बनाया? किस तरह चौदहवीं वर्षोंतक सतीत्वके नामपर करोड़ों-करोड़ तरुण जाननोंको आगमें जलाया! किस तरह सत्तर वर्षके बूढ़ोंको भी कलकी बच्चीसे शादी करनेकी खुली इजाजत दे, पाँच वर्षकी विधवाको आजन्म वैधव्य पालन करना मनवाके छोड़ा! किस तरह उच्च जातिवालोंके घर घरमें बीसवीं सदीके बहुत पहलेसे गर्भ स्राव तथा सन्तति निग्रहका अद्भुत पाठ पढ़ाया! और किस तरह यह सब कुछ देखते भी मानवको "हुकहुक् दादम् दम् न करीदम्" के मोहन मन्त्रमें फँसा रखा! किस तरह जाति—बहुजातिक जाति—की जातिको ऐसे लेपसे लेपा, कि सभी बाहरी लेपके देखनेमें मगन हैं, कोई भीतर की घनी कालिमाको देखना नहीं चाहता? किस तरह उसने सदा

[1] The Consevative liberalism—वहीं p 46

चार दुराचारका इतना "वैज्ञानिक" विभाग किया, कि दोनोंकी सीमायें एक दूसरेसे मिलने नहीं पातीं ?

यह सब "अनुदारात्मक उदारवादसे" है और इसलिये कि "भारतमें मानव भगवान्‌की उपज है"।

यह हम मानते हैं कि सर राधाकृष्णन् जैसे भक्त और दार्शनिकोंने शताब्दियोंसे भारतकी ऐसी रेड मारी है, कि वह जिन्दासे मुर्दा ज्यादा है। उनके सम-व्यवसायियोंको इस सीमातक पश्चिममें सफलता नहीं हुई, जिससे क्रांतियाँ बीच-बीचमें आकर सफल होती रहीं, और आजका यूरोप जहाँ दासता, तथा सामन्तवादसे आगे पूँजीवादसे भी निकलकर समाजवादमें जा चुका है या जानेकी तैयारी कर रहा है, वहाँ भारतकी सातसौ गुड़ियाँ करोड़ों सजीव आदमियोंपर निरंकुश शासन जमाये रखनेका मंसूबा बाँध रही हैं, और हिन्दू भक्त तथा दार्शनिक उनका नान्दी पढ़ रहे हैं। इतना होते भी यह समझना गलत होगा कि यूरोप ऐसे भक्तोंसे खाली है।

(ईश्वर)—ईश्वरके ही विचारको ले लीजिये, इतिहासकी प्रगति जिस तरह गलती करते करते आगे बढ़ती है, उससे साफ है कि विश्वके पीछे कोई अतिमानुष चेतन शक्ति नहीं, जो कि एक खास योजनाके अनुसार विश्वको एक खास रास्तेपर ले जाती है। भले इस दूसरे विश्व युद्धके तीसरे वर्षमें धर्माचार्य लोग धर्मके प्रोपेगंडाका मौका देखकर जब तब प्रार्थना दिन मुकर्रर करते रहें, किन्तु जिस तरहकी मारकाट आज मची हुई है, वह किसी भी सहृदय सर्वशक्तिमान् ईश्वरके जीवित रहते नहीं हो सकती। युद्धमें जो कुछ बीत रहा है, उसे देखते रहनेवाला ईश्वर या तो नितान्त क्रूर है, अथवा बेबस, और ऐसे ईश्वरको मानने, उसकी स्तुति करनेसे उसकी ओर मुँह भी न फेरना अच्छा है।

वस्तुतः, जैसा कि पहिले बतला चुके हैं, विश्व विरोधिसमागमसे गुणात्मक परिवर्तन द्वारा पहिलेसे अनिश्चित दिशाकी ओर बढ़ता जा

रहा है। इस परिवर्तनमें मनुष्यका भी भाग है, जो कि अपनी चेतना अपनी क्रिया शक्तिका इस्तेमाल करता विश्व विकासमें सहायक बनता, तथा कितनी ही दूर तक कारण-सामग्री पर नियंत्रण करनेमें सफल होता, उसके अनुसार परिणामकी दिशा तथा प्रायिकताको अपने अनुकूल करनेमें सफल होता है। मानव एक समय ईश्वरके ख्यालसे इतना प्रभावित हुआ था, कि सब-कुछ ईश्वरके हाथमें सौंप देना ही उसे ज्यादा बुद्धिमत्ताकी बात मालूम होती थी। लेकिन जब तर्क और बुद्धिकी मार पड़ी, तो भारतकी भाँति मध्यकालीन यूरोप या भारतके ये तार्किक हरएक कार्यके पीछे एक कारणको ढूँढते, और कारणोंकी बेअन्त परंपराको माननेकी जगह वह परम-कारण—ईश्वर—पर जाकर रुक जाते थे। यदि कोई उसके पीछे भी कारणको पूछता, तो गार्गीको जैसे याज्ञवल्क्यने ऐसे प्रश्न पर सिर गिर जानेकी धमकी देकर रोका, उस तरहका तो नहीं, किन्तु कोई वैसा ही तार्किक बहाना जरूर ढूँढ लेते थे। लेकिन हमने पहिले बतलाया, कि कोई कार्य सिर्फ एक कारणसे नहीं होता, बल्कि उसके पीछे कारण-सामग्री (कारण-समुदाय) रहता है, ऐसी अवस्थामें कार्य-कारण नियमसे किसी एक कारण पर नहीं, बल्कि कारण-सामग्री पर पहुँच सकते हैं, फिर इसरकके सिद्ध होनेकी कहाँ सम्भावना है?

करनी कथनीके एक होनेकी बात हम पहिले कह आये हैं। दुनियामें ऐसे विद्वान् काफी मिलेंगे जो ज्ञानमें पंडित हैं, किन्तु उनकी करनी—सब नहीं तो कितने ही—का ज्ञानसे कोई सम्बन्ध नहीं। मेरे मित्र डा० का० प्र० जायसवाल बड़े ही गम्भीरप्रज्ञ थे, और इतिहासके तत्त्वदर्शी होनेसे ईश्वर पर उनका विश्वास नहीं रह गया था, किन्तु फलित ज्योतिष पर उनका पूरा विश्वास था, और ज्योतिषियोंका उनके यहाँ बहुत मान था। बात करने पर वह मानते थे कि एक समाजवादी समाजमें—जहाँ कि बाल बच्चोंकी शिक्षा या ब्याह तथा अपने या स्त्रीको बेकार-बीमार होनेकी दयनीय-दशामें नहीं पड़ना है—फलित ज्योतिषकी पूछ जाती रहेगी।

ायसवालजीकी एक ओर वह तार्किक स्वतन्त्र प्रतिभा जिसने कितनी ही तिहासकी उलझी गुत्थियोंको सुलझाया, वहीं इस पलित ज्योतिषके बारेतना कच्चा निकला, यह देखकर काफी सावधान रहनेकी जरूरत है। र्तमान शताब्दीके शुरूमें मौजूदा फ्रान्सका प्रसिद्ध गणितज्ञ एमिल लमोरियन भी हस्तरेखा आदि मिथ्याविश्वासोंका शिकार था। और ाइसके नोबेल पुरस्कार विजेता सर आलिवर लॉज पुत्र वियोगसे इतने रेशान हुए कि प्रेत विद्या—मृतात्माओंसे बातचीत करने—के फन्देमें गड़ाप होनेसे बाज नहीं आये। यही हालत पाली-बौद्धधर्मकी प्रसिद्ध पण्डिता मिसेज रीस्डेविस् की हुई,—पिछले युद्धमें उनका लड़का मारा गया, जिसपर वह प्रेत विद्याके पीछे इतना पड़ीं कि अपने विद्या सम्बन्धी कार्यों और पुरानी पुस्तकोंके सम्पादन तकमें प्रेतोंकी सहायता लेनेसे बाज नहीं आईं।

एक तरफकी पण्डिताई और दूसरी तरफ चिराग तले अँधेरेके ऐसे उदाहरण सैकड़ों बतलाये जा सकते हैं। गुरुत्वाकर्षणका आविष्कारक सर आइजक न्यूटन (१६४२–१७२७ ई०) एक युग प्रवर्त्तक विद्वान् था, इसमें सन्देह नहीं, गणित तथा यन्त्र शास्त्रकी पण्डिताईसे वह गुरुत्वाकर्षण सिद्धान्त पर पहुँचा। न्यूटन अपनी विद्यासे एक ओर विश्वके नियमोंको समझाकर मनुष्यको अपना मालिक बनाना चाहता था, वही न्यूटन दूसरी ओर बाइबलके पैगम्बर दानियलकी भविष्यद्वाणियों पर भारी माथा-पच्ची कर रहा था कि कब वह भविष्यद्वाणियाँ पूरी होने जा रही हैं।

दुनियामें ऐसे विरोधि-समागमोंको देखकर हमें कितना सावधान रहनेकी जरूरत है, इसे आप खुद समझ सकते हैं, खासकर ऐसे प्राध्यापकोंमें जो कालेज और प्रयोगशालामें तो होश-हवाम-दुरुस्तसे मालूम होते हैं, किन्तु जो शुक्र, शनि या सामके—सोमवार काशी विश्वनाथकी पूजाका दिन है—दौरेमें न जाने क्या कर बैठें, इसका ठिकाना नहीं

है। ऐसे लोग एक पैरसे तो साइंसकी नदीमें हैं, किन्तु उनका दूसरा पैर बीते युगमें अब भी अच्छी तरह स्थिर जमा हुआ है। वह लोग नहीं समझते, कि धार्मिक मूढ़ विश्वासोंका समर्थन कर वह उस समाजका समर्थन कर रहे हैं, जिसका अवशेष अब भी बहुत भारी परिमाणमें भारतमें है, और उसकी रक्षा भारतीय भारी गन्दा शासन, परतन्त्रता तथा नाना निकृष्ट विशुद्धवाद दलदलमें फँसकर मनुष्यताकी अभिवृद्धि नहीं कर रहा। इंगलैंडके एक वैज्ञानिक एक प्रतिभाशाली प्रोफेसरका कहना है।[1]—

"वैज्ञानिक विचारोंके (युद्ध) जैसा [है], जो कि ऐसे वैज्ञानिक साधन पैदा कर रहे हैं, जिनकी सहायतासे ऐसा समाज तैयार किया जा सकता है, जिसमें आविष्कार, मानव प्रकृतिको समझके साथ बौद्धिक तरीकेसे इस्तेमालकर [बहुत सुखिया बना] सकता है—[किन्तु यह ऐसा न कर उसको उलटे पथपर ले जानेके लिये हैं], साइंससे पवित्रोंवाले गूढ़ दर्शनके शब्दोंमें यह कहनेके लिये उतारते हैं, कि सभी (जग) झूठी माया है, अबुद्धिकी निर्भरता है, महाविश्वका मूलाधार अव्यवस्थितता है। साइंस अपना उनका जो महत्वपूर्ण स्थान है, उसकी सहायतासे हमें विश्वास दिलाना चाहते हैं, कि जगत् एक गणितात्मक ईश्वरके ज्ञान अनुबुद्धि सार [माया] की प्रतीति मात्र है। हमलोगोंमेंसे जो सामाजिक [कर्तव्यकी] चेतना रखनेवाले लोग हैं, और जो मानवकी साइंस-संबंधी सफलताओंके द्वारा दरिद्रताकी यन्त्रणा तथा सामान्य यातनाओं, बेकारी, तथा विश्व व्यापी युद्धकी तैयारीको दूर करनेकी आशा रखते हैं, उनके लिये [बूढ़े साइंसवेत्ताओंकी यह हरकतें] असह्य थीं, और इस ललकारकी उपेक्षा नहीं की जा सकती थी।"

सर राधाकृष्णन् जैसे लोग भी भारतमें शोषणके पोषणके लिये वही काम कर रहे हैं, जो कि इंगलैंडमें वहाँके शोषक प्रभुवर्गके स्वार्थों-

[1] A Philosophy for A Modern Man (by H Levy Gollancz London 1938) p 165

का रखाने पर आर्थर एडिंगटन जैसे वैज्ञानिकोंका रहा है, और पूर्व-पश्चिम देशोंके इस तरहके लोगोंके सामने यूनानी कवि सोफोकल (ई० पू० पाँचवीं सदी) के ये वाक्य सदा रहने चाहिये—"सारा जगत् ध्वस्त हो जायेगा, यदि धर्म उठ गया, क्योंकि आचार और राज्य-संबंधी व्यवस्थायें देवताओंकी इच्छापर निर्भर हैं।"

(५) *जीव अजर अमर*—जीव शरीरसे अलग एक अजर अमर वस्तु है, इस कल्पनाको भारतम बहुतसे लोग स्वयंसिद्ध समझते हैं। आरण्यक पुरुष तथा बौद्धिक विकासमें पिछड़ी जातियाँ जीवको शरीरसे भिन्न नहीं समझतीं। विन्ध्यके रानापदोषों तथा मध्यप्रदेशके गिरिवासियोंके फोटो लेनेका जिनको तजर्बा है, वह बतलायेंगे कि फोटो 'देने' के लिये ये लोग राजी नहीं होते। उनका ख्याल है, फोटो जो बिल्कुल शरीर जैसा होता है, उसमें अपने शरीर (आत्मा) का कुछ भाग जरूर चला जाता है, जिससे आयु कम हो जाती है। जीवके अजर अमर होनेका ख्याल सबसे पहिले प्राचीन मिस्रमें दिखलाई पड़ता है, जिसका यह मतलब नहीं कि और जगह दूसरी जातियोंमें यह ख्याल मिस्र होके गया।—वैसी परिस्थितियोंमें दूसरी जगह भी वह ख्याल पैदा हो सकता है। मिस्रमें भी राजाओंसे इसका आरम्भ मालूम होता है। फरा (मिस्री राजा) के शवोंको सुरक्षित रखनेके लिये जितना आयोजन मिस्रमें किया गया, उतना कहीं भी नहीं देखा जाता। मृत शरीरको सड़नेसे बचानेके लिये मिस्रियोंने ऐसे मसाले ढूँढ निकाले, जिनकी वजहसे चार-चार हजार वर्षकी सुरक्षित ममियाँ (शव) वहाँसे मिली हैं। शवोंके रखनेके लिये उन्होंने चौपहलू शृंगवाले वे विशाल पाषाण पिरामिड बनाये, जो आज भी दुनियाके आश्चर्योंमें गिने जाते हैं। इन पिरामिडोंके बनानेके लिये देशकी सम्पत्ति या श्रमका सबसे बड़ा भाग खर्च किया जाता था। इसके लिये दास-दासियों तथा साधारण प्रजाको किस तरहका जीवन बिताना पड़ता रहा होगा,

इसे आप खुद अनुमान कर सकते हैं। पुराने मिस्री अभी आत्माको पूरी तौरपर शरीरसे अलग नहीं कर पाये थे, इसलिये उन्हें जहाँ का (जीव), उसकी छाया तथा नामको अमर अमर करनेकी फिक्र थी, वहाँ शरीरको भी सुरक्षित रखना पड़ता था।

प्राचीन यूरोपीय तथा हिन्दुओंको आत्माके शरीरसे अलग होने पर ज्यादा विश्वास हुआ, इसलिये उन्होंने शरीरको बेकार समझ उसे जला डालनेकी प्रथा जारी की, किन्तु बहुत पुराने जमानेमें इसका आरम्भ भूनकर खानेमें भी हो सकता है। किन्तु गाड़नेवाले शवको कब्रमें दबानेवाली जातियाँ इस विचारसे प्रेरित हुए, कि कयामतके दिन सड़ गल गये मुर्दे भी जिन्दा हो उठेंगे।

अफलातूँ आत्माके तीन भाग मानता था—(१) बौद्धिक भाग जिसका प्राकट्य बुद्धि है, (२) आध्यात्मिक भाग, जिसका प्राकट्य बहादुरी, हिम्मत आदि हैं, जिनसे बुद्धिका सबंध नहीं, (३) औदारिक या स्थूल भाग—लोभ, द्वेष आदिका सबंध इस भागसे है। अफलातूँने इन तीनों आत्म-भागोंकी क्रमशः मानव, सिंह तथा बहुशीर्ष राक्षससे उपमा दी है।

अफलातूँके समय (४२७-३४७ ई० पू०)के आसपास ही माण्डूक्य उपनिषद् लिखते वक्त उसके रचयिताने भी जीवके तीन स्वरूप माने—(१) जाग्रत अवस्थामें स्थूल आहार करनेवाला वैश्वानर, (२) स्वप्न अवस्थामें तैजस, और (३) सुषुप्त (गाढ़ निद्रा) अवस्थामें आनन्द भोजी प्राज्ञ।

फ्रॉइडने भी अफलातूँसे प्रभावित हो आत्माके तीन रूप बतलाये हैं—(१) इद् अबौद्धिक बेहोशसा आत्मा, जिसका सम्बन्ध शारीरिक तृष्णा या भग लिप्सासे है, (२) इगो (अहं) या आत्माका पूर्णतया सचेतन अंश, जो कि बहुत कुछ बुद्धि-युक्त है, यही शरीर और बाहरी

जगत्से सम्बन्ध कराता है, (३) परम इगो (परम अहङ्कार), जो कि बहुत कुछ निश् (किय) चेतन अन्तरतम स्तर है, जिसके भीतर युगों-की अनुभूति और संस्कार निहित हैं।

इनके अतिरिक्त और भी कितने ही आत्मा-सम्बन्धी मत हैं, जिनमें कुछ (हिन्दू) आत्माको अनादि अनन्त मानते हैं, कुछ (इस्लाम तथा दूसरे सामीय धर्म) सादि अनन्त मानते हैं, कितने ही प्रत्येक आत्मा (जीव)को न्याय-दर्शनकी भाँति सर्वव्यापी मानते हैं, कितने ही बादरायण, रामानुज और दयानन्दकी भाँति अणु एकदेशीय, कितने ही जैनोंकी भाँति हाथीके शरीरमें हाथीके बराबरका आत्मा और चींटीके शरीरमें चींटीके बराबर बन जानेवाला आत्मा मानते हैं। कुछ बौद्ध जैसे दार्शनिक आत्माको नहीं मानते तथा अपनेको अनात्मवादी घोषित करते हैं, तो भी एक तरहके जन्मान्तर या परलोकको स्वीकार करते हैं।

हम अपने दूसरे ग्रन्थ[१] में बतला चुके हैं, कि किस तरह भारतके सामन्त शासकोंने दुनियामें विद्यमान दरिद्रता, विषमता, शोषक शोषितके भेद तथा अपने प्रभुत्वको कायम रखनेके लिये वैदिक परलोकको पर्याप्त न समझ शोषित जनताके लिये पुनर्जन्मके फन्देको तैयार किया, और उपनिषद्के ऋषियों तथा बादके धर्माचार्योंने उसे मजबूत किया। आज तो कितनी ही जगहों पर पूर्वजन्मकी याद रखनेवाले बालकोंकी जबर्दस्त प्रदर्शनियाँ भी की गई हैं—और क्यों न हो, पूर्व जन्मकी कमाईके नाम-से मुफ्तकी मिली सम्पत्ति और प्रभुताके औचित्यको सिद्ध करनेका इतना बड़ा हथियार कैसे छोड़ा जा सकता है! कितनों होने तो इसे आमदनी का अच्छा जरिया समझा है। इनके अतिरिक्त कभी-कभी ऐसी घटनायें भी हो सकती हैं, जिनके वैज्ञानिक विश्लेषण न होनेसे भी कुछका अर्थ

[१] "दर्शन-दिग्दर्शन"

लगाया जाने लगता है। मेरे एक दोस्तकी स्त्री अपनी एक लड़कीके बारेमें कह रही थीं, कि यह पुनर्जन्म लेनेसे कुछ पहले मर गये भाई की बातें बतलाती थी। उनके घरमें लड़कियाँ कई थीं, किन्तु लड़का एक ही हुआ था, जोकि कुछ महीनोंका ही होकर मर गया। मैंने पूछा—लड़कीके गर्भमें रहते वक्त आपको क्या यह बच्चा याद आता था। उन्होंने कहा—याद? मेरी तो यही साध ही थी कि बेटा हो।

यह नई समस्या है—गर्भावस्था, गर्भाधानके अवसरमें क्रोमोसोम्में अवस्थित जेनम् (जनक बीज) में क्या कोई इस तरहका संस्कार पैदा किया जा सकता है? आनुवंशिकताके वाहक यही जेनम् हैं। अभी इनके संबंधकी गवेषणा पिछले तीस सालोंसे होने लगी है। वैज्ञानिकोंको इस अन्वेषणमें कितनी कठिनाई उठानी पड़ रही है, मानव बीज-वीर्य और रज-अंडक नाभि-कणमें अवस्थित क्रोमोसोम् तथा जेनम् (जनक बीज) के इस परिमाणसे जान सकते हैं—

	व्यास	भार
क्रोमोसोम्	१/६००० इंच	
जनक बीज		४ परमाणु
परमाणु (साधारण)	१/१० करोड़ इंच	१/५ लाख-लाख अरब तोला

यह भी ख्याल रखने की बात है, कि पूर्वजन्मकी स्मृति रखनेवाले लड़के सिर्फ उन्हीं घरोंमें पैदा होते "पाये जाते" हैं, जिनमें यहां पुनर्जन्म का विश्वास बहुत जबर्दस्त है।

पुनर्जन्मके बारेमें तो बहुतसे मजहब सहमत नहीं हैं, किन्तु नित्य आत्माकी सत्ताको अधिकांश ही स्वीकार करते हैं, हाँ आत्माके लिये सबकी परिभाषा एक नहीं है। यह एकता सिर्फ यही बतलाती है, कि सबका आधार और उद्देश्य एक है, और वह है ठोस साकार दुनिया

और उसके जीवन तथा सामाजिक अन्यायसे लोगोंके ध्यानको हटाना, एवं आत्मा और शरीरके उदाहरणसे वर्गभेदको समाजमें कायम रखना। इसलिये साइंस वेत्ता हेल्डनके शब्दोंमें हमें सावधान रहना चाहिये।[1]—

"जिनकी आत्माकी अमरतापर विश्वास है, वह भी स्वीकार करेंगे, कि इस सिद्धान्तके मरने और जीते रहने पर अत्यन्त शक्तिशाली (वर्ग) स्वार्थोंका मरना जीना निर्भर है, और इस सिद्धान्तका विश्वास ज्यादातर भावुकता तथा सामाजिक दबावका परिणाम है।"

ख आचार-विचार

वैज्ञानिक भौतिकवादियोंपर 'धर्मात्माओं'' की ओरसे आक्षेप होता है कि ये लोग आचारके शत्रु हैं, इसके उत्तरमें लेनिनने लिखा है—[2]

"आमतौरसे पूँजीपति कहते हैं, कि कम्यूनिस्ट सभी (तरहके) सदाचारोंको नहीं मानते। यह असली बातको धपपचम डाल देनेका उनका तरीका है, जिससे वह मजदूरों तथा किसानोंकी आँखोंमें धूल डालना चाहते हैं। किस अर्थमें हम आचार नियमसे इन्कार करते हैं? इसी अर्थमें कि ये आचार नियम भगवानके विधान हैं।"

१ आचार परिवर्त्तन शील

वैज्ञानिक भौतिकवादके दार्शनिक विचारसे अनुप्राणित समाजवादी आन्दोलन, आराम-कुर्सीपर बैठकर लेक्चर झाड़नेवाले वाक्शूर राजनीतिज्ञोंकी राजनीति नहीं है, इसमें पड़नेवालोंको आगसे खेलना होता है, फिर वहाँ आचार हीन पुरुषकी टाँग कैसे ठहर सकती है? वर्ग-संघर्ष

[1] The Marxist Philosophy and the Sciences p 130

[2] Lenin On Religion

एक ऐसी भट्ठी है, जिसमें वह आदमी टिक नहीं सकता, जिसमें जबर्दस्त नैतिक बल नहीं है। लाखोंकी तादादमें जो कम्यूनिस्ट हँसते-हँसते स्पेन, फ्रांस, और रूसमें फासिस्तोंकी गोलियोंके शिकार हुये, उन्हें आचारहीन कहनेवाले कौन हैं, जरा उनके चेहरेको देखिये तो। निर्लज्जताकी आखिर हद भी कोई है! ये हिजड़े, कायर, लम्पट, पतित, सब तरहकी ईमानदारीसे रहित, नीच, स्वार्थी, मानवताके कलंक उन कम्यूनिस्टोंपर हमला करने चले हैं, जो जगत्‌में स्वार्थ और लोभकी जगह मानवताकी बेलको अपने खूनसे सींचकर लगा रहे हैं, जिनकी कुर्बानियों और बहादुरीके कारनामोंसे इतिहासके सबसे सुन्दर पृष्ठ लिखे जा रहे हैं।

कम्यूनिस्ट सचमुच ऐसे सदाचारको बिल्कुल माननेके लिये तैयार नहीं, जिसकी मंशा कुछ व्यक्तियोंकी स्वार्थ सिद्धि है। उनके सदाचारकी नींव किसी ईश्वरीय विधान या इल्हाम पर नहीं, बल्कि बुद्धके शब्दोंमें "बहुजनहिताय बहुजनसुखाय" है। समाजके स्वार्थको वह व्यक्तिके स्वार्थके ऊपर मानते हैं। वह चाहते हैं व्यक्ति खुशीसे अपने तात्कालिक सुख और जीवन तकको भी वर्ग-संघर्ष, क्रान्ति तथा नये संसारके निर्माणके लिये त्याग करे। समाजवादी सदाचार इसी बेहतर दुनियाकी स्थापनाके लिये विरोधियोंके मुकाबिलेमें किये जानेवाले वर्ग संघर्षके समय प्रकट होता है, और उसकी पूर्णता समाजवादी समाजकी स्थापना होने पर होती है।

२. प्राचीन भारतमें यौन सदाचार

धर्मात्मा लोग जिस वक्त सदाचारकी बात करते हैं, उस वक्त उनके ख्यालमें रहता है, कि सदाचार एक ऐसा अचल अटल विधान है, जो कि सभी देश कालमें एकसा बना रहता है, किन्तु यह धारणा बिल्कुल गलत है। उत्तरी भारतमें मामा फूफीकी लड़की सगी बहिनके समान मानी जाती है, जबकि उड़ीसा और गुजरातसे दक्खिन, उन्हें ब्याहनेका

हर सबसे पहिले ममेरे फुफेरे-भाईको होता है। और प्राचीन भारतके सदाचारको चाहते हैं, तो पुरानी पुस्तकोंको उलटकर देखिये , मैंने इनके बारेमें अन्यत्र[1] काफी लिखा है, वहाँ उससे कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करता हूँ—

"नदी पार होते-होते पराशरका सत्यवती (मल्लाहपुत्री) के साथ समागम प्रसिद्ध है"[2]। यद्यपि यहाँ ग्रंथकारने पराशरकी दिव्यशक्तिसे कुहरा पैदा कर लज्जा ढाँकनेकी कोशिश की है , किन्तु उतथ्यपुत्र[3] दीर्घतमा—ऋग्वेदके कितने ही सूक्तोंके कर्त्ता तथा पीछे गोतम नामसे प्रसिद्ध गौतम-गोत्रियोंके प्रथम पूर्वज— ने लोगोंके सामने ही स्त्री समागम किया।

"उस पुराने युगमें ऋतुकालके अवसर पर स्त्री किसी पुरुषसे रतिकी भिक्षा माँग सकती थी। शर्मिष्ठाने इसी तरह ययातिसे रति भिक्षा माँगी[4] थी। यही नहीं, ऐसी भिक्षाका देना न स्वीकार करनेपर गर्भपातके समान पाप होता है, यह भी वहीं[5] बतलाया गया है। उलूपीने भी अर्जुनसे रति भिक्षा माँगते हुए कहा था कि स्त्रीकी प्रार्थना पर एक रात का समागम अधर्म नहीं[6]। उत्तंकने ऋतुशान्तिके लिये अपनी गुरु स्त्रीके साथ गमन किया, और उसे बुरा नहीं समझा गया[7]। चन्द्रमाने अपने गुरु बृहस्पतिकी भार्या ताराके साथ रति की, जिससे बुध पुत्र हुआ। गौतमकी पत्नी अहल्याका इन्द्रके साथ सम्बन्ध प्रसिद्ध है , किन्तु गौतमने अपनी पत्नीको सदाके लिये त्याज्य (तिलाकके योग्य) नहीं बनाया।

"महाभारत कालमें विवाह-बंधन कितना शिथिल था, इसके कितने ही उदाहरण तो कुमारी कन्याओंके प्रतिष्ठित पुत्र (कानीन) हैं। पाण्डवोंकी माँ कुन्ती जब कुमारी थी, तभी उससे कर्ण पैदा हुआ था।

[1] "मानव समाज" ८८-८६। [2] महाभारत, आदिपर्व ६३। [3] वहीं १०४। [4] वहीं ८२। [5] वहीं ८३। [6] अनुशासन पर्व १०२। [7] वहीं ३।

कुमारी गंगाने शन्तनुसे भीष्मको पैदा किया था। पराशरने कुमारी सत्यवती (मल्लाह पुत्री) से व्यासको पैदा किया था, पीछे यही सत्यवती शन्तनुकी रानी बनी। कुन्ती और माद्रीकी जन्मभूमि मद्रदेश (वर्तमान स्यालकोटके आसपासके जिले) के उन्मुक्त स्त्री पुरुष संबंधकी कर्णने बड़ी कड़ी आलोचना की है। मद्रदेशमें पिता, पुत्र, माता, सास, ससुर, मामा, जमाई, बेटी, भाई, नाती, दास, दासीका और सम्मिश्रण बहुत ज्यादा था। वहाँकी स्त्रियाँ स्वेच्छापूर्वक पुरुष सहवास करतीं। अपरिचितके साथ भी प्रेमके गीत गातीं। गंधारियोंकी भाँति माद्रियाँ भी शराब पीतीं, नाचतीं। यहाँ वैवाहिक संबंध नियत न था, स्त्रियाँ मनमाना पति करतीं। एक स्त्रीके बहुपतिका उदाहरण प्रातःस्मरणीय पंच कन्याओंमें एक द्रौपदी हमारे सामने मौजूद है।

"बहिन, बेटी पोतीके साथके व्याहके भी कितने ही उदाहरण हम इन पुराने ग्रंथोंमें मिलते हैं। इक्ष्वाकुके निर्वासित कुमारोंने अपनी बहिनोंसे व्याहकर शाक्यवंशकी नींव डाली[1]—इस तरहका व्याह स्यामके राजवंशमें अब भी मौजूद है। दशरथ जातकके अनुसार सीता रामकी बहिन और भार्या दोनों थी। ब्रह्माकी अपनी पुत्री सरस्वती पर आसक्ति पुराण प्रसिद्ध है। ब्रह्माके पुत्र दक्षकी कन्याने अपने दादा (ब्रह्मा)से व्याह किया था। बिना व्याहके स्त्री पुरुषोंका किस तरहका उन्मुक्त संबंध था, उसे देखते कोई कह नहीं सकता कि यौन सदाचार भारतमें सब देश-कालमें एकसा चला आया है। जो बात भारतके बारेमें है, वही दुनियाके दूसरे मुल्कों पर भी लागू है।

"यौन ही नहीं सभी प्रकारके सदाचार बराबर बदलते रहे हैं। एंगेल्सने इसी बातकी ओर ध्यान दिलाते हुए लिखा है—

---

[1] बुद्धचर्या

"यदि सच झूठके सम्बन्धमें हमने बहुत तरक्की नहीं की, तो भलाई बुराईके बारेमें तो हम और भी पीछे रहे। भलाई बुराईका ख्याल एक जातिसे दूसरी जाति, एक कालसे दूसरे कालमें इतना बदला है, कि अक्सर वह एक दूसरेसे बिल्कुल उलटा है।"

अथेन्सका न्याय वही नहीं था, जो कि आजके इंगलैंड या भारतका है। याज्ञवल्क्यकी भाँति सुकरातके श्रोता भी दासताको अन्याय युक्त नहीं समझते थे। बीसवीं सदीके भारतमें कितनी ही बातें न्यायानुमोदित हैं, जिन्हें २२वीं सदीका भारत अन्याय नहीं समझेगा, और आज भी जिसे सोवियत् भूमिमें अन्याय समझा जाता है।

३ हमारा और पूँजीवादी सदाचार

इसीलिये वैज्ञानिक भौतिकवादी "किसी तरहके सदाचार-सम्बन्धी मतवादको नित्य, अन्तिम तथा अटल माननेसे साफ इन्कार करते हैं।" खासकर, जब वह देखते हैं कि हरएक सदाचारके पीछे शोषक-वर्गका स्वार्थ छिपा हुआ है।

वैज्ञानिक भौतिकवाद किसी अटल नित्य सदाचारके माननेसे इन्कार करता है, उसका अर्थ यह नहीं कि वह किसी प्रकारके सदाचार को नहीं मानता। आज भी वह क्रान्तिकारियोंके सदाचारोंको मान रहा है, जिनके बिना किसी उच्च आदर्शको पूर्ण नहीं किया जा सकता। वह जिन शोषक शोषित वर्गोंसे हीन समाजको कायम करनेमें लगा हुआ है, उसमें वैयक्तिक सम्पत्तिकी कोई गुंजाइश नहीं रहेगी, जिसका आवश्यक परिणाम यह होगा कि वेश्यावृत्ति—दुनियाके सबसे पुराने धर्मानुमोदित व्यवसाय—का नाम तक सुननेमें नहीं आयेगा। साथ ही जिसे हम आज का परिवार मानते हैं, उसके लिये भी गुंजाइश नहीं रहेगी। साम्यवादी परिवार ग्राम और देशव्यापी होगा, जिसमें हमारापन बहुत विस्तृत क्षेत्रमें लागू होगा। स्त्री आज माया=खाना-कपड़ा देकर मोली जाने

वाली समझी जाती है, साम्यवादी समाजमें कोई स्त्री किसी पुरुषकी—अपने पतिकी भी—कमाई खानेवाली नहीं मिलेगी। दोनों आर्थिक तौरसे भी पूर्ण समान होंगे, इसलिये आज परिवारके नामपर हम जो कुछ देख रहे हैं, उसमें कितने अंशका पता नहीं रहेगा, इसका आप खुद अनुमान कर सकते हैं।

वैज्ञानिक भौतिकवादी वैयक्तिक सम्पत्तिको नहीं रखना चाहते, किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि वह चोरीको, वैयक्तिक सम्पत्ति उठानेका साधन मानते हैं। "ऋण कृत्वा घृत पिबेत्"की भावना तो उनमें ही हो सकती है, जो कि वैयक्तिक सम्पत्तिको कायम रखना चाहते हैं।

और सत्य भाषण! वैयक्तिक सम्पत्तिने चोरीको पैदा किया—बुद्धने अपने एक उपदेशमें[1] बड़ी सुन्दर रीतिसे बतलाया है कि कैसे वैयक्तिक सम्पत्ति आई, और फिर वही मार-काटका कारण बनी। इस बातमें बुद्ध गांधीसे बहुत आगे बढ़े हुए थे, जो कि राजकोटके लाख तमाशेके बाद भी सरलताके सिद्धान्तको छोड़नेके लिये तैयार नहीं हुये। उसी वैयक्तिक सम्पत्तिने आदमीको झूठ बोलनेके लिये मजबूर किया। सभ्यतामें ही आदमी जितने ज्यादा दीक्षित होते जाते हैं, उतने ही वह झूठ फरेबमें बढ़ते जाते हैं, इसे साबित करनेकी जरूरत नहीं। जंगली जातियों तथा सीधे सादे पहाड़ी लोगोंमें आप झूठ बहुत कम पायेंगे। सभ्यतासे हमारा मतलब वैयक्तिक सम्पत्तिके भारसे भरी हुई सभ्यतासे है, जिससे ऊपर उठकर हम 'मानवता'की अवस्थामें पहुँचना चाहते हैं।

फिर पूँजीवादी आचारोंकी सूची पुराने आचारों तक ही समाप्त नहीं हो जाती है। भोजमें अमुक रंग-ढंगकी पोशाक पहनकर जाना चाहिये, नाचमें अमुक तरहकी। दरबारमें चूड़ीदार पायजामा होना चाहिये या

---

[1] देखो "मानव-समाज" पृष्ठ ५५, ५६ तथा "दीघ निकाय" पृष्ठ २४२-४४।

पैले पाँयना, शेरवानी होनी चाहिये या पारसी कोट—यह सभी वर्त्तमान पूँजीवादी वर्गद्वारा समाजपर लागू किये आचार हैं। इन आचारोंका यदि सम्बन्ध सिर्फ काट-छाँट तक ही रहता, तो कोई वैसी बात न थी, किन्तु इनका मतलब है, अपने वर्गको शोषितासे अलग कर वर्ग-सगठन को मजबूत करना। वैसे पूँजीवादी दोष देते हैं साम्यवादियो पर, कि यह वर्गभेद फैलाते हैं, लेकिन आप समाजके भीतर पूँजीवादियों—सामन्तोंको भी ले लीजिये—की रहन सहन तथा बर्त्तावको देखें तो पता लगेगा कि अपने दर्वाले खान-पान रहन-सहनसे उन्होंने अपनेको ऐसा बना लिया है कि साधारण मजदूर किसान उनसे मिल ही नहीं सकते। वर्ग भेद जिनका बनाया और मजबूत किया हुआ है, वही भूटकी ठोकरें भी लगा रहे हैं। साम्य वादियोने इन ठोकरोंके लगानेका परामर्श पूँजीपतियों या सामन्तोंको कभी नहीं दिया। यदि उनका कोई अपराध है, तो यही कि जो बूट तुम्हें ठोकरें लगाते हैं, उन्हें चाटना छोड ही न दो, बल्कि "जैसा देवता वैसा अच्छत" की नीति स्वीकार करो। इसका अर्थ लगाया जाता है वर्ग विद्वेष फैलाना। हिंसा और पशुबलके बल पर शताब्दियोसे जिन लोगोंने मनुष्यके शोषण औरगुलामीको कायम रखा है, जरा भी साँस लेनेकी कोशिशको, जो अपने उसी बलसे दबाना चाहते हैं, उससे बचनेके लिये जो कुछ भी किया जाय, उसे वह हिंसाका नाम देते हैं—इसे कहते हैं—"उलटा चार कौनवालको दंडे।"

४ समाज हित सदाचारकी कसौटी

वैज्ञानिक भौतिकवाद जगत्को परिवर्तनशील मानता है, इसीलिये वह ऐसे आचार-विचारका पक्षपाती है, जो ऐसे जगत्की तात्कालिक अवस्थाके अनुकूल हो। जिस तरह "बहुजनहिताय" आचारको पूँजीपतियों—सामन्तोंके आचारसे हीन नहीं, बल्कि श्रेष्ठ कहा जायगा, वैसे ही देश-कालानुसार परिवर्तनशील आचार भी श्रेष्ठ है। "बहु जन हित"

के युगमें शब्दको "समाजहित" में बदल दीजिये, और फिर इसी समाज-हितको आचारकी कसौटी बना दीजिये। बस, इसी कसौटी पर जो आचार ठीक उतरता है, उसे ही सदाचार—आचार—कहना चाहिये।

(समाज)—समाजको न तो ईश्वरने उत्पन्न किया, और नहीं मनुष्योंने मिलकर तय कर लिया कि आओ, हम अपनी स्वतन्त्रताका इतना भाग सब किसीके लिये छोड़कर व्यक्तिकी जगह समष्टि रहने लगें। वास्तविक बात यह है कि आदिम मानवको प्रकृतिने मजबूर किया कि यदि वह जीवित रहना चाहता है, तो सामाजिक जीवन स्वीकार करे। मानव प्रकृतिके चैलेंजको समाज-बद्ध ही होकर स्वीकार कर सकता था। इस तरह भीतरसे नहीं, बल्कि बाहरी परिस्थितिने वैयक्तिक मानवको समाजबद्ध बननेके लिये मजबूर किया। वैयक्तिक स्वतन्त्रताके कुछ हिस्सेको छोड़ देना, यह भी अभावात्मक तथा निराधार-सी बात है, मानवने समाजको सामूहिक श्रम पर स्थापित किया। वह दासों और स्वामियोंका युग नहीं था, बल्कि स्वतन्त्र जांगल मानवका युग था। अभी तक जो हरएक आदमी अलग-अलग अपना काम करता था, अब उसने श्रमको सामाजिक—सामूहिक या सम्मिलित—बनाया। भाषासे लेकर आगेकी सारी उन्नति उसके इसी समाजबद्ध होने—सम्मिलित श्रम करने—का परिणाम था। सामाजिक श्रमने जहाँ अपने उत्पादनको अधिक करके दिखाया, वहाँ अब वह प्रकृति तथा दूसरे (वन्य) शत्रुओंसे मुकाबिला करनेमें भी अधिक सक्षम हो सका, और तबसे पशु-मानव, मानव-मानव हो गया। मानवके आगेके विकासके बारेमें हम अन्यत्र[1] लिख चुके हैं, इसलिये उसे यहाँ दुहरानेकी जरूरत नहीं।

मानव पहिले प्रकृतिसे सीधे मुकाबिला करनेके लिये मजबूर था, किन्तु अब उसे मानव-समाजका भारी सहारा प्राप्त हुआ। पहिले

[1] "मानव समाज"

मानवके लिये प्रकृति रहस्यमयी और बिल्कुल अज्ञात थी, किन्तु समाज ने उसकी रहस्यमयताको कम करना शुरू किया, और मानवका पैर दृढ़ताके साथ धरतीपर पड़ने लगा। यह स्मरण रखना चाहिये कि समाज सिर्फ अपने भीतरके व्यक्तियोंका योग *मात्र* नहीं है। वह मनुष्यों का *सक्रिय* आपसी सबंध तथा प्रकृतिके साथ उसकी *सक्रिय, सामूहिक,* प्रयोगात्मक क्रिया प्रतिक्रिया है। इस प्रकार समाज सिर्फ मानव + मानव + मानव नहीं, बल्कि मानव × मानव × मानव है।[1] मनुष्योंके साधारण जोड़के अतिरिक्त वहाँ उनकी मानसिक तथा व्यावहारिक क्रिया प्रतिक्रियामें एवं परिमाणके समागमसे हुआ गुणात्मक परिवर्तन समाजकी कीमतको कहीं ज्यादा बढ़ा देता है। हम समाजके मूल्यको इतने हीसे नहीं आँक सकते, क्योंकि आजका मानव स्वयं समाजकी उपज, तैयार किया माल है। बचपनसे ही उसे समाजकी एक बहुत बड़ी देन–भाषाका सहारा नहीं मिलता है, बल्कि उसके विचारोंके निर्माणमें भी समाजका जबर्दस्त हाथ है—समाजकी लोरियोंसे लेकर कानून, आचार, ज्ञान प्रचार आदि सभी मिलकर आजके मानवका निर्माण करते हैं। बल्कि कहना चाहिये, आजका मानव उतना प्रकृतिका पुत्र नहीं है, जितना कि समाजका।

१९२० ई० में मेदिनीपुरके जंगलमें पादरी जे ए एल सिंहने भेड़ियेकी मॉदसे दो लड़कियोंको निकाला जिनकी रक्षामें उनकी पोषिका माँ मादा भेड़ियेने अपनी जान गँवाई। पादरी सिंहने इन बच्चियोंका नाम कमला (८ वर्ष) और अमला रखा। छोटी अमला एक साल बाद मर गई, किन्तु बड़ी ९ वर्षतक जिन्दा रह, १७ वर्षकी हो १९२९ ई० में मरी। पादरी सिंहने कमलाके भेड़ियासे आदमी बननेकी प्रगति को अपनी डायरीमें दर्ज किया है।[2] जिससे पता लगता है कि कमला

[1] Dialectics (by T A Jackson) pp 123 4
[2] W[illegible] Child and Human Child (Methune London)
([illegible]man Calcutta 23 3 1942 [illegible] 4)

मानव समागम आनेके दो वर्ष बाद दूसरेकी सहायताके साथ खड़ी होने लगी, तीन वर्ष बाद बिना सहायताके खुद खड़ी होने लगी। चार वर्ष रहनेके बाद उसने अपने हाथसे गिलास लेकर पानी पिया। छै वर्ष रहनेके बाद उसने आदमीकी भाषाके ३० शब्द सीखे, इसी समय उसे समझमें आने लगा, कि बिना वस्त्र देहके बाहर जाना लज्जाकी बात है, प्रारम्भिक वर्षोंमें कमला कपड़ा पहिरानेपर फाड़ डालती थी। नवें वर्षकी उम्रमें पहुँचनेपर कमलाका भेड़ियापन और मानवताका द्वन्द्व खतम हुआ, और वह एक भली भाली प्यारी बच्चीकी तरह रहने लगी।

भेड़ियाकी "बच्ची" कमलाका नव ही वर्षका जीवन हमारे सामने गुजरा, और उसे भी विशेषज्ञोंकी देख-रेखमें विकसित नहीं होने दिया गया, नहीं तो और भी कितनी ही बातें मालूम होतीं, किन्तु कमलाने यह साबित कर दिया कि जिसे हम मानवता कहते हैं, वह व्यक्तिकी नहीं समाजकी देन है। समाजमें उस बातोंकी व्यक्तिमें शक्ति है, जो कि बचपनमें ज्यादा तेज होती है, और उमरके साथ कम होती जाती है, कमलाने छै वर्षमें ३० शब्द सीखे थे, यह उसीको प्रकट करता है और खड़े होनेमें चार वर्ष लगना यह भी बतलाता है, कि आदमीके शरीरके विकासमें भी समाजका जबर्दस्त हाथ है। धर्म, ईश्वर-विश्वास, आचार विचार स्वाभाविक हैं, इस बातको कमला एक दम झूठ साबित करता है।

वैज्ञानिक भौतिकवादी भलाई, बुराई, सदाचार, दुराचारमें मानवता की साकार प्रतीक इसी समाज हितको कसौटी मानते हैं, और ईश्वर, धर्म जैसी धोखेकी टट्टियोंसे खबरदार रहनेके लिये सारी शक्ति, और कमकर जनताको आगाह करते हैं। चूंकि समाज परिवर्तनशील है, इसलिये सदाचार भी यदि उससे पिछड़ना नहीं चाहता, तो उसे भी परिवर्तन शील होना चाहिये।

ग. दृष्टिके विकार

दृष्टि या नजरपर यदि कोई पर्दा पड़ जाय, अथवा उसे प्रकाशके अभाव—अंधकार—की सहायता मिले, तो वह बेकार हो जाती है, किन्तु यदि उसे उलटे प्रकाश या चश्मेकी मदद हो तो वह देखेगी तो सही, मगर वास्तविककी जगह कुछ और ही देखेगी—सफेद रंग उसे पीला मालूम होगा और गोल चीज लम्बी। इसलिये सहायता लेते वक्त हम ख्याल रखना होता है कि हम विकार पैदा करनेवाले सहायकोंके फेरमें न पड़ जायँ। संस्कृतके शब्द दर्शन और दृष्टि दोनों एकार्थवाची हैं, इसलिये दृष्टिके विकारसे हमारा अभिप्राय दर्शनके विकारसे है, जिसके कारण कितने अनर्थ किये जा सकते हैं, इसके कई उदाहरण हमको अब तक मिल चुके हैं। यद्यपि दर्शनोंका दिग्दर्शन कराते वक्त हम दर्शनके विकारोंका संकेत अन्यत्र[1] काफी कर चुके हैं, इसलिये उन सबको यहाँ दुहराया नहीं जा सकता, तो भी दर्शन विकारों—दर्शन मलों—पर हम थोड़ा और लिखना चाहते हैं, ताकि दर्शन-मल प्रक्षालनमें पाठकोंको सहायता मिले—सिर्फ यहाँ आये दर्शन-मलोंके बारेमें ही नहीं, बल्कि इनके उदाहरणसे सभी प्राचीन-नवीन, पौरस्त्य-पाश्चात्य दर्शनोंके बारेमें भी। यह ध्यानमें रखना होगा कि "दृष्टि संयोजन"[2] (=दृष्टिका बंधन) सबसे जबर्दस्त बंधन है, जबतक द्वन्द्ववादी दर्शनकी सहायतासे उसे मुक्त नहीं कर लेते, तबतक अपनी "दर्शन शक्ति" को आप ठीक तौरसे इस्तेमाल नहीं कर सकते।

१ उदयनका ईश्वरवाद

धर्मकी कल्पना वर्ग-स्वार्थको दृढ़ करनेके लिये हुई और समयके साथ धर्मके बंधनको शिथिल न होने देने, अथवा कवि सोफोकलके शब्दोंमें—"सारा (प्रभु—शोषक) जगत ध्वस्त हो जायगा यदि धर्म उठ

[1] "दर्शन दिग्दर्शन" [2] बुद्धका गया शब्द।

गया"—का ख्याल कर शोषक-जगत्को बचानेके लिये धर्मकी नई व्याख्या या नये नये अवतारोंकी जरूरत पड़ती है। धर्म और ईश्वरकी धाकको अक्षुण्ण रखनेके लिये भारी प्रयत्न पहिले भी हुये हैं, और आज भी हिटलर कह रहा है कि मैंने नास्तिक बोलशेविकोंके संहार करनेके लिये तलवार उठाई है, इस प्रकार मेरा युद्ध धर्म-युद्ध है। प्रायः हजार वर्ष पूर्व उदयनाचार्य (९८४ ई०) ने भी एड़ीसे चोटी तककी ताकत ईश्वरकी सत्ता सिद्ध करनेके लिये लगाई थी। यद्यपि उदयनके दिये प्रायः सभी हेतु थोथे होगये हैं, और आजके स्वार्थ-रक्षकोंने उसके लिये दूसरा ही तरीका स्वीकार किया है, तो भी भारतके लिये वह कुछ ऐतिहासिक महत्त्व रखता है—और कुछ दिमाग तो अब भी समझते हैं, कि उदयनकी "न्याय कुसुमांजलि" आजके जगत्में भी ईश्वरकी सत्ताको सिद्ध कर सकती है। उदयनने ईश्वर होनेके ये हेतु दिये हैं[1]—

(१) हर एक कार्यका कोई कारण होता है, इसलिये जगत्रूपी कार्यका कारण चाहिये।

(२) मूल परमाणुओंको जोड़े बिना स्थूल जगत् बन नहीं सकता, इसलिये जोड़नेवाला चाहिये,

(३) धारण बिना जगत् ठहर नहीं सकता है, इसलिये धारण करने वाला चाहिये

(४) शिल्प या ज्ञान परंपरासे प्राप्त होता है, इसलिये कोई आदि गुरु चाहिये,

(५) वेद जैसे वाक्योंका प्रमाण माना जाता है, ऐसे प्रमाणसे होनेका कोई प्रमाणदाता होना चाहिये

---

[1] "कार्यायोजनधृत्यादेः पदात् प्रत्ययतः श्रुतेः।
वाक्यात् संख्याविशेषाच्च साध्यो विश्वविद् अव्ययः॥"
—न्यायकुसुमांजलि ५।१

(६) वेद (श्रुति) भी ईश्वरका होना बतलाता है ,

(७) वेद-वाक्योंका भी रचयिता चाहिये ,

(८) दो, तीन, चार संख्याकी कल्पनाका भी कोई आदिकर्ता चाहिये , और

(क) वह सर्वज्ञ (विश्वविद्) होना चाहिये ,

(ख) वह अ-विनाशी (अव्यय) होना चाहिये ।

उदयनने आठ युक्तियोंसे ईश्वरको सिद्ध करना और दो शब्दोंमें उसके रूपको बतलाना चाहा है । इन युक्तियोंका खंडन पहिले ही जगह जगह हो चुका है , तो भी यदि इकट्ठा करनेकी जरूरत है, तो हम कह सकते हैं [1]—

(१) कार्य एक कारणसे नहीं अनेक कारण ("हेतु-सामग्री", अनेकहेतु-संगति) से उत्पन्न होता है, इसलिये उससे एक कारण ईश्वर सिद्ध नहीं होता ,

(२) भौतिक तत्त्व—घटना प्रवाह—विरोधि-समागम हैं, इसलिये आयोजन, वियोजनके स्वाभाविक हेतु वहाँ भीतर मौजूद हैं ,

(३) जगत्‌में धारण (धृति) स्थिरता आँख न रखनेवालोंको दीख पड़ती है ,

(४) शिल्प या ज्ञान अविच्छिन्न परंपरासे नहीं आये हैं, बल्कि विच्छिन्न परंपरा (विच्छिन्न सन्तति) से प्राप्त होते हैं , एक वार वह बिल्कुल नये पैदा होते हैं, फिर उनकी परंपरा चल पड़ती है ।

(५, ७) वेदके प्रामाण्य आदिकी बात, धर्मकीर्तिके गिनाये ध्वस्त प्रज्ञाके पाँच चिह्नोंमें है, जिसका जिक्र आज स्वगोष्ठी छोड़ कोई

[1] विरोधि हेतु सगम्याऽधृतिर्विच्छिन्नसन्तति । सृष्टि , संख्या श्रुती कल्प्ये, नहि विश्वविन् नाव्यय ।"—न्यायवज्राञ्जलि (राहुलस्य)

सिद्ध करनेकी नहीं उठा सकता, वेद मनुष्योंकी कल्पना, मनुष्योंकी सृष्टि हैं, इतिहास प्रेमियों तथा आदिम मानव सभ्यताके जिज्ञासुओंके लिये वह उपयोगी सामग्री प्रदान करते हैं,

(८) दो, तीन आदि संख्याकी कल्पना मानवोंकी है, और उनकी कल्पनासे निकल आनेके गणितके सामने उदयनके समयका गणित नगण्य-सा है।

(९) कोई निश्चवित् (सर्वज्ञ) नहीं, क्योंकि सर्वज्ञ होनेका अर्थ है आज और आजसे करोड़ों वर्षों बाद भी निरन्तर लेकर भावन्तसविताके जो कुछ हो रहा है या होगा वह सब उस निश्चवेत्ताके ज्ञानमें पहलेसे वैसा मौजूद है, वैसा ही वह हो रहा है, ऐसे भाग्यवादका युक्तियोंद्वारा परित्याग द्वारा हम पहले खंडन कर चुके हैं।

(१०) अविनाशी किसीका कारण नहीं बन सकता, क्योंकि कारण बननेके लिये उसे सक्रिय होना चाहिये, जो सक्रिय है वह स्वरूप और स्वभावमें अपरिवर्तित नहीं रह सकता, इस तरह अविनाशी और कारण यह दोनों प्रकाश-अन्धकारकी भाँति एक दूसरेके विरोधी हैं।

उदयनने, वस्तुत ईश्वरको सिद्ध करनेके लिये जो युक्तियाँ दी हैं, उनका जबर्दस्त खंडन उनसे पौने चारसौ वर्ष पहले धर्मकीर्ति (६०० ई०) कर चुके थे[1] और जिनसे उदयन पूर्णतया परिचित थे, किन्तु फिर फिर दुहराना प्रोपेगंडाकी बात है, इससे भी वह पूर्णतया परिचित थे इसलिये पुनरुक्तिको दूषण नहीं भूषण बना वह अपना काम करते गये।

२ प्रयोजनवाद

जब हम एक घरको देखते हैं, तो समझ जाते हैं, कि इसे एक आदमीने बनाया, और उसने इसे एक विशेष प्रयोजनके लिये एक

[1] देखिये "दर्शन दिग्दर्शन" में धर्मकीर्तिका दर्शन।

विशेष योजनाके अनुसार बनाया है। इसलिये "यदि प्रकृति एक भेंकड़े, एक तूफान या बाघकी पीली काली धारियाँ बनाती है" तो इसका कोई प्रयोजन है।—यह है यूरोप के बीसवीं सदीके ह्वाइटहेड जैसे कुछ दार्शनिकोंका महान् दर्शन। हम जानते हैं, देवज्ञों की (थ्योसोफी) के अभिनय धर्मकी भाँति यह महान् दर्शन भी काफी पुराना है, और बीसवीं सदीके प्रयोजनवादी दार्शनिकोंने पुराने सूत्रको ही फिरसे उज्जीवित करनेकी कोशिश की है, जिसका अर्थ यही है, कि सोफोकलूकी आत्मा ह्वाइटहेड्के रूपमें अवतार लेनेकी जबर्दस्त जरूरत समझती है।

विद्याका काम है, अज्ञातकी व्याख्या ज्ञातसे करके उसे समझने लायक बनाये, किन्तु प्रयोगवादी दार्शनिक अपनी दार्शनिकताका जबर्दस्त अपव्यय कर रहे हैं, जब कि वह शेष विश्वकी व्याख्या अज्ञातकी सहायतासे करनेका प्रयत्न करते हैं, जिस तरह प्रयोगवादी बाघकी काली पीली धारीके भीतर खास प्रयोजन बतला रहे हैं, उसी तरह कहा जा सकता है, कि लमूरी लोमड़ी शिकारके प्रयोजनसे पैदा हुई, और जैसे गाय भैंस खानेके प्रयोजनसे पैदा की गई, उसी तरह हिन्दुस्तानी तथा दूसरी काली जातियाँ गुलाम बननेके लिये, एवं सफेद जर्मन आर्य-जाति दुनियापर शासन करनेके प्रयोजनसे पैदा हुई। और हिन्दुओंकी गीता तो गला फाड़ फाड़ कर कह ही रही है—कि "भगवान (मैं)ने चारों वर्णोंको गुण-कर्मसे अलग कर करके बनाया", [1] जिसमें शूद्रोंका काम तीनों ऊँचे वर्णोंकी खिदमत करना भर है। बीसवीं सदीका प्रयोगवाद भी हमें वृद्धके उसी "ज्ञानभंडार" तक पहुँचा देता है, जिसमें "भगवान् की मर्जीके बिना पत्ताका भी न हिलना" सबसे बड़ा ज्ञान है, और जो शोषक, काम चोरोंके प्रयोजनका सबसे बड़ा हथियार है।

हमको यह मालूम है, कि जब तक दार्शनिकोंका प्रयोजनवाद मानव बुद्धिको बाँधे हुये था, और हरएक अज्ञात वस्तुको अज्ञेयसे व्याख्या कर

[1] "चातुर्वर्ण्यं मया सृष्टं गुण कर्म विभागशः।"

डालनेकी प्रवृत्ति थी, तब तक साइंस आगे नहीं बढ़ सका, और जैसे ही बुद्धि प्रयोजनवादके यांत्रिक बंधनसे मुक्त हुई, वैसे ही उसने प्रयोगके द्वारा साइंसका रास्ता साफ किया। प्रयोजनवाद साइंसका जबर्दस्त दुश्मन है, वह हमें उससे उलटा रास्ता लेनेको कहता है। बाघकी पीली जमीन पर काली धारीका ही ले लीजिये, प्रयोगवादी झुल्ले कहेंगे, प्रकृति— (ईश्वरको वह इस नामके भीतर छिपाना चाहते हैं, क्योंकि जड़ प्रकृतिके साथ उनकी इतनी छोड़ नहीं हो गई है कि उसे प्रयोजन चेतना रखनेवाली मान लें) ने बाघको काली पीली धारी इसलिये प्रदान की है, कि वह अपनेको छिपाकर दुश्मनसे बचा सके। साइंसवेत्ता इस धाराको लेकर *प्राकृतिक निर्वाचन*[१] और *जाति-परिवर्तन*[१] के महान् सिद्धान्तोंका आविष्कार करनेमें सफल हुये जो कि प्रयोजनवादसे बिल्कुल उलटे हैं।— "जो वस्तु (घटना प्रवाह) खास विशेषतायें रखती है, वह चिरस्थायी होती है। कुछ व्यक्ति नये परिवर्तन द्वारा अपनेमें नई विशेषतायें लाते हैं। अपने आहार विहारके लिये, अपने शत्रुओंसे बचनेके लिये, जो विशेषतायें उपयोगी सिद्ध होंगी, उन विशेषताओंका धनी बच रहेगा, और जो अनुपयोगी या हानिकारक सिद्ध होंगी, उनके धनीका विनाश अवश्यभावी है। बरसातमें कुछ कीड़े पैदा होते हैं, जिनमेंसे कुछ रंग रूपमें हरे पत्तसि मिलते हैं, कुछका रंग किसी वृक्षकी छाल जैसा होता है, और कुछका वर्षाकी मिट्टी जैसा। इन रंगों पर यदि हम गौर करें, तो मालूम होगा, कि ये रंग दुश्मनोंकी नजरसे छिपनेमें बड़ी मदद देते हैं, मानो यह वर्ण उनके रक्षा-कवच हैं। एक कीड़ा सूखा काली जगहमें पीढ़ियोंसे रहता था। समय बदला, अब वह जमीन हरी भरी हो गई। अब कीड़ा हरी पत्तियों और हरे पौधोंमें रहता है। उसकी सन्तानोंमें अधिकांश कीड़े *चमकीले, लाल और काले रंगके* हैं, और दो-चार *जाति-परिवर्तन*के

---

[१] देखिये "विश्वकी रूपरेखा"

कारण हरे रंगके। कीड़ोंके खानेके लिये कितने ही पक्षी, कितने ही दूसरे कीड़े भी मुँह बाये हुये हैं। जो कीड़ा अपने आसपासकी जमीन, हरी घाससे बिल्कुल अलग रंग रखता है, और इसके कारण दूरसे ही शत्रुकी नजर उसपर पड़ जाती है, ऐसे कीड़ेका जल्दी संहार होना निश्चित है। 'उपरोक्त कीड़ोंमें अपने रंगके कारण बचे हुए ये हरे कीट नसलको आगे ले जायँगे, गोया प्रकृतिने हरे कीड़ोंको जीनेके लिये चुन लिया है। इसे ही *प्राकृतिक निर्वाचन* कहते हैं।"

प्रयोजनवादका असल मतलब है आप जगत्को बदलनेका इरादा न करें, समाज जैसे चल रहा है, उसे वैसे ही चलने दें। प्रयोजनवादका उद्देश्य है, फाटकसे निकाल बाहर किये ईश्वरको फिरसे खिड़कीके रास्ते ला सिंहासनपर बैठाना।—यह हम यूरोपके प्रयोजनवादियोंकी बात कह रहे हैं, जो कि अपने इस उद्देश्यको बहुत छिपाकर रखना चाहते हैं।

३ विज्ञानवाद

विज्ञानवादका जिक्र पहिले हो चुका है, किन्तु आँखमें धूल झोंकनेका काम जितना इस दर्शनसे लिया जाता है, उतना दूसरे दर्शनोंसे नहीं। सर राधाकृष्णन् शंकराचार्यके हिमायती होनेके नाते विज्ञानवादका समर्थन करना अपना फर्ज समझेंगे। किन्तु राधाकृष्णन् टूटी नाव हैं, जो उनपर भरोसा करेगा, वह मँझधारमें गिरेगा। हम बतला चुके हैं, कैसे उन्होंने बुद्धिको शंकरके ज्ञानपथसे विचलित कर भक्तिकी शरण लेनेका परामर्श दिया था। बौद्ध दर्शनपर पोचारा पोतते हुए एक जगह यह विज्ञानवाद—भूतभौतिक जगत् असत्, चेतनामय ब्रह्म (मन या विज्ञान) ही सही—के प्रति अपने उद्गारको इस प्रकार निकालते हैं[1]—

"विश्व बिल्कुल ही व्यर्थ, एकदम अ-वास्तविक होता, यदि यह किसी प्रकारसे वास्तविक [ब्रह्म ?] का प्रकाश न मिलता। जन्म और

[1] Indian Philosophy vol I p 596

सबकी दुनिया अमर [ब्रह्म ?]का प्राकट्य है। परम (चरम) वस्तुविक्ता सर्वसत्व, वास्तविक तथा काल्पनिक सभी वस्तुओंका आत्मा है।"

"सर्वसत्व" अंग्रेजीकी पुस्तकमें भी यह संस्कृत शब्द लिखा गया है। धरती माता! फाटो, हम समायें!! "एकां लज्जां परित्यज्य त्रैलोक्य विजयी भवेत्।" और सर्व-सत्वका अर्थ—"वास्तविक तथा काल्पनिक सभी वस्तुओंका आत्मा"। श्रद्धेय धर्मानन्द कौशाम्बी! आपने बौद्ध शास्त्रोंके पढ़ने-पढ़ानेमें नहीं, धूपमें अपने बाल सफेद किये हैं, यदि इस सत्वको नहीं समझा। और भदन्त आनंद कौसल्यायन! अब भी काशीके दूसरे छोर पर आप अपना दंड-कमंडल रखना चाहते हैं? यदि हाँ, तो ठीक अर्थ लगाइये—

"सब्बे सत्ता भवन्तु सुखितत्ता" (सर्वे सत्ता भवन्तु सुखितात्मान)

="वास्तविक तथा काल्पनिक सभी वस्तुओंका आत्मा सुखी हो।" छन्दस् (वेद) के नियमके अनुसार बहुवचनको एकवचन कर देनेसे यही अर्थ ठीक आयेगा।

और बिहारके राजा मदनपालदेव (११३४–५३ ई०) के सत्रहवें गत्व सयत्न लिखी पुस्तकके अन्तमें जो "माता पितृ-पूर्वङ्गमं कृत्वा सकल-सत्त्वराशेरनुत्तरज्ञानावाप्तये"[1] लिखा हुआ है, उसमें "सकल सत्त्व-राशि" का अर्थ करना होगा—सभी वस्तुओंके आत्माओंकी राशिका! अब मालूम हुआ न, बुद्ध और बौद्धोंके दर्शन पर कलम चलानेके लिये कितनी हिम्मत चाहिये। हम आशा है भविष्यके भारतीय दर्शन पर कलम उठानेवाले सारे लेखक सर राधाकृष्णनकी इस "सर्वसत्व" की गहरी सूझके लिये कृतज्ञता प्रकट करनेसे कभी बाज न आवेंगे।

---

[1]देखिये Journal of the Bihar and Orissa Research Society Vol XXI pt I p 23

राधाकृष्णन्‌के सर्वसत्त्व (=सारे प्राणी, सारे जलचर, नभचर, पशु, मनुष्य) ने हमारी जानका ही ले छोड़ा था। लेकिन बुद्धने अपने दर्शनकी इतनी नाकाबन्दी की है, खासकर अनात्मवाद और क्षणिकवादके द्वारा, कि सर राधाकृष्णन् जितना ही "वास्तविक", "अमर" या खुद बुद्धके अपने मुँहसे निकले वचन "सर्वसत्त्व" का चोगा पहिनाकर ब्रह्मवादको वहां घुसाना चाहें, बेचारा शङ्करका प्यारा ब्रह्म क्षणिकवादके एक ही प्रहारमें खाप-खाप करता फिर उधर नजर उठाकर देखनेकी भी हिम्मत न करेगा। हमें सर राधाकृष्णन्‌की इस हिम्मतकी दाद देनी चाहिये, जोकि ऐसी निराशाजनक परिस्थितिमें भी उन्होंने हिम्मत न छोड़ी। इससे एक बात तो साफ है कि वह "जन्म-मरणकी दुनिया" के पीछे "अमर" तत्त्वको सिद्ध करनेपर तुले हुए हैं। आइये हम उनकी मदद करें।

इग्लैंडका महान् दार्शनिक बर्क्ले[१] (१६८५-१७५३ ई०)—लार्ड लाइयका समकालीन—विज्ञानवादका जबर्दस्त समर्थक था। उसका कहना था—"स्वर्ग और धरतीके सभी सामान, संक्षेपमें सभी पिंड मनको छोड़ और किसी द्रव्यके नहीं (बने) हैं। जब तक मेरे द्वारा वह उपलब्ध (ज्ञात) नहीं होते अथवा मेरे या दूसरे उत्पादित जीवके मनमें अस्तित्व नहीं रखते, तब तक वह या तो अस्तित्व ही नहीं रखते अथवा किसी नित्य आत्मामें अवस्थित हैं।"

बर्क्ले दार्शनिक होते भी लाट-पादरी था, और आजकलकी दुनिया पादरियोंसे भड़कती बहुत है, इसलिये आइये एक प्रसिद्ध साइंसवेत्ता, सर जेम्स जीन्सके पास चलें, यद्यपि "सर" होनेसे आपको जरूर कुछ शंका हो उठेगी, क्योंकि आप जानते हैं पूँजीवाद शिरोमणि सरकार वैसोंको इस पदवीका पात्र समझती है, तो भी यह याद रखना

[१] विशेषके लिये देखिये "दर्शन दिग्दर्शन"

चाहिये कि जीन्स एक अच्छे गणितज्ञ अच्छे ज्योतिषी—फलितवाले नहीं बल्कि ज्योतिषवाले—रहे हैं। सुनिये, वह क्या कहते हैं¹—

"मुझे मालूम होता है, आधुनिक साइंस हमें एक बिल्कुल दूसरे रास्तेसे (बर्कलेके मतके) बिल्कुल असमान परिणाम पर नहीं पहुँचा रहा है।

"इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता, चाहे पदार्थ 'मेरे मनमें या किसी दूसरे उत्पादित जीवनके मनमें अस्तित्व रखते हैं' या नहीं, उनका विषय (गोचर) होना तभी होता है, जब कि वह किसी नित्य आत्माके मनमें अस्तित्व रखते हैं।

"यदि यह सच है कि 'पदार्थोंका वास्तविक सार' [काण्टका वस्तु अपने भीतर या वस्तु-सार] हमारे ज्ञानसे परे है, तो वस्तुवाद और विज्ञानवादकी सीमा निर्धारक रेखा सचमुच अत्यन्त अस्पष्ट हो जाती है, विषयाकार वास्तविकता अस्तित्व रखती है, क्योंकि कुछ वस्तुएँ मेरी और आपकी चेतनाको एक समान प्रभावित करती हैं किन्तु [ऐसा करके] हम एक ऐसी किसी चीजको मान ले रहे हैं, जिसके मान लेनेका हम हक नहीं है, यदि हम उसे वास्तविक [वस्तुरूप] या विज्ञानीय [विज्ञान रूप, मन-रूप] नाम देते हैं। ठीक नाम रखने पर उसे 'गणितीय' कहना चाहिये।"

सर जेम्स जीन्स जिस वक्त बिशप बर्कलेके साथ आसमानमें उड़ते जा रहे थे, उस वक्त उन्हें डाक्टर जान्सनकी बात याद आ गई। डाक्टर जान्सनने बर्कलेके दर्शनकी बात सुनकर विज्ञानसे पृथक् भौतिक तत्त्वकी सत्ताको साबित करनेके लिये फर्शपर पैर पटककर कहा था—"नहीं, साहेब! मैं इस तरह [पैरसे धरतीकी सत्ताको सिद्ध कर] उसे [विज्ञान-वादको] गलत साबित करता हूँ।"

---

¹The Mysterious Universe (by Sir James Jeans Pelican Series April 1940) pp 172 75.

सर जेम्स जीन्स डाक्टर जान्सनके खंडनका उत्तर अपनी मुस्कराहट-से देना काफी समझते हैं, क्योंकि डाक्टर जान्सन अपने समयमें जो काम कर गये, उसे ही अब उन्हें नई परिस्थितिमें अंजाम देना है। यदि डाक्टर जान्सन जानते कि धरतीपर लात पटककर वह भौतिकवादको सिद्ध कर रहे हैं, जो कि शोषक प्रभुवर्ग तथा उसकी संस्कृति, सभ्यता, धर्मका जानी दुश्मन है, तो वह कभी वैसी गलती न करते। सर जेम्स जीन्स जानते हैं कि वह जो महान् सेवा कर रहे हैं, उसे उपकृत वर्ग भुला नहीं सकता, इसीलिये आगे बढ़ते हुए कहते हैं—[1]

"आज ज्ञानकी धारा एक अयांत्रिक वास्तविकताकी ओर बढ़ रही है, विश्व एक बड़े यंत्रकी अपेक्षा एक बड़े विचार [कल्पना]सा जान पड़ता है। मन अब भौतिक जगत्में आकस्मिक भटक आया [बटोही] जैसा नहीं मालूम पड़ता, हमें भान होने लगा है कि [पहिली धारणाको हटाकर] हमें भौतिक जगत्के स्रष्टा और शासकके तौरपर उस [मन]का स्वागत करना चाहिये—हाँ, अपने वैयक्तिक मनोंको नहीं, बल्कि उन मनोंको, जिनमें कि परमाणु विचार [कल्पना]के तौरपर सत्ता रखते हैं। * भौतिक तत्त्व स्वयं मनकी सृष्टि और प्राकट्य हैं। हमें जाहिर होता है कि विश्व हमारे मनों जैसे एक मनका पता दे रहा है, जो कि (उसको) योजना बनाता तथा नियंत्रण करता है।"

देखा, सर जेम्स जीन्स कैसे चुपकेसे प्रयोगवादी व्हाइटहेडके पास पहुँच गये, और इन बूढ़ोंकी मडलीमें हमारे सर राधाकृष्णन् जो शोभा दे रहे हैं! आप इनकी बातोंको आदर्शवाक्य बना अपने बैठकखाने—ड्राइंगरूम—में लगा लीजिये, यदि घरकी लक्ष्मीको भुखमरोंके घर जाने नहीं देना चाहते—

विश्वके पीछे वास्तविक अमर "सर्वसत्त्व" है—सर राधाकृष्णन्
विश्वके पीछे खास प्रयोजन काम कर रहा है—व्हाइटहेड्

[1] वहीं pp 186 8

"एक मन जो कि [विश्वकी] योजना बनाता तथा नियन्त्रण करता है।"—सर जेम्स जीन्स।

और जर्मन मजदूर डीट्जगेन—ये दार्शनिक कहलानेवाले लोग "जनताको अज्ञानमें रखनेके लिये अपने झूठे विज्ञानवादको इस्तेमाल कर रहे हैं।"[1]

इसके उत्तरमें प्रोफेसर लेवीने जली-कटी सुना इन बूढ़े शोषणके समर्थकोंको जो उत्तर दिया है, उसे हम पहिले उद्धृत कर चुके हैं। नई पीढ़ीका दूसरा दार्शनिक जान लेविस् कहता है[2]—

"बिना एक कल्पना (विज्ञान) के चूँकि हम किसी वस्तुको नहीं जान सकते, इसका यह अर्थ हर्गिज नहीं कि हम सिर्फ कल्पनाको ही जानते हैं। ज्ञानका अस्तित्व ही साबित करता है, कि ज्ञाता और ज्ञेय भी अस्तित्व रखते हैं। चूँकि बिना उसकी कल्पना किये हम बाह्य (भौतिक) जगत्का चिन्तन नहीं कर सकते, इसका अर्थ यह नहीं कि तुम जो कुछ अनुभव करते हो, वह सिर्फ अपनी कल्पनाका ही करते हो। हम अपने प्रथम (इंद्रिय) प्रत्यक्ष में खुद प्रकृति (भौतिकतत्त्व) को ही जानते हैं। (यह ठीक है) हम उसे पूर्णतया नहीं जानते, और न उसके बारेमें सब कुछ जानते हैं, किन्तु हम यह जानते हैं, कि वह है।"

यदि आप विज्ञानवादकी नब्ज टटोलें, तो मालूम होगा—उसका आजकल सबसे बड़ा काम है साइंससे प्राप्त होनेवाले ज्ञानके प्रति संदेह पैदा करना—सापेक्ष बतलाना नहीं, क्योंकि सापेक्षताको तो साइंस स्वयं स्वीकार करता है। दूसरा काम है प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे धर्मको हस्तावलम्ब देना, इसे सर जेम्स जीन्सके "मन" में हम अभी देख चुके हैं।

॥ समाप्त ॥

[1] Lenin Materalism में उद्धृत।

[2] Introduction to Philosophy (Golancz 1937) pp 50 51

पारिभाषिक शब्द-सूची

Absolute—परम, परमार्थ, परमतत्त्व
Abstract—निराकार, कल्पनामय
Analysis—विश्लेषण
Anti-thesis प्रति वाद
Atheism नास्तिकवाद, अनीश्वरवाद
Atom—परमाणु
Atomism परमाणुवाद
Automachine—स्वयवह यन्त्र, स्वचालितयन्त्र
Bacteria—बैक्टीरिया
Capitalism—पूंजीवाद
Capitalist—पूंजीवादी, पूंजीपति
Causality—कार्य कारण-संबंध, हेतुवाद, हेतुता
Cause—हेतु, कारण
Cave man—गुहा मानव
Cell—सेल्, जीव-कोष
Change—परिवर्तन
Changeability—परिवर्तनशीलता
Changeable—परिवर्तनशील
Character—स्वरूप, स्वभाव, लक्षण
Communism—साम्यवाद
Communist — साम्यवादी, कम्यूनिस्ट
Contemplation—चिंतन
Content—सार
Conservative—अनुदार
Continuity प्रवाह, संतति, संतान
Continuity, Discontineous—विच्छेद-युक्त प्रवाह, विच्छिन्न प्रवाह
Co operative — सम्मिलित, साझी
Determinism—नियतिवाद, भाग्यवाद
Dialectical Materialism —द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, क्षणिक भौतिकवाद, वैज्ञानिक भौतिकवाद
Dialectics—द्वंद्ववाद, द्वंद्वात्मकवाद
Effect—कार्य

Electron एक्लेट्रन, Negotron
Element—तत्त्व, मूल तत्त्व
Ethics—आचार, शास्त्र
Events—घटना
Form—आकृति
Genus जनक, जनक बीज, जेनस्
Group-marriage—यूथ विवाह
Heredity—आनुवंशिकता
Humanity—मानवता
Hydrogen—हाइड्रोजन
Idealism—विज्ञानवाद, चेतनावाद, मनोवाद
Individual—व्यक्ति, वैयक्तिक
Individualism—व्यक्तिवाद
Interpenetration of opposites—विरोधि-अन्तर्व्यापन
Liberalism—उदारवाद
Life—जीवन
Logic—तर्कशास्त्र
Materialism—भौतिकवाद
,, ,, Dialectical—द्वन्द्वात्मक (वैज्ञानिक) भौतिकवाद
,, ,, Mechanical—यान्त्रिक भौतिकवाद
Materialism, Scientific—वैज्ञानिक भौतिकवाद
Matter—भूत, भौतिक तत्त्व
Mechanical materialism—यान्त्रिक भौतिकवाद
Metaphysician—अति भौतिक शास्त्री, अतिभौतिकवादी, अध्यात्मवादी
Mind—मन, विज्ञान
Morality—आचार विचार, सदाचार
Motion—गति
Mutation—जाति-परिवर्तन
Natural law—प्राकृतिक नियम
Natural selection—प्राकृतिक निर्वाचन
Nature—प्रकृति
Negation—प्रतिषेध
Negation of negation—प्रतिषेधका प्रतिषेध
Negative—ऋण
Negotron—नेगोट्रन = एलेक्ट्रनका नया नाम, ऋणात्मक बिजली (परमाणुके गर्भमें)
Neutron—न्युट्रन (परमाणुके गर्भमें)
Objective—साकार, बाह्य, विषयाकार

Pantheism—शारीरिक ब्रह्मवाद
Perception—प्रत्यक्ष, उपलब्धि
Phenomena—प्रतीयमान जगत्, प्राकृतिक जगत्, बाह्य जगत्
Philosophy—दर्शन, दृष्टि
Polyandry—बहुपति विवाह
Polygamy—बहुपत्नी विवाह
Positive—धन
Positron—पोजिट्रन (परमाणु के गर्भ में)
Practice—प्रयोग
Pragmatism — प्रमाणवाद, मनुष्य मापवाद
Probability—प्रायिकता
Process—घटना-प्रवाह
Proton—प्रोटन (परमाणु के गर्भ में)
Qualitative change—गुणात्मक परिवर्तन
Quality—गुण
Quantity—परिमाण, मात्रा
Reaction—प्रतिक्रिया, प्रतिगामिता
Realism—वस्तुवाद
Reality—वास्तविकता
Reflection— मानस प्रतिबिंब
Reflex—झलक, प्रतिबिंब
Relative—सापेक्ष
Relativity—सापेक्षता
Religions—धर्म, मजहब
Scholastic—मतवादीय
Science—साइंस, विज्ञान
Scientific law— वैज्ञानिक नियम
Scientific materialism—वैज्ञानिक भौतिकवाद
Secular—संसारी
Sensation—वेदना
Slogan—नारा, घोष
Socialism—समाजवाद
Soul—आत्मा
Sovereign— मूर्धाभिषिक्त, अ-परतंत्र
Spirit—आत्मा
Struggle—संघर्ष
Synthesis—समाहार, संश्लेषण
Technique—रचनाचातुरी
Teleology—प्रयोजनवाद
Temperature—तापमान
Theology—देवशास्त्र, धर्मशास्त्र
Theory—सिद्धान्त वाद
Thesis—वाद

Truth—सत्य

Unity of opposites—विरोधि-समागम, विरोध समागम

Universal—जाति, सामान्य

Universe—विश्व, जगत्

Utiliteriamism उपयोगितावाद

Velidity of knowledge—प्रामाण्य, ज्ञानकी प्रामाणिकता

Virus—विरस्

White lodge—श्वेत-परिषद् (श्वेतोगी)

Whole—अवयवी, सम्पूर्ण



ग्रथ-सूची

Karl Marx	Thesis on Feurebach, Capital, On Hegel's philosophy of Law
Fredrich Engels	Anti-Duhring (Ludwig Feuerbach), Socialism Scientific and Utopian
Marx and Engels	German Ideology
	Holy Family
Lenin	Materialism and Empireo-criticism
Hegel	Science of Logic
Ludwig Feurebach	Atheism
	Essence of Christianity
Voltair	Philosophical Dictionary
H Levy	Philosophy for a Modern Man
John Lewis	Introduction to Philosophy
Devid Guest	Dialectical Materialism
T A Jackson	Dialectics (1938)
J B S Haldane	Marxist Philosophy and Sciences (1938)
Sir James Jeans	Mysterious Universe

Dr S Radhakrishnan	Indian philosophy, 2
धर्मकीर्ति	प्रमाणवार्तिक
शान्तिदेव	बोधिचर्यावतार
श्रीहर्ष	खण्डनखण्डखाद्य
अलबरूनी	अल् हिन्द
बुद्ध	दीघ निकाय (हिन्दी)
	मज्झिम निकाय (हिन्दी)
	विनय पिटक (हिन्दी)
राहुल सांकृत्यायन	बुद्धचर्या
	विश्वकी रूपरेखा
	मानव समाज
	दर्शन दिग्दर्शन
भगवद्गीता	
महाभारत	

